निराला का कथा साहित्य

वस्तु और शिल्प

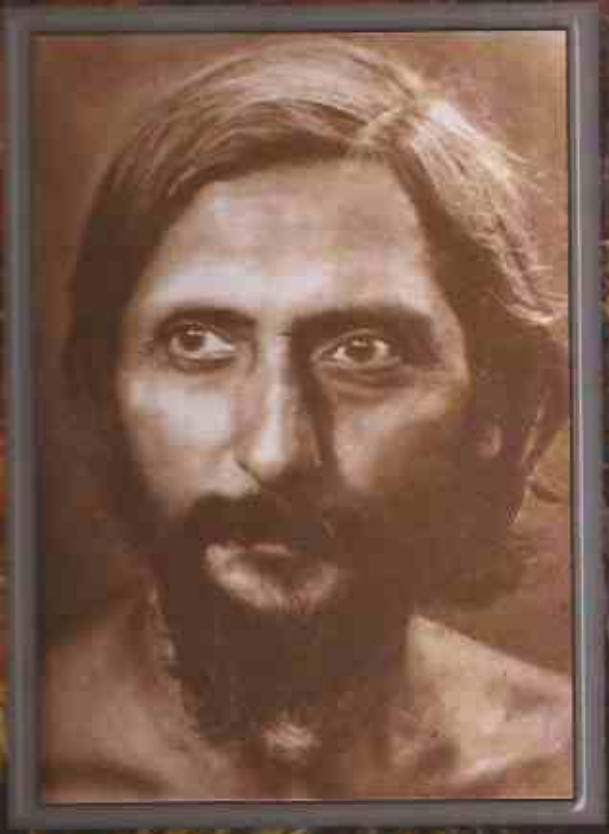

डॉ० उषा द्विवेदी

मुझे सुश्री उषा द्विवेदी के शोध प्रबंध 'निराला का कथा साहित्य : वस्तु और शिल्प' को पढ़कर बहुत संतोष हुआ। यह सही है कि हिन्दी काव्य जगत में निराला का स्थान बेजोड़ है इसलिए एक अमर काव्य-शिल्पी के रूप में तो निरालाजी को सभी जानते हैं लेकिन उनके कथाकार, उपन्यासकार अथवा रेखाचित्रकार रूप से लोगों का परिचय अपेक्षाकृत कम है। विदुषी लेखिका ने निरालाजी के छह पूर्ण तथा दो अपूर्ण उपन्यासों, चौबीस कहानियों तथा दो रेखाचित्रों के आधार पर निराला के कथाकार रूप की विशद विवेचना कर वस्तुतः एक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कार्य किया है।

निराला अपने युग की सभी प्रकार की विसंगतियों के प्रति विद्रोह के सशक्त वाहक थे और निस्संदेह उनका यह विद्रोही-स्वर उनके कथा-साहित्य में अधिक विस्तार पा सका है। उनकी ये रचनाएँ तत्कालीन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता, शोषण, रूढ़ियों तथा कुरीतियों के विरुद्ध शंखनाद करने में समर्थ सिद्ध हुई हैं।

कविवर निराला के कथाकार रूप को हमारे समक्ष पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने वाले शोध प्रबंध 'निराला का कथा साहित्य : वस्तु और शिल्प' के प्रणयन हेतु सुश्री उषा द्विवेदी को बधाई देते हुए मैं आशावान हूँ कि साहित्य-समीक्षकों, शोधार्थियों तथा समस्त हिन्दी प्रेमियों द्वारा इस महत्त्वपूर्ण कृति का स्वागत किया जायेगा।

-विष्णुकान्त शास्त्री

निराला का कथा-साहित्य:
वस्तु और शिल्प

पुस्तकालय

निराला का कथा-साहित्य : वस्तु और शिल्प

डॉ. उषा द्विवेदी

प्रकाशक :

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

१-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट, कोलकाता-७०० ००७

टेलिफैक्स : २२६८-८२१५

ई-मेल : kumarsabha@vsnl.net

प्रकाशन तिथि :
२८ नवंबर २००४

•

मूल्य :
दो सौ रूपए

•

आवरण सज्जा :
श्री श्रीजीव अधिकारी

•

मुद्रक :
'हाइमेन कम्प्यूप्रिन्ट'
२, रूपचंद राय स्ट्रीट
कोलकाता-७०० ००७
दूरभाष : २८६०-३६७४

Nirala Ka Katha Sahitya : Vastu Aur Shilpa
by : Dr. Usha Dwivedi
Price : Rs. 200/-

प्रेरणा-पुंज

दिवंगत माता-पिता

श्रीमती ज्ञानदेवी द्विवेदी

एवं

श्री जयनारायण द्विवेदी

की

अशेष स्मृतियों

को

सादर समर्पित

शुभाशंसा

मुझे सुश्री उषा द्विवेदी के शोध प्रबंध 'निराला का कथा साहित्य : वस्तु और शिल्प' को पढ़कर बहुत संतोष हुआ। यह सही है कि हिन्दी काव्य जगत में निराला का स्थान बेजोड़ है इसीलिए एक अमर काव्य-शिल्पी के रूप में तो निरालाजी को सभी जानते हैं लेकिन उनके कथाकार, उपन्यासकार अथवा रेखाचित्रकार रूप से लोगों का परिचय अपेक्षाकृत कम है। विदुषी लेखिका ने निरालाजी के छह पूर्ण तथा दो अपूर्ण उपन्यासों, चौबीस कहानियों तथा दो रेखाचित्रों के आधार पर निराला के कथाकार रूप की विशद विवेचना कर वस्तुतः एक महत्वपूर्ण और उपयोगी कार्य किया है।

गद्य में काव्य की तुलना में विचारों की अभिव्यक्ति को अधिक विस्तार देने का अवसर उपलब्ध रहता है अतः मुझे लगता है कि कवि निराला के अन्तर्मन की सही समझ के लिए कथाकार निराला की रचनाएँ बहुत सहायक हो सकती हैं। इस दृष्टि से विदुषी लेखिका का यह कथन सर्वथा संगत है, "निराला का कथा साहित्य इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इसमें उनका सर्वांगीण व्यक्तित्व, उनकी स्वच्छन्द प्रकृति, उनका निरालापन तथा प्रखर जीवनदृष्टि व्यापक एवं विविध रूपों में प्रकट हुई है। उनके काव्य में जहाँ भावुकता एवं संवेदनशीलता की प्रधानता है, वहीं उनके कथा-साहित्य में जीवन का कठोर यथार्थ जीवन्त रूप में उद्घाटित हुआ है। इसके अलावा निराला के जीवन के अन्तरंग प्रसंगों की झांकी के प्रत्यक्ष दर्शन उनके कथा साहित्य में किये जा सकते हैं। इस तरह कथाकार के जीवन के अन्तः साक्ष्य के रूप में भी उनका कथा-साहित्य अत्यधिक प्रामाणिक है।"

शोधकर्त्री ने रेखाचित्रों को कथा साहित्य के अन्तर्गत विवेचित कर उचित ही किया है क्योंकि निराला के रेखाचित्रों में वस्तुतः कथाधर्मिता के गुण विद्यमान हैं।

निराला अपने युग की सभी प्रकार की विसंगतियों के प्रति विद्रोह के सशक्त वाहक थे

और निस्संदेह उनका वह विद्रोही-स्वर उनके कथा-साहित्य में अधिक विस्तार पा सका है। उनकी ये रचनाएँ तत्कालीन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता, शोषण, रूढ़ियों तथा कुरीतियों के विरुद्ध शंखनाद करने में समर्थ सिद्ध हुई हैं। अतः लेखिका का यह निष्कर्ष ठीक है कि, "उनके कथा साहित्य के केन्द्र में समाज का पीड़ित-वंचित वर्ग, नारी की दयनीय दशा (विधवा, परित्यक्ता, वेश्या), आर्थिक शोषण, जातिगत वैषम्य, रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास एवं समाज की जड़ मान्यताएँ हैं। सजग कथाकार निराला ने अपनी विशिष्ट शैली में इन कुरीतियों के खिलाफ कहीं आक्रोश प्रकट किया है तो कहीं व्यंग्य की मुद्रा में प्रहार भी किए हैं।" आस्थावादी जीवन-दृष्टि के पोषक होने के कारण उन्होंने इन समस्याओं का यथासंभव समाधान भी प्रस्तुत किया है।

कविवर निराला के कथाकार रूप को हमारे समक्ष पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने वाले शोध प्रबंध 'निराला का कथा साहित्य : वस्तु और शिल्प' के प्रणयन हेतु सुश्री उषा द्विवेदी को बधाई देते हुए मैं आशावान हूँ कि साहित्य-समीक्षकों, शोधार्थियों तथा समस्त हिन्दी प्रेमियों द्वारा इस महत्वपूर्ण कृति का स्वागत किया जायेगा।

(विष्णुकान्त शास्त्री)

भूमिका

जो स्थान भक्ति साहित्य में तुलसीदास का है, वही स्थान छायावाद में 'निराला' का है। कहना न होगा कि भक्तिकाल में रहकर भी तुलसीदास ने जिस प्रकार उसका अतिक्रमण किया है, उसी प्रकार 'निराला' भी छायावाद का अतिक्रमण कर परवर्ती साहित्य के भी प्रेरणास्रोत बने हुए हैं। निराला उन साहित्यकारों में हैं जिनकी रचनाओं में जातीय चेतना की धरोहर सुरक्षित है।

डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन कि "उनका अपना जीवन संघर्ष देश की जनता के संघर्ष से घुल मिलकर एक हो गया है। वह उनके साहित्य की ऊर्जा का मुख्य स्रोत है।" उनका साहित्य संघर्ष का पर्याय है। यह संघर्ष मनुष्य की मुक्ति का संघर्ष है। किसी धर्म, जाति, वर्ण या देश विशेष का मनुष्य नहीं, उन्हीं के शब्दों में 'समस्त विश्व के मनुष्य हमारी मनुष्यता के दायरे में आ जायँ' यही उनका प्रयास रहा है।

जिस प्रकार काव्य में उन्हें इस मनुष्य की तलाश है उसी प्रकार कथा साहित्य में भी। निराला ने उपन्यास के स्वरूप एवं प्रगति पर कहीं स्वतंत्र रूप में तो कहीं चलते चलाते विचार व्यक्त किया है। उन्हें जिस प्रकार साहित्य में 'प्राचीन रूढ़िवाद' 'अन्धपरम्परा' को देखकर दुख हो रहा था, उसी प्रकार उपन्यास साहित्य में भी 'सूनापन' दीख पड़ा है। 'उपन्यास-साहित्य और समाज' में वे कहते हैं "उपन्यास वास्तविक जीवन के चित्र रखता है। साथ साथ जहाँ जीवन दागी होकर संजीवनी शक्ति से रहित हो जाता है, वहाँ उसे नयी प्रथा से सँवारकर या प्रहार द्वारा नष्ट करके औपन्यासिक नवीन चित्रण का समावेश करता है।"

यहीं पर प्रेमचन्द का आदर्शवाद उन्हें पसन्द नहीं था। वे इस आदर्शवाद के साथ यथार्थवाद की तलाश में थे। सामाजिक विसंगतियों के साथ तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों पर उनकी महत्वपूर्ण टिप्पणी है "राजनीतिक मैदान में जिस तरह बड़ी बड़ी लड़ाइयों के लिये सिर उठाना आवश्यक है, उसी तरह साहित्य के मैदान में भी है, और चूँकि अभी इस लड़ाई के, हमारे साहित्य में, कहीं भी दृश्य नहीं देख पड़ते, इसलिये साहित्य के मुख चित्रण-अंग उपन्यासों की यह दुर्दशा है।"

'आज अमीरों की हवेली होगी गरीबों की पाठशाला' के आकांक्षी कवि निराला के कथा साहित्य में युग का यही यथार्थ प्रतिबिंबित है।

डॉ. उषा द्विवेदी को इस शोधप्रबन्ध 'निराला का कथा साहित्य: वस्तु और शिल्प' पर वर्धमान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि मिली है। लेखिका का यह कथन उचित है कि "समाज के कटु मधुर प्रसंगों को, राजनीति के कृष्ण-शुक्ल पक्षों को, साहित्य के विकासमान मूल्यों को एवं आर्थिक वैषम्य के दुष्परिणाम को निराला ने अपनी रचनाओं में विविध रूपों में अभिव्यक्त किया है।"

इस प्रबन्ध में शोषक-शोषित की स्थिति, जमींदार और किसानों की स्थिति, जाति प्रथा का विषैला दंश, नारी की दयनीय स्थिति का मार्मिक विवेचन किया गया है।

एक बात जो निराला के सम्बन्ध में विशेष विचारणीय है वह यह कि उन्होंने भी प्रेमचन्द की तरह सोचना आरम्भ कर दिया था कि 'अब किसानों या मजदूरों का युग है। देश की सच्ची शक्ति इसी जगह है। जब तक किसानों और मजदूरों का उत्थान न होगा, तब तक सुख और शान्ति का केवल स्वप्न देखना है।' दुःख इस बात का है कि आज भी वह सपना, सपना ही है। डॉ. उषा द्विवेदी की यह पुस्तक निश्चय ही निराला साहित्य के अध्ययन में इजाफा है।

(श्री नारायण पाण्डेय)

प्रकाशकीय

जिस रचनाकार ने अपनी काव्यात्मक उपलब्धियों के कारण हिन्दी साहित्य में अति विशिष्ट स्थान बना लिया हो, उसके कथा साहित्य का अध्ययन अत्यन्त रोचक और महत्वपूर्ण कार्य है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थ कवि निराला जिस दौरान कथा सृजन कर रहे थे उसी कालखंड में प्रेमचंद, सुदर्शन, गुलेरी और कौशिक जैसे सुप्रतिष्ठित कथाकारों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी कथा को उत्कर्ष प्रदान किया था। ऐसे में स्वाभाविक रूप से निराला का कथाकार रूप पृष्ठभूमि में ही रहा और उनके कवि रूप की विस्तृत चर्चा हुई।

यह ठीक है कि कवि निराला की तेजस्विता के सम्मुख उनका कथाकार रूप गौण ही रहा परन्तु यह भी सच है कि अपनी सहज मानवीयता, संवेदनशीलता और यथार्थबोध के कारण निराला ने बनी-बनाई लीक से अलग हटकर कथ्य और शैली दोनों दृष्टियों से नवीन पथ का सृजन किया तथा विशिष्ट कथाकारों के बीच भी अपना उल्लेखनीय स्थान बनाया।

उनके कथा-साहित्य का उद्देश्य समता और ममता से युक्त भारतीय समाज निर्मित करना रहा है इसीलिए निराला की इन रचनाओं ने समाज को जो नवीन भाव और विचार दिए हैं वे किसी भी समाज के उन्नयन में सहयोगी हो सकते हैं। जब तक समाज में शोषण है, कुरीतियाँ हैं, अन्याय, अंधविश्वास, अत्याचार और उत्पीड़न है, तब तक निराला की कथा कृतियाँ अपना महत्व बनाए रखेंगी।

डॉ० उषा द्विवेदी ने परिश्रमपूर्वक निराला के उपन्यासों, कहानियों एवं रेखाचित्रों का वस्तु एवं शिल्प के आधार पर विश्लेषण कर इस दिशा में किए गए विवेचनों की परिधि को और व्यापक बनाया है। मुझे विश्वास है कि निराला के कथा साहित्य विषयक ग्रंथों में यह पुस्तक भी प्रमुख स्थान प्राप्त करेगी।

डॉ० द्विवेदी का श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय की साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय योगदान है अतः उनकी यह पुस्तक प्रकाशित कर पुस्तकालय परिवार को प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। पुस्तकालय की ओर से प्रकाशित ग्रंथों की शृंखला में यह कृति भी पाठकों को पसन्द आएगी, इस विश्वास के साथ –

प्रेमशंकर त्रिपाठी

(डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी)
अध्यक्ष
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

शुभ दीपावली सं० २०६१
१२ नवंबर २००४

प्राक्कथन

भारतीय वाङ्मय में कथा-साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में कथा-काव्य का रूप सुरक्षित मिलता है। वैदिक कहानियाँ, रामायण एवं महाभारत की कथाएँ, जातक कथाएँ आदि इसका प्रमाण हैं। मनुष्य की कुतूहल एवं रमण वृत्ति ने कथा-साहित्य को जन्म दिया एवं इसे लोकप्रिय बनाया। आधुनिक काल में गद्य के विकास के साथ-साथ कथा-साहित्य की विकास-यात्रा भी आरम्भ हुई। प्रेमचन्द-युग में यथार्थ-जीवन से जुड़कर कहानी एवं उपन्यास की विधाएँ जन-जन तक पहुँचीं। इस तरह मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग बनकर कथा-साहित्य ने अपना महत्व प्रतिपादित किया। मानव-जीवन की व्यापक संवेदना की भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित होने के कारण आज कथा-साहित्य अत्यधिक लोकप्रिय हो उठा है। कथा-साहित्य के जीवन से गहरे जुड़ाव ने ही निराला जैसे समाज-चेता एवं संवेदनशील रचनाकार को इस दिशा की ओर आकृष्ट किया।

निराला का साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यन्त गरिमा-मंडित है। वे युग-द्रष्टा एवं युग-स्रष्टा साहित्यकार थे। युगीन विरोधों एवं विषमताओं का सामंजस्यपूर्ण चित्रण निराला के कर्तृत्व की विशेषता है। कविता के क्षेत्र में वे आधुनिक वादों एवं शैलियों के जनक थे। उन्होंने सामाजिक स्थिति के विकास में महत्वपूर्ण एवं प्रगतिशील भूमिका अदा की। कवि के रूप में निराला का काव्य अत्यन्त समादृत हुआ है। अपनी काव्यात्मक उपलब्धियों से जन-मानस को अभिभूत करने वाले निराला के कथाकार रूप की विवेचना अपने आप में अत्यन्त रोचक एवं चुनौतीपूर्ण कार्य है।

निराला का कथा-साहित्य इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इसमें उनका सर्वांगीण व्यक्तित्व, उनकी स्वच्छन्द प्रकृति, उनका निरालापन तथा प्रखर जीवन दृष्टि व्यापक एवं विविध रूपों में प्रकट हुई है। उनके काव्य में जहाँ भावुकता एवं संवेदनशीलता की प्रधानता है, वहीं उनके कथा-साहित्य में जीवन का कठोर यथार्थ जीवन्त रूप में उद्घाटित हुआ है। इसके अलावा निराला के जीवन के अन्तरंग प्रसंगों की झाँकी के प्रत्यक्ष दर्शन उनके कथा-साहित्य में किए जा सकते हैं। इस तरह कथाकार के जीवन के अन्तः साक्ष्य के रूप में भी उनका कथा-साहित्य अत्यधिक प्रामाणिक है। छायावादी युग के प्रमुख कवि के रूप में परिगणित निराला का गद्य-लेखन भी उतना ही सशक्त है। उनके लेखन के इस पक्ष पर विचार करना भी आवश्यक जान पड़ा। यद्यपि इस विषय पर कई विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किए हैं, फिर भी विषय की विशदता एवं गम्भीरता

को देखते हुए अब भी इस क्षेत्र में कार्य करने की पर्याप्त संभावनाएँ मौजूद हैं। इसलिए इस विषय में हिन्दी की अत्यन्त समर्थ विधा 'कथा' के माध्यम से एक लब्ध-प्रतिष्ठ रचनाकार की कृतियों का मूल्यांकन किया गया है।

'निराला का कथा-साहित्य वस्तु एवं शिल्प' विषय के अन्तर्गत मैंने कहानियों एवं उपन्यासों के साथ-साथ रेखाचित्रों को भी समाहित किया है। यद्यपि कथा-साहित्य में कहानी एवं उपन्यास की तरह रेखाचित्र की स्पष्ट धारणा नहीं थी, किन्तु आजकल रेखाचित्र का कथा-साहित्य से आन्तरिक जुड़ाव स्वीकार किया जा रहा है। निराला के रेखाचित्रों में कथाधर्मिता का जो गुण विद्यमान है, उसे देखते हुए ही मैंने अपने विवेचन में रेखाचित्रों को भी संयुक्त किया है।

इस शोध-प्रबन्ध के छह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में निराला-युगीन विभिन्न परिस्थितियों के आकलन का प्रयास किया गया है। साथ ही इन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में निराला का जो साहित्यिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ, उसे उनके विशिष्ट तेवर के साथ चित्रित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में निराला के साहित्य के सर्वेक्षण के अन्तर्गत उनके बहुआयामी साहित्यिक लेखन की विशेषताओं का उद्घाटन किया गया है।

तृतीय अध्याय में निराला के कथा-साहित्य का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। कवि के रूप में समादृत निराला के कथाकार रूप की विवेचना इस अध्याय में की गयी है। उनके कहानी-संग्रहों, उपन्यासों एवं रेखाचित्रों का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए निराला के कथाकार रूप की प्रतिस्थापना इस अध्याय की विषय-वस्तु है।

चतुर्थ अध्याय में निराला के कथा-साहित्य में वस्तु तत्त्व की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। वस्तु एवं कथानक की प्राचीन तथा नवीन परिभाषाओं पर विचार करते हुए निराला के कथा-साहित्य में वस्तु-विन्यास-कौशल की विशेषताओं को उद्घाटित किया गया है।

पंचम अध्याय में निराला के कथा-साहित्य में शिल्प पक्ष पर विशद रूप से विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली, संवाद अथवा कथोपकथन, देशकाल एवं वातावरण तथा उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन – इन तत्त्वों के आधार पर निराला के कथा-साहित्य की विशद रूप से समीक्षा की गयी है।

षष्ठ अध्याय में निष्कर्ष के रूप में निराला के कथा-साहित्य की उपलब्धियों एवं महत्ता को रेखांकित किया गया है।

प्रस्तुत शोध-कार्य वर्धमान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के (अवकाश-प्राप्त) रीडर श्री श्रीनारायण पाण्डेय के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। उनके संतुलित विचार, प्रखर चिन्तन, गहन अनुभव एवं विद्वत्तापूर्ण निर्देशन के कारण ही शोध-प्रबंध पूर्ण हो सका। गुरुवर की महती कृपा को औपचारिक आभार-प्रदर्शन के अकिंचन शब्दों से व्यक्त करने का सामर्थ्य मेरी वाणी में नहीं है। फिर भी कृतज्ञता-ज्ञापन के शिष्य के आंतरिक-धर्म का विनम्रतापूर्वक निर्वाह

करते हुए मैं निस्संकोच स्वीकार करती हूँ कि इस शोध-कार्य की तमाम खूबियाँ उनकी हैं एवं खामियाँ मेरी अपनी।

शोध-कार्य के लिए जिस विवेकशील दृष्टि की आवश्यकता होती है, उसे प्रदान करने में जिनका कुशल अध्यापन एवं अनुभव विशेष सहायक रहा है, अपने उन सभी गुरुजनों के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ। श्रद्धेय गुरुवर आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की सत्प्रेरणा एवं सदाशयता ने सदा मेरा उत्साहवर्धन किया है। इस कृति के प्रकाशन पर 'शुभाशंसा' लिखकर उन्होंने इसे अपने स्नेह से समृद्ध किया है। इस हेतु मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धापूरित कृतज्ञता अर्पित करती हूँ।

मुझे यह स्वीकार करने में कतई संकोच नहीं है कि इस शोध-प्रबंध के लेखन में मित्रवर डा० प्रेमशंकर त्रिपाठी, हिन्दी विभागाध्यक्ष सुरेन्द्रनाथ सांध्य कालेज ने अपने बहुमूल्य सुझावों एवं व्यावहारिक दृष्टि से सदैव मुझे प्रेरित किया। शोध के विषय-चयन से लेकर निराला के कथा-साहित्य की तमाम बारीकियों के बारे में विस्तार से बताकर उन्होंने मुझे इस दिशा में कार्य करने के लिए उत्साहित किया। डा० त्रिपाठी के सत्परामर्श की छाप इस कृति के शब्द-शब्द पर है। धन्यवाद की औपचारिकता निभा कर मैं इस ऋण का गुरुत्व कम नहीं करना चाहती।

अपने पूज्य माता-पिता का शुभाशीर्वाद एवं परिवार-जनों की प्रेरणा की शीतल-छाया ने मुझे सदा उत्साह संवलित किया। मेरी घनिष्ठ मित्र डा० वसुमति डागा, बंगवासी कॉलेज की हिन्दी विभागाध्यक्ष की आत्मीयता एवं प्रेरणा अविस्मरणीय है।

इस ग्रंथ का प्रकाशन श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा हो रहा है, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। अपने विशिष्ट साहित्यिक प्रकाशनों द्वारा पुस्तकालय ने महानगर में खास पहचान बनायी है। इसके मार्गदर्शक श्री जुगलकिशोर जैथलिया, अध्यक्ष डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी एवं मंत्री श्री महावीर बजाज ने इसके सुरुचिपूर्ण प्रकाशन में जो आग्रह दिखाया है, उसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ। पुस्तकालयाध्यक्ष श्री त्रिभुवन तिवारी ने आवश्यक पुस्तकें समय-समय पर उपलब्ध कराके मेरी तमाम कठिनाइयों का समाधान किया। पुस्तकालय के समस्त पदाधिकारियों से जो अपेक्षित सहयोग मिला उसके लिए धन्यवाद ज्ञापन के शब्द अपर्याप्त हैं।

उन सभी विद्वान लेखकों की मैं आभारी हूँ जिनके ग्रंथों, निबंधों, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से मुझे सहायता मिली है।

शोध के अनुशासन का पालन करते हुए भी उसे रचनात्मक तेवर देने की मेरी कोशिश कहाँ तक सफल रही है, इसका निर्णय सुधी-जन ही करेंगे। इस शोध कार्य से निराला के कथा-साहित्य के जिज्ञासु अध्येताओं को किंचित भी लाभ मिल सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगी।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
६ सितम्बर, २००४ ई०

उषा द्विवेदी
(उषा द्विवेदी)

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय : १-२०

निराला का देशकाल

प्रस्तावना
राजनीतिक परिस्थिति
सामाजिक परिस्थिति
आर्थिक परिस्थिति
साहित्यिक-सांस्कृतिक परिस्थिति
निराला का व्यक्तित्व

द्वितीय अध्याय : २१-६१

निराला के साहित्य का सर्वेक्षण

प्रस्तावना
निराला का साहित्य
निराला की काव्य-कृतियाँ : एक सर्वेक्षण
निराला के निबन्ध : एक सर्वेक्षण
निराला की आलोचनात्मक कृतियाँ : एक सर्वेक्षण
निराला कृत जीवनी साहित्य : एक सर्वेक्षण
निराला का स्फुट गद्य-साहित्य : एक सर्वेक्षण

तृतीय अध्याय : ६२-८४

निराला के कथा-साहित्य का सर्वेक्षण

निराला के कहानी-संग्रह : एक सर्वेक्षण
निराला के उपन्यास : एक सर्वेक्षण
निराला के रेखाचित्र : एक सर्वेक्षण

चतुर्थ अध्याय : ८५-१२७

निराला के कथा-साहित्य में वस्तु

निराला की कहानियों का वस्तु विन्यास
निराला के उपन्यासों का वस्तु विन्यास
निराला के रेखाचित्रों का वस्तु विन्यास

पंचम अध्याय : १२८-२३६

निराला के कथा-साहित्य में शिल्प

पात्र एवं चरित्र चित्रण : कहानियों के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण
उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण
निराला की चरित्र-सृष्टि : वैविध्य एवं वैशिष्ट्य

भाषा-शैली : निराला के कथा-साहित्य का भाषिक सौन्दर्य

निराला के कथा-साहित्य में संवाद योजना
निराला के कथा साहित्य में देशकाल एवं वातावरण

उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन

चिन्तन का सामाजिक संदर्भ : नारी केन्द्रित सामाजिक-समस्याएँ, अभिशप्त नारी जीवन एवं आदर्श नारी की परिकल्पना, वर्ण-व्यवस्था का मुखर विरोध

चिन्तन का आर्थिक संदर्भ : शोषण एवं पूँजीवाद का विरोध, शोषित जनता के प्रति सहानुभूति

चिन्तन का राजनीतिक संदर्भ : स्वाधीनता एवं स्वदेशी पर बल, राजनीतिक स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार एवं सांप्रदायिकता पर कठोर प्रहार

चिन्तन का सांस्कृतिक संदर्भ : सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा, आस्थावादी जीवन दृष्टि

षष्ठ अध्याय : २३७-२४०

प्रस्तुत शोध-कार्य का निष्कर्ष

सहायक ग्रन्थ-सूची : २४१-२४८

निराला का देश-काल

प्रस्तावना

कोई भी साहित्यकार एक निश्चित समय-विशेष में रचना करते हुए तत्कालीन के साथ-साथ अतीत एवं अनागत भविष्य को समेटते हुए चलता है। इस प्रक्रिया में जो साहित्यकार जितना निष्णात होता है, वह उतना ही प्रभावशाली एवं कालजयी रचनाकार बन पाता है। तीनों कालों को समेटने की क्षमता प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकारों में ही होती है। अतीत की जीवन्त परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करते हुए, वर्तमान की जटिलताओं से संघर्ष करते हुए, मंगलमय भविष्य की कल्पना ही साहित्यकार का प्रधान लक्ष्य होता है। इस दिशा में युगीन परिस्थितियाँ, परिवेश एवं सजग जीवन दृष्टि महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

सजग एवं संवेदनशील रचनाकार अपने युग से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। युग-विशेष की परिस्थितियाँ उसकी अनुभूति को धारदार बनाती हैं। वह अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि तभी कहा जा सकता है, जब उसने अपनी युगीन स्थितियों को जागरूक रचनाकार की भाँति न केवल देखा-परखा हो, वरन् उस काल की समस्याओं को भी चित्रित किया हो, उन समस्याओं के समाधान का दिशा-निर्देश भी किया हो। अभिव्यक्ति का यह कौशल उसी साहित्यकार को प्राप्त होता है, जिसमें युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक परिस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन करने की क्षमता हो। संक्षेप में कहें तो वही रचनाकार प्रतिष्ठा अर्जित कर पाता है जो युगीन संवेदना का अपनी अभिव्यक्ति के साथ सुसंगत सामंजस्य स्थापित करने में समर्थ हो।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ऐसे ही सजग एवं संवेदनशील रचनाकार थे। साहित्य की अलग-अलग विधाओं पर उनका विस्तृत लेखन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि निराला ने अपने युग की परिस्थितियों एवं वातावरण का सूक्ष्म अवलोकन किया था एवं उससे रचनात्मक ऊर्जा प्राप्त की थी। इसीलिए निराला साहित्य के विश्लेषण के लिए उनके समय का विवेचन अत्यन्त आवश्यक है। समाज के कटु-मधुर प्रसंगों को, राजनीति के कृष्ण-शुक्ल पक्षों को, साहित्य के विकासमान मूल्यों को एवं आर्थिक वैषम्य के दुष्परिणामों को निराला ने अपनी रचनाओं में विविध रूपों में अभिव्यक्त किया है। एक जागरूक रचनाकार की भाँति उन्होंने युगीन परिस्थितियों के आलोक में अपने संपूर्ण साहित्य का सृजन किया।

निराला का सम्पूर्ण कथा-साहित्य उनके समय के वातावरण, परिवेश एवं साहित्यिक-सामाजिक परिस्थितियों का प्रामाणिक दस्तावेज है। उनके साहित्य में पराधीन और स्वाधीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति का, शोषितों की पीड़ा एवं वेदना का तथा साहित्यिक एवं सामाजिक संघर्षों का मार्मिक चित्रण मिलता है। निराला के कथा-साहित्य के विश्लेषण के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का, देशकाल का, सम्यक् विवेचन अत्यन्त उपयोगी है। यही कारण है कि शोध-प्रबन्ध के आरम्भ में युगीन परिस्थितियों के आकलन का प्रयास किया गया है। सुविधा की दृष्टि से इस अध्ययन को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक उपशीर्षकों में विभक्त किया गया है। इन परिस्थितियों के घात-प्रतिघातों के बीच निराला का जो साहित्यिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ, उसके आकलन की भी चेष्टा अध्याय के अन्त में की गयी है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला युग-द्रष्टा साहित्यकार थे। युगीन विषमताओं का सजीव आकलन उनके साहित्य में हुआ है। उन्होंने अपने युग के भाव-बोध को आत्मसात् कर उसे साहित्य में चित्रित किया है। उन्होंने जीवन को खुली आँखों देखा, परखा, अनुभव किया एवं तत्पश्चात् साहित्य में उसका चित्रण किया। अतः उनके साहित्य में युग का यथार्थ चित्रित है।

साहित्यकार के रूप में निराला की जीवन यात्रा का आरंभ १९१६ ई० से हुआ। शुरू में वे कविता-लेखन की ओर उन्मुख हुए। किन्तु जीवन-जगत की विसंगतियों को और अधिक व्यापक आधार-भूमि प्रदान करने के लिए परवर्ती काल में वे कथा साहित्य की ओर उन्मुख हुए। निराला के सम्पूर्ण रचना-संसार में १९१६ से १९६१ तक का कालखंड समाहित है। पराधीन एवं स्वाधीन भारत के विविध चित्र इस समय देखे जा सकते हैं। इस समय को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (१) स्वतंत्रता काल (२) स्वातंत्र्योत्तर काल। देश में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से विभिन्न परिदृश्य उभर रहे थे। विषय के पूर्ण विवेचन के लिए उनका स्वतंत्र अध्ययन आवश्यक है।

राजनीतिक परिस्थिति

यह युग राजनीतिक हलचलों का युग था। सन् १८५७ के प्रथम-स्वतन्त्रता संग्राम का अंग्रेजों ने नृशंसतापूर्वक दमन कर दिया। किन्तु इस क्रांति के फलस्वरूप विद्रोह का जो बीज भारतीयों के मन में पड़ चुका था, वह धीरे-धीरे पल्लवित-पुष्पित होने लगा। भारत में कम्पनी राज्य समाप्त होकर विक्टोरिया राज्य स्थापित हुआ। महारानी के घोषणा-पत्र में भारतीयों के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए बड़ी-बड़ी घोषणाएँ की गयीं किन्तु कालान्तर में ये सभी निर्मूल साबित हुईं।

सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इसका प्रधान उद्देश्य प्रशासकीय कार्यों में अंग्रेजों को सहयोग देना था। आरम्भ में कांग्रेस की नीति समझौतावादी थी। किन्तु बाल गंगाधर तिलक एवं गोपालकृष्ण गोखले के प्रवेश के साथ इसका रूप बदल गया। गरम-दल का प्रभाव बढ़ने से क्रांतिकारी दल संगठित होते गए एवं स्वाधीनता की भावना को और बल

मिला। १९०५ में बंग-भंग के कानून ने इस विद्रोहाग्नि में घृत का कार्य किया। जगह-जगह विस्फोट होने लगे। इस समय तिलक, अरविन्द घोष, रास बिहारी बोस, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव, राजगुरु जैसे क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी शासन की नींव हिलाकर रख दी। लोगों में बढ़ते असन्तोष को देखकर अंग्रेजी सरकार ने अनेक सुधार-कानून पास किए। १९०९ में एक कानून पास कर हिन्दू और मुसलमानों का पृथक् निर्वाचन स्वीकार कर लिया गया किन्तु इसने साम्प्रदायिक विद्वेष को जन्म दिया जो शनैः शनैः उग्र रूप धारण करता गया। १९१४ में प्रथम विश्व-युद्ध आरम्भ होने पर अंग्रेजों ने कूट नीति से काम लिया एवं भारत के नेताओं को अनेक सब्ज बाग दिखाए। इससे भारतीयों ने इस युद्ध में अंग्रेजों का खुलकर साथ दिया। १९१९ में युद्ध समाप्त होने पर गोरी-सरकार ने भारतीयों को उपहार-स्वरूप रौलट-एक्ट दिया। इससे लोगों की आशाओं पर तुषारापात हुआ। इसी समय पंजाब के जलियाँवाला-बाग के निर्मम हत्याकांड ने भारतीय जन-मानस को बुरी तरह झकझोर कर रख दिया। इसी समय खिलाफत आन्दोलन चलाया गया। सन् १९२० में कांग्रेस की बागडोर गांधी जी ने संभाली। उन्होंने कांग्रेस को जन-संगठन बनाया और हिन्दू-मुसलमानों को ऐक्यबद्ध करने का प्रयास किया। गाँधी जी ने अंग्रेजों के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन एवं स्वदेशी आन्दोलन छेड़े। समस्त भारतीयों ने उनके साथ जुड़कर विदेशी वस्त्रों, सरकारी नौकरियों, न्यायालयों, स्कूल-कालेज एवं उपाधियों का बहिष्कार आरम्भ किया। जलियाँवाला बाग-हत्याकांड से क्षुब्ध होकर कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'सर' की उपाधि लौटा दी। कांग्रेस की असहयोग-नीति से असहमत होकर देशबन्धु चितरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू सरीखे नेताओं ने स्वराज्य पार्टी नाम से एक अलग संस्था का गठन किया। इधर कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति को देखकर मदन मोहन मालवीय एवं लाला लाजपतराय जैसे स्वाभिमानी नेता हिन्दू-महासभा में शामिल हो गए। १९२० से १९३० तक का काल विभिन्न आन्दोलनों, दमन, जेल, यातना, लाठी-चार्ज जैसे अंग्रेजी कूटनीतिक दमन-चक्रों का काल है। हिन्दू-मुसलमानों के आपसी वैमनस्य को भाँपकर अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता, हिन्दी-उर्दू-भाषा-समस्या एवं मुस्लिम लीग की स्थापना जैसे विष-बीज बो दिए जिसकी शाखा-प्रशाखाएँ विकराल रूप से बढ़ने लगीं। १९३१ से १९३५ के मध्य विभिन्न गोलमेज परिषद्, कमीशन, पैक्ट एवं संधियों के फलस्वरूप १९३५ में गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया ऐक्ट पास हुआ एवं संघ-शासन की नींव पड़ी।

१९३७ के चुनावों के बाद भारत के सात प्रान्तों में कांग्रेस के मंत्रिमण्डल बने किन्तु १९३९ में एक बार फिर क्रांति की ज्वाला ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया जब अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों की सम्मति के विरुद्ध उन्हें द्वितीय महायुद्ध की अग्नि में झोंक दिया। इससे क्षुब्ध होकर कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। १९४२ में कांग्रेस ने 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। जगह-जगह बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ होने लगीं। कांग्रेस के प्रायः सभी प्रमुख नेता बन्दी बना लिए गए। अंग्रेज सरकार भी अब यह समझ चुकी थी कि भारतीय जन-मानस जो अपनी स्वाधीनता प्राप्ति के लिए पूर्ण जाग्रत हो गया था, उसे किसी भी तरह के दमन, यातना, कुचक्र एवं गिरफ्तारियों

से दबाया नहीं जा सकता। उधर रूस में साम्यवाद की स्थापना हुई। कार्ल मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा से अल्पकाल में ही रूस ने आश्चर्यजनक प्रगति की। इससे हमारी राजनीतिक चेतना भी प्रभावित हुई। १९४५ में इंगलैण्ड में मजदूर-दल की सरकार बनी। उसने भारतीयों के साथ सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया। परिणामतः १९४६ में भारत में अन्तरिम सरकार बनी किन्तु सांप्रदायिकता का जो विष-बीज अंग्रेजी कूटनीति ने बोया था, वह अब तक पूर्ण वृक्ष में परिणत हो चुका था। इसका दुष्परिणाम कलकत्ता, नोआखाली, बिहार और पंजाब में भयंकर साम्प्रदायिक दंगों के रूप में सामने आया। समस्त देश में रक्त की नदी प्रवाहित हो गयी। अन्ततः १५ अगस्त १९४७ को भारत को पूर्ण-स्वाधीनता मिली, किन्तु देश का विभाजन हिन्दुस्तान और पाकिस्तान इन दो टुकड़ों में कर दिया गया।

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस की सरकार बनी तथा एक तरह से राजनीतिक स्थिरता कायम हुई किन्तु दो सौ वर्षों की लम्बी दासता ने जिन सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया था, उनसे भारतीयों को जूझना बाकी था। स्वतंत्रता का अर्थ था - साम्राज्यवाद, सामन्तवाद-पूंजीवाद, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शोषण से मुक्त भारतीय जीवन का फिर से संस्कार कर उसे विश्व में एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में स्थापित करना।

आजादी प्राप्ति के उपरान्त देश को एक बड़ी अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ा। विभाजन के फलस्वरूप भीषण रक्तपात, लूटमार, स्त्रियों के अपहरण, बलात्कार और नृशंसता के ताण्डव से पीड़ित जनता के आवास, भोजन एवं जीविकोपार्जन की व्यवस्था सरकार के सामने एक बड़ी चुनौती के रूप में खड़ी हुई। शरणार्थी के रूप में आए विस्थापितों को भारत की जीवन-धारा में आत्मसात् करने के लिए सरकार को भगीरथ प्रयत्न करने पड़े।

दूसरी जिस विकट समस्या का सामना सरकार को करना पड़ा वह थी - छह सौ से अधिक देशी रियासतों को भारतीय संघ में मिलाना और देश का राजनीतिक एकीकरण करना। सरदार वल्लभभाई पटेल ने अपनी प्रतिभा, दूरदर्शिता और प्रेरणादायक नेतृत्व द्वारा वह महान् कार्य पूर्ण किया और इन देशी रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित कर देश की भौगोलिक और राजनीतिक एकता की रक्षा करने का ऐतिहासिक कार्य किया।

२६ जनवरी १९५० को भारत में नया संविधान लागू हुआ। "उसमें (१) सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय (२) विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता, (३) सबको समान अवसर प्रदान करने और (४) राष्ट्र की एकता एवं व्यक्ति की गरिमा को पुष्ट करने वाले बन्धुत्व की घोषणा की गई थी।" प्रजातांत्रिक समाजवाद द्वारा जन-जीवन का चौमुखी स्तर ऊपर उठाना भारतीय सरकार ने अपना लक्ष्य बनाया। "भारतीय सरकार ने वैज्ञानिक और योजनाबद्ध रूप में कार्य सम्पन्न करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनाईं, जिनके मूल में सिद्धांत यह है कि अधिक से अधिक बचत के साथ और निर्धारित समय के भीतर कृषि, उद्योग, सिंचाई, बिजली, शिक्षा, परिवहन, यातायात के साधन, आवास, स्वास्थ्य, बेकारी की समस्या, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास, भूमिहीनों में भूमि का वितरण, गरीबी हटाने आदि क्षेत्रों में संगठित प्रयास

द्वारा, साथ ही अर्थशास्त्रियों, उद्योगपतियों, किसान एवं मजदूर संस्थाओं और सर्वोपरि जन सहयोग द्वारा कार्य सम्पन्न हों।"[1]

यह कहना अनावश्यक न होगा कि इनमें से कुछ योजनाएँ पूरी भी की गईं किन्तु जैसे कि तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने एक पत्र में लिखा है – "इतना कुछ करने के बाद भी यह कहना ठीक होगा कि सरकार आशा के अनुसार लोगों में उत्साह पैदा नहीं कर सकी है। इसके विपरीत देश के क्षितिज पर असंतोष के चित्र दिखाई देते हैं और इससे भी बुरे चिह्न हैं अराजकता-सूचकता के। जिस उत्साह और आदर्श ने हमें स्वराज्य हासिल करने के लिए प्रेरित किया और जिसके कारण हम स्वराज्य पा सके, आज उन संघर्ष के दिनों का शतांश उत्साह भी जनता में नहीं है। यह हमारे गिरते हुए चरित्र और आध्यात्मिक मूल्यों से स्पष्ट है। ऐसा लगता है, जैसे मानव-चरित्र राष्ट्रीय प्रगति के साथ चलने में पिछड़ रहा है अथवा असमर्थ है।"[2]

आजादी प्राप्ति का सपना तो साकार हुआ परन्तु इसके साथ स्वातन्त्र्योत्तर समाज की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों ने अपना जो रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया, उससे स्वाधीनता-प्राप्ति का उल्लास क्षीणतर होता गया। विडम्बनीय स्थितियों ने देशवासियों के मन में कुंठा का भाव जागृत किया और उन्हें लगने लगा कि इस प्रकार की खोखली आजादी समाज का क्या भला कर सकती है। नेताओं में त्याग के बदले बढ़ती हुई पदलिप्सा, भ्रष्टाचार के दानव का विकराल रूप, भाई-भतीजावाद, चाटुकारिता, लालफीताशाही आदि ने जनता के मोह को पूरी तरह भंग कर दिया। मोह-भंग की इस मनः स्थिति से साहित्यकार भी अछूता नहीं रहा। अन्य साहित्यकारों की भाँति निराला ने भी जागरूकता का परिचय देते हुए स्वाधीनता के पूर्व एवं परवर्ती काल की स्थितियों का अपने कथा-साहित्य में जीवन्त चित्रण किया। डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है – "निराला के साहित्य में पराधीन भारत का आक्रोश भी है और तथाकथित स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् के घोर असंतोष की कटु व्यंजना भी।"[3]

राजनीतिक स्थितियों का संक्षिप्त आकलन एक ओर अंग्रेजों के दमन चक्र में पिसती भारतीय जनता का चित्र उपस्थित करता है तो दूसरी ओर देशवासियों द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति के लिये किये जाने वाले कठिन संघर्ष को भी अभिव्यंजित करता है। निराला की समाज सचेतन दृष्टि इन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रही। उनके युवा-मन पर तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा। डा० रामविलास शर्मा ने अपने ग्रन्थ निराला की साहित्य साधना द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १६ पर लिखा है – "दमन और सुधारों की दोहरी नीति लागू करने के साथ-साथ अंग्रेज साम्प्रदायिक भेदभाव बढ़ाकर स्वाधीनता आन्दोलन को कमजोर बनाने का प्रयत्न करते थे। हिन्दुओं और मुसलमानों में वैमनस्य पैदा करने के अलावा वे अछूतों के अलग संगठन को बढ़ावा देकर हिन्दुओं में भी फूट डाल रहे थे। निराला ने साम्राज्यवाद की इस भेद-नीति का विरोध किया और इस दिशा में न केवल कांग्रेस के प्रयत्नों का समर्थन किया वरन् उनसे एक कदम आगे बढ़कर सामान्य मानवता के स्तर पर निम्न जनों को संगठित करने के उपाय भी सुझाए।"[4]

इस संदर्भ में द्रष्टव्य है 'सुधा' की नवम्बर १९२९ की संपादकीय टिप्पणी। इस टिप्पणी में

निराला लिखते हैं – "भारतवर्ष ने जितना सहना था, सह लिया। वह समय निकल गया जब भारत खिलौना पाकर बहल जाता था। देश समझ गया है कि हाथ-पर-हाथ धरकर बैठने से काम न चलेगा। भारत में एक नई लहर पैदा हो गयी। नवयुवकों ने रणभेरी बजा दी।"[1]

सामाजिक परिस्थिति

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं बीसवीं शताब्दी के छठे दशक तक राजनीतिक परिस्थितियों की ही भाँति सामाजिक परिस्थितियाँ भी युग को उद्वेलित कर रही थीं। सामाजिक आन्दोलन भी राजनीति के ही अंग थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न सामाजिक संगठन अपनी-अपनी तरह से कार्यरत थे।

स्वाधीनता-आन्दोलन के युग में ब्राह्म-समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाएँ अपने-अपने ढंग से सामाजिक बुराइयों एवं विषमताओं के उन्मूलन के लिए कार्य कर रही थीं।

१८५७ के विद्रोह के बाद बड़े-बड़े राजा-रजवाड़े, जमींदार एवं सामन्त अंग्रेज प्रभुओं के भक्त बन गए थे। उनका संरक्षण प्राप्त हो जाने पर वे खुलकर प्रजा का शोषण करने लगे थे। उनकी विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। उनमें अनैतिकता, उत्पीड़न एवं अत्याचार बढ़ता ही गया। कृषक एवं पीड़ित शोषित जनता जमींदारों के पाशविक अत्याचारों से यों ही क्रन्दन कर रही थी। ऊपर से महाजनी सभ्यता के फैलते जाल ने उनकी स्थिति और भी दयनीय बना दी। धीरे-धीरे समाज शोषक एवं शोषित – इन दो वर्गों में विभक्त हो गया एवं उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न हुई।

सामन्ती व्यवस्था को हलका सा ही झटका लगा। वर्ण-व्यवस्था गुंजलक मार कर बैठी रही। सामन्ती उत्पीड़न की शिकार जनता उससे मुक्त होना चाहती थी। उसके बीच ही सामाजिक संगठनों की नींव पड़ी। समाज सुधार का एक व्यापक आन्दोलन चला। गाँधी जी के नेतृत्व में अछूतोद्धार एवं वर्ण व्यवस्था जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए विशाल पैमाने पर कार्य किया गया। किन्तु इस महत् कार्य में लोगों में व्याप्त अज्ञान, निरक्षरता एवं निर्धनता बाधक बनकर उपस्थित हुई। देश की अशिक्षित जनता प्राचीन रूढ़ियों का पालन करना ही अपना धर्म समझती थी। समाज में अन्ध-विश्वास, कुसंस्कारों का बोलबाला था। वह अवश्य था कि समाज का वह वर्ग जो नवीन शिक्षा प्राप्त कर रहा था, धीरे-धीरे इन सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जाग्रत हो रहा था। किन्तु पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति के दुष्प्रभाव के कारण वे भी पश्चिम का अंधानुकरण ही अपना मूल लक्ष्य मान बैठे थे।

समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। सामाजिक रूढ़ियों के कारण ही जहाँ एक ओर जातिप्रथा के अभिशप्त शूद्रों को दासता करनी पड़ती थी वहीं दूसरी ओर नारी पराधीनता का शिकार थी। उनकी सामाजिक पराधीनता के मूल में आर्थिक परावलम्बन था। उन्हें भी अत्यन्त अभिशप्त जीवन जीना पड़ता था। घर की चहार-दीवारी में उन पर अमानुषिक अत्याचार होते थे। सामन्ती विलासिता के कारण उसे मात्र भोग्या समझा जाता था। दहेज-प्रथा, बाल-

विवाह, अनमेल विवाह, पर्दा-प्रथा तथा वेश्या समस्या जैसी जंजीरों में जकड़ कर उनके सामाजिक विकास को अवरुद्ध कर दिया गया था। पुरुष निर्मित नैतिक और आर्थिक जीवन-व्यवस्था का पाठ उन्हें पढ़ाया जाता था।

निराला के विपुल साहित्य में समाज की इन गर्हित स्थितियों का चित्रण हुआ है – कहीं आक्रोश की मुद्रा में, कहीं व्यंग्य की तिर्यक रेखाओं में तो कहीं समाज सुधार की संकल्प भरी वाणी में। ये चित्र एक ओर निराला साहित्य के वैविध्य का दिग्दर्शन कराते हैं तो दूसरी तरफ उनके अभिव्यक्तिकौशल की भी विशिष्टता प्रमाणित करते हैं। उनके ये वर्णन अत्यन्त जीवन्त तथा मार्मिक हैं और तत्कालीन सामाजिक परिवेश का यथातथ्य चित्रण करने में समर्थ हैं। जैसा कि तत्कालीन परिस्थिति के आकलन से पता चलता है कि निराला में अभिव्यक्ति का यह तीखापन परिवेशगत था। समाज की विडम्बनाओं को उन्होंने स्वयं देखा था, परखा था और भोगा भी था। इसीलिए उनके द्वारा वर्णित सामाजिक प्रसंग 'आँखिन देखी' होने के कारण ज्यादा प्रभावशाली बन पड़े हैं। 'कागद लेखी' स्थितियों की तरह उनमें शुष्कता एवं कोरी कल्पना नहीं है।

निराला की कविताओं में समाजचेता कवि की जागरूकता परिलक्षित होती है। उनकी रचनाओं में व्यंग्य जिस रूप में प्रतिष्ठित हुआ, उससे रचनाकार की तीव्रता के साथ व्यापकता का भी प्रमाण मिलता है। 'कुकुरमुत्ता' में यदि शोषक और शोषित वर्ग की स्थिति का आकलन है तो व्यंग्य की वह तीक्ष्णता भी है जो सर्वहारा के पक्षधर कवि के पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध उग्र आक्रोश को प्रकट करती है। कविताओं की अपेक्षा कथा-साहित्य में एवं रेखाचित्र में भी निराला को व्यंग्य विद्रूप उजागर करने के अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं।

प्रथम महायुद्ध के बाद प्रकाशित उनके 'अलका' उपन्यास में व्यंग्य का स्वस्थ सामाजिक स्वरूप प्रदर्शित हुआ है। गंगा प्रसाद पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है – 'वर्ग, समाज तथा देश के कुहराच्छन्न-सघन-अंधतम वातावरण को विद्ध करने के लिए व्यंग्यों के जिन अग्नि-बाणों का संधान निराला ने उस समय किया था, उनका सामाजिक एवं ऐतिहासिक महत्व सर्वविदित है। उनका एक-एक व्यंग्य उनकी ज्वलंत सामाजिक चेतना के प्रतीक रूप में प्रमाणित और प्रतिष्ठित है।'[७]

इसलिए कहा जा सकता है कि निराला के कथा-साहित्य में व्यंग्य की एक अंतर्धारा है जो तत्कालीन सामाजिक विद्रूपताओं पर लगातार प्रहार करती रहती है। समाज एवं राष्ट्र में जब-जब असत्य का साम्राज्य स्थापित होने लगता है, पाशविकता का विस्तार होने लगता है, दुष्ट शक्तियों का बोलबाला हो जाता है, तब साहित्यकार एवं समाज-सुधारक के लिए चुप बैठे रहना मुश्किल हो जाता है। संवेदनशील, मानवतावादी साहित्यकार को इन स्थितियों में समाज के नेतृत्व का, उसे दिशा देने का दायित्व भी वहन करना पड़ता है। अपने व्यापक जीवनानुभव तथा परिपक्व बुद्धि-विवेक के बल पर साहित्यकार दूषित वृत्तियों के खिलाफ न केवल आवाज उठाता है बल्कि अपनी सामर्थ्य भर उसके समाधान का भी प्रयास करता है। नवजागरण के पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द के साथ अनेक कालजयी रचनाकारों की

पंक्ति में निराला का नाम इस संदर्भ में उद्धृत किया जा सकता है। डा० रामविलास शर्मा ने निराला के इस लेखन को हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में महावीर प्रसाद द्विवेदी के कार्य की अगली कड़ी के रूप में देखा है – "निराला ने अंग्रेजी राज, जमींदारी प्रथा, किसान आन्दोलन, वर्णाश्रम धर्म, नारी की पराधीनता, भाषा की समस्या आदि-आदि पर जो कुछ लिखा है, उस पर ध्यान दीजिए तो पता चलेगा कि हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में निराला का यह लेखन महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कड़ी है।"[1]

निराला का कथा-साहित्य डा० रामविलास जी के विश्लेषण का प्रमाण है। समाज में शोषक-शोषित वर्ग की स्थिति, जमींदार एवं किसानों की अवस्था, जाति-प्रथा का विषैला दंश तथा नारी की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण उनकी कविताओं में ही नहीं, कहानियों, रेखाचित्रों, उपन्यासों, निबन्धों एवं संपादकीय टिप्पणी आदि में भी मिलता है। उनकी आरम्भिक छायावादी कविताओं एवं अन्तिम समय की आध्यात्मिक रचनाओं को यदि छोड़ दिया जाए तो बची हुई लगभग सभी कविताओं में निराला का सामाजिक दृष्टि से जागरूक कवि रूप ही उभर कर सामने आता है। चूँकि कथा-साहित्य में सामाजिक स्थितियों का आकलन करने का अवकाश अधिक होता है इसीलिए समाज की इन स्थितियों का आकलन निराला के उपन्यासों, कहानियों में अधिक स्पष्ट एवं प्रभावशाली ढंग से हुआ है।

शासकों की अत्याचारी प्रवृत्ति का, सामन्ती विलासिता एवं अनैतिकता का तथा जमींदारों के द्वारा किसानों के उत्पीड़न का वर्णन निराला की कथाकृतियों में सजीव रूप में हुआ है। 'काले कारनामे', 'अलका', 'निरुपमा' और 'चोटी की पकड़' उपन्यासों के अलावा 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'श्यामा' आदि कहानियों में राजाओं के अलावा ताल्लुकेदारों एवं सामन्तों के अत्याचार का भी चित्रण मिलता है।

निराला की सहानुभूति भारतीय किसान के साथ भी रही है। कृषक-जमींदार द्वन्द्व तथा निरीह किसानों पर उनका अत्याचार निराला के जागरूक मन को झकझोरता रहता था। इसीलिए वे मानते थे कि भारत की आजादी तभी सच्ची होगी जब यहाँ के किसान शिक्षित होंगे और संगठित होकर अपने ऊपर ढाये जा रहे जुल्मों का प्रतिरोध करेंगे। जमींदारों के माध्यम से अंग्रेजों ने भारतीय किसानों पर, यहाँ की बहुसंख्यक जनता पर लगातार अपना शिकंजा कस रखा था। इस पीड़ा का स्पष्ट आभास निराला के निबंधों एवं संपादकीय टिप्पणियों के द्वारा प्राप्त होता है। 'चमेली', 'अलका', 'चोटी की पकड़' उपन्यासों में किसानों के प्रति निराला ने लेखकीय सहानुभूति प्रदान की है।

तत्कालीन समाज में सर्वाधिक दयनीय स्थिति थी नारी की। वह चाहे जिस रूप में भी हो – पुत्री के रूप में, पत्नी के रूप में, माता के रूप में, गृहवधू के रूप में – समाज की जड़ मान्यताओं एवं पाखण्ड भरी स्थितियों ने उसके अस्तित्व को कभी महत्व नहीं दिया। वह चाहे विवाहिता हो या अविवाहिता, उसे किसी-न-किसी यंत्रणा से गुजरना ही पड़ा। परिस्थितिगत दबावों के कारण अभिशप्त वेश्या के प्रति भी निराला ने अपनी सहानुभूति दिखायी है। स्त्रियों की स्वाधीनता का

नारा यद्यपि दिया जा रहा था परन्तु पुरुष-प्रधान समाज उसे दबा कर रखने में ही अपने अहं की तुष्टि पाता था। यही कारण है कि स्त्रियों के लिए एक कानून था, पुरुषों के लिए दूसरा। पुरुष विधुर होकर दूसरा विवाह कर सकता था, एक साथ कई पत्नियाँ रख सकता था, छिप कर या खुले तौर पर उसके लिए रखैलों या वेश्याओं की कमी न थी, परन्तु स्त्री के लिए आचार-संहिता तय थी। उससे उम्मीद की जाती थी कि विधवा होने पर अपने स्वर्गीय पति की याद में शेष जीवन व्यतीत कर दे। ऐसी दोहरी मानसिकता वाले समाज के खिलाफ निराला ने लिखा था – "सीता, सावित्री, दमयंती आदि की पावन कथाएँ आँखें मूंदकर लिख सकता हूँ। तब बीबी के हाथ सीता और सावित्री आदि देकर बगल में चौरासी आसन दबाने वाले दिल से नाराज न होंगे। उनकी इस भारतीय संस्कृति को बिगाड़ने की कोशिश करके ही बिगड़ा हूँ। अब जरूर संभलूँगा।"[१]

निराला की दृष्टि में जाति-भेद समाज के पतन का मूल था। वे मानते थे कि यदि उच्च वर्ग के लोग अपने बड़प्पन का दंभ नहीं छोड़ेंगे तथाकथित निम्न वर्ग को समान अधिकार नहीं देंगे तो नवीन भारत का निर्माण नहीं किया जा सकेगा। 'चतुरी चमार' कहानी का चतुरी-पुत्र अर्जुन उनका उतना ही आत्मीय था जितना दूसरे उच्च वर्ग के लोग। निराला की मान्यता थी – "जो शूद्र या अछूत इस देश में सदियों से उच्च वर्ण वालों की सेवा करते आ रहे हैं, वे केवल सेवा करते रहें, यही विचार अधिकांश उच्चवर्ग वालों के मस्तिष्क में रहे। उन्हें भी उन्नत होकर ब्राह्मण और क्षत्रियों की तरह समाज में मान्य होना है। ...जो लोग प्रतिभाशाली थे, वे जानते थे कि भविष्य में जाति की बागडोर ब्राह्मण-क्षत्रियों के हाथ में नहीं रह सकती। क्योंकि यह जातीय समीकरण का युग है। अब सब जातियाँ समान तथा मर्यादा में बराबर हैं। जो सदियों से सेवा करती आ रही हैं, उन्हीं जातियों में यथार्थ मनोबल है। जब तक उनका उत्थान न होगा, भारत का उत्थान नहीं हो सकता। देश के लिए सच्चे सेवाभाव से ये ही जातियाँ काम कर सकती हैं।"[२]

जाति-भेद के प्रति निराला का कोप तथा निम्न वर्ग के प्रति उनकी संवेदना उपरिलिखित पंक्तियों से समझी जा सकती है। उनके समस्त साहित्य में यह सहानुभूति मुखर हुई है।

निराला जातिगत संकीर्णता के अलावा भारतीय समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक संकीर्णता के भी विरोधी रहे हैं। इसीलिए धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होकर उन्होंने हिन्दुओं एवं मुसलमानों की एकता पर बल दिया है। उन्होंने धार्मिक कट्टरता को एकता के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक माना है। 'प्रबन्ध पद्म' में उन्होंने बहुत साफ-साफ लिखा है – "हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध के भाव दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों को दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाये। परस्पर के सामाजिक व्यवहारों में दोनों शरीक हों, दोनों एक दूसरे की सभ्यता को पढ़ें और सीखें।"[३]

उन्होंने इसी पुस्तक में 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य' शीर्षक लेख भी लिखा था। इसी प्रकार उन्होंने 'वर्तमान हिन्दी समाज' शीर्षक लेख 'प्रबन्ध प्रतिमा' में संकलित किया। दोनों सम्प्रदायों के प्रति सौहार्द की भावना को बल देने वाले प्रसंग तथा उनकी संकीर्णताओं

को भी उजागर करने वाले अंश उनके कथा-साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। परवर्ती अध्यायों में उनकी इन सामाजिक दृष्टियों का यथास्थान वर्णन किया गया है।

इस प्रकार निराला एक सजग रचनाकार की भाँति समाज की विरूपताओं को चित्रित करते हुए केवल उसका ऋण पक्ष ही उजागर नहीं करते अपितु सुदृढ़ समाज की संरचना के लिए नवीन गवाक्षों का उद्घाटन करने के प्रयास में व्यग्रता का भी आभास देते हैं। उनकी यह व्यग्रता कथा-साहित्य में साफ-साफ झलकती है।

आर्थिक परिस्थिति

समाज के निर्माण में, उसके उत्थान-पतन में अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अर्थ-प्रधान युग में न केवल व्यक्ति की, अपितु समाज एवं राष्ट्र की महत्ता भी अर्थ-केन्द्रित हो गयी है। भारत आरम्भ से विराट जनसंख्या वाला विविध समस्याओं से ग्रस्त देश रहा है। यहाँ की अधिकांश जनता गरीबी की रेखा के नीचे है और कृषि ही उसका एकमात्र अवलम्ब रहा है। गुलामी के लम्बे वर्षों में लुटेरे शासकों ने हमलावरी वृत्ति अपनाकर, इस देश को लूटकर खोखला बना दिया था। परवर्ती काल में अंग्रेजों ने अपनी व्यापार-भूमि बनाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से इंगलैण्ड के साम्राज्य को तो समृद्ध किया परन्तु हमारा देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ता गया। उस काल में भी आर्थिक दृष्टि से समाज दो वर्गों में विभक्त था – धनी एवं निर्धन। कार्ल मार्क्स ने इन्हें शोषक एवं शोषित दो वर्गों में बांटा। औद्योगिक विकास के कारण एक नए वर्ग का उदय हुआ - मध्य वर्ग। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के कारण इन तीनों के बीच की खाई गहरी होती जा रही थी। आर्थिक शोषण के प्रतीक जमींदार भारत में अंग्रेजी शासन के सबसे प्रबल समर्थक थे। उनके अमानुषिक अत्याचार और दमन से ग्रामीण जनता कराह रही थी। समय पर लगान देने में असमर्थ कृषक से अत्यन्त निर्दयतापूर्वक लगान वसूली की जाती थी। जो उनके समर्थन में आवाज उठाता, उसे नाना प्रकार के कुचक्र रचकर जेल में ठूँस दिया जाता था। गांधी जी ने कृषकों को नैतिक बल प्रदान किया। फलस्वरूप वे अपनी दीनहीन दशा का अनुभव करने लगे। सत्याग्रह आन्दोलन के प्रचार-प्रसार से कृषकों में भी चेतना की लहर दौड़ गयी। स्थान-स्थान पर शोषकों के प्रति विरोध प्रकट होने लगा।

आर्थिक शोषण, गरीबी और अंग्रेजों की गुलामी काट रहे विवश भारतीयों की त्रासद स्थिति को निराला ने अपनी आँखों से देखा था। एक ओर ताल्लुकेदारों, जमींदारों एवं राजाओं तथा दूसरी ओर अंग्रेज शासकों के अत्याचारों के दोहरे पाट में भारतीय जनता पिस रही थी। जनता की यह कराह रचनाकार निराला को उद्वेलित कर रही थी। उनका मानवतावादी साहित्यकार इन स्थितियों के विरोध में जागरूक होकर, साहित्य की विविध विधाओं में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर रहा था। उनका विपुल रचना-संसार इस बात का गवाह है। उनका अधिकांश साहित्य शोषितों-पीड़ितों को समर्पित रहा है। उस समय की गांधीवादी विचारधारा तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदना का भाव भी तत्कालीन आर्थिक परिवेश को प्रभावित करते हुए निराला के साहित्य

में यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। उनकी 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी तथा 'अलका', 'चमेली' जैसे उपन्यासों में आर्थिक शोषण की भयावहता का नग्न चित्र उपस्थित किया गया है।

साहित्यिक-सांस्कृतिक परिस्थिति :

निराला का रचनाकाल १९१६ से लेकर १९६१ तक परिव्याप्त है। यह वह समय था जब हिन्दी साहित्य विशेषकर गद्य-साहित्य शैशवावस्था को पार कर अपने यौवन पर था और कहानी आलोचना, उपन्यास, निबन्ध, नाटक आदि विधायें हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रही थीं। १९२० तक का काल आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं तत्कालीन साहित्य की प्रतिनिधि साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के उत्कर्ष का काल था। निराला ने ऐसे समय में अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत की थी। प्राचीन जीवन दृष्टियों तथा अतीत की रूढ़िग्रस्त परम्पराओं को छोड़कर नवीन जीवन-दृष्टि एवं स्थापनाओं के प्रति आग्रह होने के कारण इस समय को पुनरुत्थान या नव-जागरण काल के परवर्ती विकास के रूप में देखा जा सकता है। भारतेन्दु युग में नवजागरण की शुरुआत और द्विवेदी युग में उसका व्यापक प्रचार-प्रसार निराला के उर्वर मस्तिष्क को साहित्यिक खुराक देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। डा० रामविलास शर्मा ने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' नामक ग्रंथ में इस बात का उल्लेख करते हुए लिखा है – "जो नवजागरण १८५७ के स्वाधीनता संग्राम से आरम्भ हुआ, वह भारतेन्दु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य-विरोधी, सामन्त-विरोधी प्रवृत्तियां द्विवेदी युग में और पुष्ट हुईं। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा उनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रांतिकारी रूप में व्यक्त हुईं।"[१२]

पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव के कारण तथा समाज की सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों में नवीनता के कारण इस युग के साहित्य में भी नवीन उन्मेष दृष्टिगोचर होने लगा था। केवल विचार के क्षेत्र में ही नहीं, सामाजिक तौर-तरीकों में भी नवीनता का आग्रह दिखायी पड़ने लगा था। संक्रान्ति काल के नाम से जो समय भारतेन्दु युग के अन्तर्गत स्वीकृत किया गया था, द्विवेदी युग या निराला के काल में संक्रान्ति की वही नवीनता विकसित रूप में परिलक्षित होने लगी। यही कारण है कि कविता के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी कवियों प्रसाद, निराला आदि का आविर्भाव हुआ तथा परवर्ती काल में इसी धारा में पन्त और महादेवी जैसे प्रमुख कवियों ने योगदान किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथू राम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' जैसे प्रखर राष्ट्रीय कवियों की प्रभावशाली रचनाएँ प्रकाश में आईं। छायावादी रचनाओं तथा राष्ट्रीय कविताओं से ओत-प्रोत यह काल एक तरफ हिन्दी कविता के उत्कर्ष को प्रमाणित करता है तो दूसरी तरफ गुलामी से छुटकारा पाने की उसकी उद्दाम अभिलाषा को भी।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह पुनरुत्थान का युग था। ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी एवं रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं ने सामाजिक उत्क्रांति के साथ-साथ भारतीय

संस्कृति के प्रति सम्मोहन उत्पन्न किया। राजा राममोहन राय, रानाडे, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे चिन्तकों ने एक ओर रूढ़िवादी विचारों का विरोध किया जिसकी भावधारा सामाजिक सुधार आन्दोलनों में प्रकट हुई तो दूसरी ओर पाश्चात्य सांस्कृतिक प्रभाव का सामना किया जिसका परिणाम राष्ट्रीय जागरण तथा स्वाधीनता आन्दोलन था। सामाजिक तथा राजनीतिक जागरण, नवीन सांस्कृतिक चेतना का ही प्रतिफलन था। स्वामी दयानन्द बौद्धिक स्तर पर तथा स्वामी रामकृष्ण अपनी साधना द्वारा सांस्कृतिक चेतना का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। स्वामी विवेकानन्द अपने वेदान्त-ज्ञान द्वारा भारतवर्ष ही नहीं वरन् समस्त विश्व को चमत्कृत कर चुके थे। आधुनिक युग का सांस्कृतिक नेतृत्व करने वाले विवेकानन्द ने अपने को दीन और निकृष्ट मानने वाले मध्यम वर्ग को वेदान्त दर्शन की ओर उन्मुख किया तथा अपनी सांस्कृतिक धरोहर पर गर्व करना सिखाया। निराला के जीवन के आरम्भिक तीन दशक इसी बंग-भूमि पर व्यतीत हुए थे। "बंग-भूमि के सर्वोच्च भावबोध और दार्शनिक समन्वय के प्रतीक श्री रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक ऊर्जा को उन्होंने अनायास ही प्राप्त कर लिया।"[11] 'समन्वय' के सम्पादन के दौरान वे रामकृष्ण मिशन से गहराई से जुड़े थे। यहाँ रामकृष्ण ज्ञान को परिपुष्ट किया था। राजा राममोहन राय से रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक समस्त चिन्तकों का व्यापक प्रभाव निराला पर पड़ा था। 'समन्वय' के सम्पादन-काल में स्वामी सारदानन्द महाराज के निकट सम्पर्क में रहस्योन्मुखी चेतना की अंतरंग अनुभूति भी उन्हें प्राप्त हुई थी। इसका उल्लेख उन्होंने 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' शीर्षक रेखाचित्र में किया है। निराला स्वयं को विवेकानन्द का अवतार स्वीकार करते थे। वे मानते थे कि उन्होंने विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लिया है।"[12]

इस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा साहित्यिक - सांस्कृतिक स्थितियों का आकलन यह स्पष्ट करता है कि इस युग की परिस्थितियों में ही क्रांति, प्रेरणा व नवजागरण के वे बीज छिपे हुए थे जिन्होंने निराला जैसे रचनाकार के व्यक्तित्व को रचनात्मक ऊर्जा प्रदान की। महान व्यक्ति अपने युग की परिस्थितियों की सृष्टि होते हैं। निराला के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में भी तद्युगीन परिस्थितियों एवं विचारधाराओं का महत्वपूर्ण योगदान है। वे अपने युग की निर्मिति हैं। किन्तु निराला जैसे सजग रचनाकार युग से लेते ही नहीं वरन् उसे देते भी हैं। निराला ने भी अपनी कृतियों के माध्यम से युग को एक ऐसा अमूल्य उपहार दिया जो आने वाले युगों एवं भावी पीढ़ी के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करता रहेगा।

युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में निराला का जो साहित्यिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ उसका अध्ययन निराला के कथा-साहित्य के विवेचन में सहयोगी होगा।

निराला का व्यक्तित्व

निराला गढ़ाकोला एवं महिषादल की माटी की सम्मिलित देन थे। "एक में उनके जीवन का उन्मेष और यौवन का विकास हुआ दूसरे में उन्हें जूझना पड़ा। एक उनके स्वप्नों की

भूमि था, दूसरा संघर्ष का अखाड़ा।"[13] उनके व्यक्तित्व में बैसवाड़ा की दृढ़ता, पौरुष, अक्खड़पन और स्वाभिमान तथा बंगाल की सरलता, तरलता एवं सरसता का विलक्षण समन्वय था। उनके व्यक्तित्व में "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" की उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है।

अपने समकालीन रचनाकारों में "निराला का व्यक्तित्व अत्यन्त जटिल तथा विरोधों का संगम रहा है।"[14] उन्हें एक साथ "आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ, कवि एवं योगी, सरल एवं दुरूह, कोमल एवं कठोर, उग्र एवं विनम्र, अहंवादी एवं अहंविरोधी, रहस्यवादी एवं यथार्थवादी, छायावादी एवं प्रगतिवादी, परम्परावादी एवं स्वच्छन्दतावादी कहा गया है।"[15] निराला के व्यक्तित्व के इन अन्तर्विरोधों को जानने-समझने के लिए उनके जीवन पर विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है।

निराला का जन्म उ० प्र० के उन्नाव जिलान्तर्गत गढ़ाकोला के निवासी पं० रामसहाय त्रिपाठी के यहाँ महिषादल (प० बंगाल) में सन् १८९६ ई० की वसंत-पंचमी के दिन हुआ। उनकी माता सूर्य का व्रत रखती थीं। पुत्र का जन्म भी रविवार को ही हुआ था। अतः उनका नाम सूर्य कुमार रखा गया। साहित्य जगत में बाद में वे सूर्यकान्त के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने अपने जन्म के तीन वसंत ही देखे थे कि उनकी माता का निधन हो गया। माँ की ममता और स्नेह दुलार से वंचित निराला, वेदना और संघर्ष के लिए पूर्ण तैयारी कर चुके थे। माता के अभाव को वे अपनी सर्वव्यापी करुणा से पूरा करते रहे। स्वभावतः ही उनका विकास भी आत्म-विश्वास और दुर्दम संघर्षों में अडिग रहने की ओर होता गया। उनके पिता महिषादल राज्य में कर्मचारी थे। वे स्वभाव से ही अत्यन्त कठोर थे। बालक निराला को अपनी बाल-सुलभ गलतियों के कारण उनकी असहय मार सहनी पड़ती थी। "मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए एकलौते पुत्र को मार रहे थे। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।"[16] इस तरह निराला को अपने पिता के स्वभाव की उद्धतता भी मिली और वे सहनशील भी बने। कठिन परिस्थितियों के प्रहारों में भी निर्भीकता उनके व्यक्तित्व का स्थायी गुण हो गया।

निराला की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बंगाल में ही हुई। वह युग माइकेल मधुसूदन, बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ का था। इन सभी का प्रभाव बालक निराला के कोमल मस्तिष्क पर पड़ा। उनमें न केवल बंगला भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न हुई बल्कि सात-आठ वर्ष की आयु में वे बंगला में कविताएँ भी लिखने लगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी और उर्दू का भी गहन अध्ययन किया। पारिवारिक संस्कारवश इन्होंने रामायण, गीता, दर्शन आदि पुस्तकों का बचपन में ही अध्ययन कर लिया था। महावीर जी के प्रति गहरी श्रद्धा इनके जन्मगत संस्कार का ही परिणाम थी। रामचरितमानस का नियमित पाठ, तुलसीदास के प्रति अपार श्रद्धा एवं विश्वास इनमें भर गया। कुश्ती, घुड़दौड़, फुटबाल, संगीत और काव्य रचना में अधिक रुचि होने के कारण ये प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सके। 'सुकुल की बीवी' कहानी में इसका अत्यन्त

रोचक वर्णन उन्होंने किया है – "मैं कवि हो चला था। फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा देखता था। ...गणित की नीरस कापी को पदमाकर के चुहचुहाते कवित्तों से मैंने सरस कर दिया है। ....एक बार धोखा खाकर बराबर धोखा खाता रहा, एक परीक्षा की तैयारी न करके कभी पास न हो सका।"[१५]

निराला का विवाह १९११ ई० में १५ वर्ष की अल्पायु में डलमऊ के पंडित रामदयाल की पुत्री मनोहरा देवी के साथ हुआ। वे संगीत-विद्या में अत्यन्त निपुण तथा साहित्यिक रुचि-सम्पन्न महिला थीं। उन्हीं की प्रेरणा से निराला ने हिन्दी-साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया और 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से, बिना किसी व्यक्ति की सहायता के स्वयं हिन्दी सीखी थी। इस प्रकार पत्नी से निराला को साहित्य, संगीत और नारी के सम्मान के संस्कार मिले। किन्तु इनकी प्रेरणा- प्रिया पत्नी मनोहरा देवी भी निराला के २२वें वसन्त को सदैव के लिए पतझड़ का रूप देकर अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गईं। उस समय देश में फैली महामारी के प्रकोप से उनके पिता, बड़े भाई, भाभी आदि अनेक कुटुम्बियों की एक साथ मृत्यु हो गयी। इस तरह अपनी दो सन्तानों तथा चाचा की चार सन्तानों के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व और कठिनाइयों का सामना करने के लिए निराला संसार में बिलकुल अकेले रह गए। परिस्थितियों के इन भयावह वातचक्रों में भी निराला अविचलित रहे। उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति एवं एकान्तप्रियता दर्शनोन्मुख होने लगी। वस्तुतः निराला का सम्पूर्ण जीवन ही इस तरह तूफानों से घिरने, टकराने और अन्ततः उन पर दृढ़ता से विजय पाने की अमर गाथा है। 'कुल्लीभाट' में उन्होंने स्वयं लिखा है – "सोलह-सत्रह साल की उम्र से भाग्य में जो विपर्यय शुरू हुआ, वह आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन के उसी समय से मैं जीवन के पीछे दौड़ा था, जीव के पीछे नहीं। ...जीवन के पीछे चलने वाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नहीं होता।"[१६]

पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति के लिए निराला को महिषादल राज्य में नौकरी करने के लिए बाध्य होना पड़ा, परन्तु एक दिन किसी कारणवश राजा साहब के हाउसहोल्ड सुपरिण्टेण्डेण्ट से अनबन हो जाने के कारण उन्होंने नौकरी छोड़ दी। जीविका का अन्य कोई साधन सुलभ न होने के कारण वे साहित्य क्षेत्र में मजदूरी करने लगे। अनुवाद, लेख, टीका-टिप्पणी जो भी लिख सकते थे, लिखते रहे। आर्थिक विपन्नता की इसी स्थिति में निराला आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आए। सन् १९१६ में निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना 'जुही की कली' प्रकाश में आ चुकी थी, जो 'सरस्वती' से अस्वीकृत होकर वापस लौट आयी थी, किन्तु यह सत्य है कि निराला की प्रतिभा को आचार्य द्विवेदी जी ने ही सबसे पहले पहचाना। उन दिनों वे अधिकतर बंगला में ही लिखा करते थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, चंडीदास, विवेकानन्द आदि की पद्य रचनाओं का छन्दोबद्ध अनुवाद उन्होंने किया। १९२० में हिन्दी और बंगला के व्याकरण पर निराला का अत्यन्त प्रौढ़ और विद्वतापूर्ण विवेचनात्मक लेख, 'हिन्दी बंगला का तुलनात्मक व्याकरण' 'सरस्वती' में छपा। डा० भगीरथ मिश्र इस लेख को "साहित्य के क्षेत्र में निराला की जययात्रा का प्रथम पदन्यास"[१७] मानते हैं।

आचार्य द्विवेदी के प्रयत्नों से सन् १९२२ में कलकत्ता के श्रीरामकृष्ण मिशन से प्रकाशित होने वाले मासिक-पत्र 'समन्वय' के संपादन का कार्य निराला को मिला। यहीं आकर उन्होंने रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि के अद्वैतवादी दर्शन का गहन अध्ययन-मनन किया। उनकी कविता पर आद्यन्त छायी हुई आध्यात्मिक भावना का अंकुर यहीं पर पनपा एवं पल्लवित पुष्पित हुआ। 'समन्वय' के सम्पादक के रूप में उन्होंने विशेष ख्याति अर्जित की। बाबू शिवपूजन सहाय, मुंशी नवजादिकलाल, सेठ महादेव प्रसाद आदि से निराला का परिचय यहीं हुआ।

'समन्वय' का दो वर्षों तक कुशलतापूर्वक संपादन करने के पश्चात् निराला 'मतवाला' में आ गए। उनके प्रखर एवं ओजस्वी लेखों, कविताओं एवं समालोचनाओं ने साहित्य-जगत में धूम मचा दी। 'मतवाला' के तुक पर ही 'निराला' शब्द का आविर्भाव हुआ यद्यपि मुखपृष्ठ के लिए वे 'गरगजसिंह वर्मा' के छद्म नाम से कविताएँ लिखते थे। 'मतवाला' के 'चाबुक' स्तम्भ में निराला की लेखनी के प्रहार से हिन्दी के धुरन्धर, साहित्यकार एवं उनकी रचनाएँ भी नहीं बच पाईं। यहाँ तक कि उस समय की श्रेष्ठ मानी जाने वाली 'सरस्वती' पत्रिका भी निराला के कुठाराघात से नहीं बच सकी। किन्तु 'मतवाला' और 'निराला' का साथ अधिक दिनों तक नहीं रह सका। एक वर्ष के अत्यधिक अल्पकाल में ही 'निराला' एवं 'मतवाला' दोनों साहित्य जगत में सब ओर छा गये। यद्यपि अपनी नवीन शैली, भाव-भंगी आदि के कारण निराला को अपने समकालीनों का भी अत्यधिक विरोध सहना पड़ा, उनके मुक्त छन्द की तो 'रबड़ तथा केंचुई छन्द' कहकर खिल्ली भी उड़ाई गयी किन्तु निराला ने हर विरोध का, हर तर्क का उचित एवं बेजोड़ उत्तर दिया। अपने स्वाभिमान की रक्षा उन्होंने हर कीमत पर की एवं किसी भी अवस्था में किसी के सम्मुख झुके नहीं चाहे वे गांधी या नेहरू हों अथवा पंत एवं जोशीबन्धु, चाहे वह 'अणोरणीयान हो या महतो महीयान।'

१९२३ में निराला का प्रथम कविता-संग्रह 'अनामिका' निकला था। 'मतवाला' से विच्छेद हो जाने के बाद चार पाँच वर्ष निराला ने घोर शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक संकटों का सामना किया। १९२८ में वे लखनऊ आ गए एवं गंगा-पुस्तकमाला में कार्य करने लगे। इन दिनों शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद उनका लेखन-कार्य अवरुद्ध नहीं हुआ और उन्होंने 'रवीन्द्र-कविता-कानन', 'रामकृष्ण वचनामृत', 'महाराणा प्रताप', 'भक्त ध्रुव', 'हिन्दी बंगला शिक्षा' आदि ग्रन्थों की रचना की। १९२९ में उन्होंने 'सुधा' पत्रिका का सम्पादन कार्य संभाला। 'अप्सरा', 'अलका' उपन्यास एवं 'लिली' कहानी-संग्रह इसी समय प्रकाशित हुए। १९३० में उन्होंने अपनी पुत्री सरोज का विवाह, दहेज के अभाव में एक निर्धन मेधावी युवक शिवशेखर द्विवेदी से कर दिया। 'परिमल' का प्रकाशन भी इसी वर्ष हुआ। सन् १९३५ में औषधि के अभाव में पुत्री सरोज की कारुणिक मृत्यु से निराला अत्यधिक शोक-संतप्त हो उठे। उनकी वेदना 'सरोज-स्मृति' के रूप में फूट पड़ी।

१९२८ से १९४२ तक निराला लखनऊ में ही रहे। इस अवधि में उनकी 'निरुपमा', 'प्रभावती', 'सुकुल की बीवी', 'कुल्लीभाट', 'प्रबन्ध पद्म', 'प्रबन्ध-प्रतिमा' आदि अनेक

रचनाएँ प्रकाशित हुईं। १९३९ के द्वितीय महायुद्ध और १९४२ के स्वराज्य आन्दोलन से देश में जो राजनीतिक जागृति आई, उसका प्रभाव निराला के साहित्य पर भी पड़ा। 'बेला', 'अणिमा', 'नये पत्ते' एवं 'कुकुरमुत्ता' जैसी व्यंग्यात्मक काव्य-रचनाएँ इसी समय लिखी गयी जिन पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। कथा-साहित्य में 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़' एवं 'काले कारनामे' जैसी कृतियों में यह व्यंग्य शैली अपनी चरम परिणति में दिखायी देती है।

१९४३ में तथा १९४५ से ४७ तक निराला का अधिकांश समय उन्नाव, चित्रकूट, प्रयाग एवं तत्पश्चात् दारागंज में गुजरा। घोर शारीरिक कष्ट एवं चरम मानसिक वेदना सहते हुए भी निराला का स्वाभिमान अजेय ही बना रहा। ''सन् १९४७ में २७ जनवरी वसन्त-पंचमी के दिन श्रीराष्ट्रभाषा विद्यालय, वाराणसी द्वारा निराला स्वर्ण जयन्ती का अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन समारोह सम्पन्न हुआ। स्वर्गीया श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, स्वर्गीय आचार्य शिवपूजन सहाय, डा० रामविलास शर्मा, कविवर श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, सुकवि हरिवंश राय 'बच्चन', स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री, श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि हिन्दी के अनेक सुकवियों तथा लेखकों ने उत्सव-समारोह में अपूर्व उत्साह के साथ भाग लिया था।''[१८] प्रयाग, दिल्ली आदि प्रमुख नगरों में भी निराला जयन्ती का सप्ताह व्यापी उत्सव मनाया गया। इसके दो वर्ष पश्चात् 'अपरा' काव्य संग्रह पर उत्तर-प्रदेश सरकार ने इन्हें पुरस्कृत किया।

सन् १९५० के बाद निराला के काव्य में अध्यात्म का स्वर पुनः प्रबल होता दिखाई पड़ता है। 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत-गुंज' आदि काव्य-संग्रह इसके साक्षी हैं। ''झंझा, तूफान और विप्लव के स्वरों का यह पुरुषार्थी कवि जीवन की सान्ध्यवेला में अलक्ष्य-लक्ष्य के चिंतन में अधिक मग्न था।''[१९] १९५२ में निराला की साहित्य सेवा के सम्मानार्थ उन्हें कलकत्ता में अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट किया गया।

अपना सम्पूर्ण जीवन वीतरागी के समान बिताने वाले निराला के जीवन के अन्तिम वर्ष घोर शारीरिक अस्वस्थता में कटे। उनका महाकाय शरीर दुर्बल हो गया था, आँखें धंस गई थीं, मानसिक संतुलन नष्ट-सा हो गया था। वे अक्सर स्वगत-कथन करते रहते थे। लम्बी बीमारी के बाद १५ अक्टूबर, १९६१ के दिन चित्रकार श्री कमलाशंकर सिंह के दारागंज वाले मकान में सुबह ९ बजकर २३ मिनट पर निराला की इहलीला समाप्त हो गयी।

निराला आजीवन परोपकारी रहे। उन्होंने निष्काम भाव से परोपकार में ही अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। दीन-दुखियों एवं उपेक्षितों पर उनकी करुणा सदा दया एवं उदारता का बादल बनकर बरसती रही। उनकी इस उदारता को लोगों ने निराला की विक्षिप्तता मानकर उनका उपहास भी किया किन्तु ''इस जन्म के विषपायी ने सदा अपनी पीर पीकर, पराई पीर को ही संजोया।''[२०] उनके समान संघर्षशील, हिन्दी के अन्य किसी रचनाकार का जीवन नहीं रहा। यद्यपि उनके

आत्म-सम्मान को लोगों ने अहंकार मानने की भूल की, किन्तु वास्तव में निराला का स्वाभिमान देश, जाति, संस्कृति और साहित्य का स्वाभिमान था।

निराला वस्तुतः संघर्षशील रचनाकार थे। सत्य की स्थापना के लिए वे आजीवन लड़ते रहे। साहित्य, समाज, संस्कृति एवं राजनीति में व्याप्त संकीर्णताओं एवं अन्ध परम्पराओं के विरुद्ध उन्होंने सदा विद्रोह किया। उच्च मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा ही निराला का लक्ष्य था। मानवता की रक्षा के लिए उन्होंने निस्संकोच उन सबको गले लगाया जो समाज में तुच्छ, पतित एवं हेय समझे जाते थे। इस वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति का अवलोकन उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य में किया जा सकता है।

डा० भगीरथ मिश्र निराला की तुलना कबीर से करते हुए लिखते हैं – "अपनी उग्र स्वच्छन्दता और फक्कड़पन में वे कबीर से तुलनीय हैं। वैसे ही मस्त-मौला, वैसी ही ललकार, वैसा ही फक्कड़पन, वैसा ही क्रान्तिकारी स्वर और वैसी ही प्रगाढ़ तन्मयता। दोनों की ओजमयी वाणी रूढ़ियों और बन्धनों के विरोध में बेलगाम प्रहार करती रही। दोनों की करुणा दीनों के लिए फूट-टूट बहती रही। ....अन्तर केवल इतना ही था कि एक संत पहले और कवि बाद में था और दूसरा कवि पहले, संत बाद में। किन्तु निराला ने भी लुकाठा ले अपना घर जलाकर ही साहित्य रचा था।"[२५]

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य जगत में निराला का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जबकि समाज के रूढ़ तथा परम्परावादी मानस की दीवारें हिल रही थीं। प्रत्येक वस्तु का मूल्य विघटनकारी स्थिति को पहुँच चुका था। कुछ ऐसे परम्परावादी अब भी थे जो किसी भी प्रकार के परिवर्तन को स्वीकारने की स्थिति में नहीं थे। वे बाध्य थे कि समाज के आमूल परिवर्तन की लपटों को देखें और उससे बचने के लिए सतर्क रहें। केवल युवा-वर्ग में ही वह उत्साह था कि वह हर प्रकार के बलिदान के लिए तत्पर था। ऐसे युवा-मानस को निराला के साहित्य ने अत्यधिक प्रभावित किया क्योंकि सरस्वती के अनन्य उपासक निराला के स्वरों में सामयिक युग के गम्भीर प्रश्नों का समाधान ही नहीं था बल्कि मौलिक उद्भावनाओं में एक क्रान्ति का आह्वान भी था। यही कारण है कि उस समय सामन्ती प्रवृत्ति वाले पुरातनवादियों ने निराला का विरोध किया। इस विरोध से तरुण कवि का ओजस्वी व्यक्तित्व और भी आकर्षक हो उठा। सम्मोहक वेश-भूषा, चित्ताकर्षक रूपरंग, हृदयग्राही केश-लहरियां, निराली चाल-ढाल के रूप में तरुणाई सजीव हो उठी थी। महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ के ४१ वें पृष्ठ पर ऋषि श्री जैमिनी कौशिक बरुआ लिखते हैं – "एकहरा बदन, लम्बा कद, आयताकार वक्षस्थल, कम्बुग्रीवा, आजानुबाहु, बड़े-बड़े शंकर से नयन, सुन्दर उन्नत किंचित मोड़ लेती हुई नासिका, प्रशस्त ललाट, घुमघुआरे काजर कारे बाल, कला के सांचे में ढली हुई वक्र उंगलियाँ, एक गम्भीर परिचय लिए हुए सबको आकर्षित करने वाली मुखाकृति, मस्ती भरी चाल, साहित्यिक आलोक की एक ही झलक में प्रभाव भर देने वाली बातचीत मन को मुग्ध करने वाली थी।"[२६]

यौवन के स्वर्णिम दिनों में प्रिय पत्नी की वियोगजन्य अन्तर्वेदना तथा आर्थिक विषमताओं ने निराला को क्रांतिकारी बना दिया। उनमें निर्भीकता, उद्धतता तथा सहनशीलता के गुण वंशानुगत एवं पारिवारिक वातावरण के कारण संस्कार रूप में जम गए थे। शैशवावस्था में माता के निधन, पिता के कठोर स्वभाव एवं पत्नी के चिरवियोग से आहत निराला का आक्रोश पुत्री सरोज के विवाह में फूट पड़ा एवं समाज की रूढ़ मान्यताओं एवं जड़ परम्पराओं के भंजक के रूप में उनके व्यक्तित्व का नया रूप उजागर हुआ। बंग-भूमि ने उनमें राष्ट्रीयता एवं जातीयता बोध भरा। अविराम संघर्ष तथा निरन्तर विरोध का सामना करने के कारण उनके व्यक्तित्व में दृढ़ता, औदार्य, विश्वास तथा अहं का उन्मेष होता गया। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निराशा, दुःखवाद की भावनाएँ अनुभव करते हुए पार्थिव उपलब्धियों के अभावस्वरूप जीवन की विपन्नता में निराला का आहत मन कभी-कभी क्षुब्ध भी हो उठा है और ऐसे समय में बरबस उनके मुख से निकल पड़ा है –

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।"[७]

पुत्री के असामयिक निधन पर निराला का धैर्य बांध तोड़कर संतुलन खोने के लिए मचल उठा। ऐसे समय में मन की समस्त वेदना एवं करुणा इन पंक्तियों में फूट पड़ी –

"दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।"[८]

कभी-कभी तो ऐसा भी प्रतीत होने लगता है कि मानों जीवन की विषादमयी छाया ने उन्हें आवृत कर लिया हो। परन्तु जीवन संघर्ष के झंझावात ने उनके आत्मविश्वास तथा उनकी आस्था को झकझोरा अवश्य था साथ ही जीवन से जूझने की शक्ति भी दी थी।

वस्तुतः निराला का व्यक्तित्व विरोधी गुणों के द्वारा संघटित हुआ है। वे दीन-दुःखी और असहाय व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिमय, विश्व की विषम परिस्थितियों में पिसते हुए मानव को देख कर क्षुब्ध, आक्रामक से आत्मरक्षा करते हुए निर्भीक सिंह के समान सचेत द्रष्टा और आघात का उत्तर देते हुए गर्वित, आत्माभिमानी, उद्धत एवं अहंकारी वीर के रूप में कठोर शक्तिपुंज दिखायी देते हैं। ऐसा व्यक्तित्व कभी भी परिस्थितियों के हाथों आत्मसमर्पण नहीं करता। वह झुकने के स्थान पर टूट जाना ही उचित समझता है। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी अनुराग भरी भव्य मुस्कान निराला जैसे असाधारण व्यक्तित्व के होठों पर ही सुशोभित हो सकती थी। उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का उद्घाटन करते हुए डा० बच्चन सिंह लिखते हैं – "भीतर से तो वे अत्यन्त निष्कपट और सरल व्यक्ति हैं बाहर से भी इनका व्यवहार मृदुल है। ....सैद्धान्तिक प्रश्नों पर तो ये वज्र से भी कठोर हो जाते हैं। वहाँ इन्हें बड़े से बड़ा प्रलोभन, दुर्दमनीय दानवी शक्ति भी झुकाने में असमर्थ है।"[९] यह रूप साहित्य और समाज दोनों में देखा जा सकता है।

जीवन के कटु सत्यों तथा संघर्षों ने निराला को कर्मठ बनाया एवं वेदान्त ज्ञान से उस कर्मठता में निस्संगता तथा निर्लिप्तता का समावेश हुआ। इसी निर्लिप्तता के कारण गीता की

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''[२२] जैसी उक्ति निराला के जीवन में चरितार्थ होती रही और वे जीवन-संग्राम में अपराजेय योद्धा की भाँति डटे रहे।

इस प्रकार निराला युगीन परिस्थितियों ने उनके विराट साहित्यिक-व्यक्तित्व का निर्माण किया था। अतीत की गौरवशाली परम्पराओं से प्रेरणा लेकर नवीन जीवन दृष्टि से अपने समय की विसंगतियों को निराला विनष्ट करना चाहते थे। उनका स्वप्न था – सामाजिक कुरीतियों, अन्ध-विश्वासों एवं बाह्याडम्बरों से परे समता-ममता से युक्त एक आदर्श समाज की स्थापना। उनके सम्पूर्ण साहित्यिक कृतित्व में समाज निर्माण हेतु साहित्यकार की व्याकुलता का अवलोकन किया जा सकता है। अगले दो अध्यायों में निराला के समग्र साहित्य का सर्वेक्षण किया गया है। शोध-प्रबन्ध के मूल विषय को ध्यान में रखकर परवर्ती अध्यायों में कथा-साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है।

संदर्भ :

१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास – डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृष्ठ १७
२. वही, पृष्ठ १४
३. स्वतंत्र भारत की झलक – ज्ञानवती दरबार, पृष्ठ ५२-५३
४. निराला का साहित्य और साधना – डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय पृष्ठ १९
५. निराला की साहित्य-साधना द्वितीय खण्ड – डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ १६
६. सुधा, नवम्बर २९, संपादकीय टिप्पणी - ९
७. महाप्राण निराला – गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृष्ठ ४४८
८. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण – डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ १५
९. देवी – निराला रचनावली चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३५६
१०. सुधा, नवम्बर ३२, संपादकीय टिप्पणी - हिन्दुओं का जातीय संगठन
११. प्रबन्ध पद्म – निराला पृष्ठ ४०-४१
१२. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण – डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ १९
१३. निराला : नव मूल्यांकन – डा० रामरतन भटनागर, पृष्ठ ३३
१४. अभिनन्दन ग्रन्थ ३७ वाँ संस्मरण, पृष्ठ ११४
१५. साहित्य और सौन्दर्यबोध – डा० रामशंकर द्विवेदी, पृष्ठ ५८
१६. महाप्राण निराला – गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृष्ठ ३०२
१७. निराला का काव्य- मूल्यांकन-२ – डा० इन्द्रनाथ मदान निराला: संपादक डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश पृष्ठ १५२
१८. कुल्लीभाट – पृष्ठ ३६, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
१९. सुकुल की बीबी – निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३१२
२०. कुल्लीभाट – पृष्ठ ५२, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२१. निराला काव्य का अध्ययन – डा० भगीरथ मिश्र, संस्करण १९६७, पृष्ठ २२
२२. युगाराध्य निराला – गंगाधर मिश्र १९७५, पृष्ठ १२

२३. निराला काव्य का अनुशीलन – डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ३०
२४. वही, पृष्ठ ३०
२५. वही, पृष्ठ ३१
२६. अभिनन्दन ग्रन्थ – ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ, पृष्ठ ४१
२७. अनामिका – राम की शक्तिपूजा, पृष्ठ १६७
२८. अनामिका – सरोज-स्मृति पृष्ठ १३४
२९. क्रांतिकारी कवि निराला – डा० बच्चन सिंह, पृष्ठ २२५
३०. श्रीमद्भगवद्गीता – अध्याय २, श्लोक-संख्या ४७

द्वितीय अध्याय

निराला के साहित्य का सर्वेक्षण

प्रस्तावना

अपने देश-काल से प्रेरणा ग्रहण कर निराला ने हिन्दी-साहित्य को अपने विविध ग्रन्थों के माध्यम से समृद्ध किया। अपने उद्गारों को व्यक्त करने के लिए उन्हें जब जो माध्यम उचित लगा, साहित्य की उसी विधा में सफलतापूर्वक रचना कर उन्होंने अपना अभिव्यक्ति कौशल प्रमाणित किया। इस तरह साहित्य की विविध विधाओं – कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, रेखाचित्र, समीक्षा, जीवनी आदि में उन्होंने अपनी गम्भीर पैठ प्रमाणित की। इसके अतिरिक्त उन्होंने बालोपयोगी साहित्य की भी रचना की और प्रचुर मात्रा में अनुवाद कार्य भी किया। यही कारण है कि कवि के रूप में विख्यात निराला के व्यक्तित्व में श्रेष्ठ कहानीकार, उपन्यासकार, निबन्धकार, रेखाचित्रकार, समीक्षक, जीवनी लेखक, सम्पादक एवं अनुवादक आदि के विविध रूप सन्निहित हैं। इसीलिए उनका साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यन्त विराट है। रचनाकार निराला के इन विविध रूपों को जानने समझने के लिए उनके सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है।

निराला का साहित्य

क्रम संख्या	*कृति का नाम*	*रचना काल*
काव्य-कृतियाँ		
१.	अनामिका (प्राचीन)	१९२३
२.	परिमल	१९३०
३.	गीतिका	१९३६
४.	अनामिका (नवीन)	१९३७
५.	तुलसीदास	१९३८
६.	कुकुरमुत्ता	१९४२
७.	अणिमा	१९४३
८.	बेला	१९४३

९.	नये पत्ते	१९४६
१०.	अपरा (संचयन)	१९४६
११.	अर्चना	१९५०
१२.	आराधना	१९५३
१३.	गीत-गुंज	१९५४
१४.	सांध्य-काकली	१९६९

निबन्ध-संग्रह

१.	प्रबन्ध पद्म	१९३४
२.	प्रबन्ध-प्रतिमा	१९४०
३.	चयन	१९५७
४.	चाबुक	१९६२
५.	संग्रह	१९६४

आलोचनात्मक कृतियाँ

१.	रवीन्द्र कविता कानन	१९२४
२.	पन्त और पल्लव	१९४९

जीवनी साहित्य

१.	भक्त ध्रुव	१९२६
२.	भीष्म	१९२६
३.	महाराणा प्रताप	१९२९
४.	भक्त प्रहलाद	१९३०

स्फुट गद्य साहित्य

१.	महाभारत	१९३९
२.	रामायण की अंतर्कथाएँ	१९६८
३.	निराला का पत्र-साहित्य	

अनूदित रचनाएँ

१.	आनन्द मठ
२.	विष वृक्ष
३.	कृष्णकान्त का बिल
४.	कपाल कुण्डला
५.	दुर्गेशनन्दिनी
६.	राजसिंह
७.	राज रानी
८.	देवी चौधरानी

९.	युगलांगुलीय
१०.	चन्द्रशेखर
११.	रजनी
१२.	श्री रामकृष्ण वचनामृत
१३.	भारत में विवेकानन्द
१४.	परिव्राजक
१५.	राजयोग

निराला की काव्य-कृतियाँ : एक सर्वेक्षण

निराला के साहित्यिक व्यक्तित्व की ऊँचाई का प्रमाण उनकी सभी रचनाएँ हैं, फिर भी साहित्य जगत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा उनके कवि रूप की है। निराला की साहित्यिक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम कविता के माध्यम से हुई थी। उनकी पहली प्रकाशित काव्यकृति है 'अनामिका' जो १९२३ में छपी थी। वे मृत्यु-पर्यन्त (१९६१ तक) साहित्य-सृजन में लीन रहे। उनकी काव्य कृतियों का काल-क्रमानुसार सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वेक्षण में यह प्रयास किया गया है कि उनकी समस्त कृतियों के माध्यम से अलग-अलग काल-खण्डों में लिखी गयी उनकी कविताएँ विभिन्न काव्य-आन्दोलनों की झलक दे सकें।

अनामिका

१९२३ में निराला की प्रथम काव्य-कृति 'अनामिका' कलकत्ते से प्रकाशित हुई। पुस्तक की भूमिका निराला के 'अभिन्न-हृदय-मित्र' महादेव प्रसाद सेठ ने लिखी थी। इस भूमिका में सेठ जी ने संकलन की पहली कविता 'पंचवटी-प्रसंग' पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की सम्मति का उल्लेख किया है – "हिन्दी वालों में ९० फीसदी इस छन्द को अच्छी तरह पढ़ भी न सकेंगे। पर चीज नई है। अगर इसका आदर हो तो आगे भी इसी छन्द में कुछ लिखिएगा। मुझे तो रचना ललित और भावपूर्ण जान पड़ती है।"[1] सेठ जी ने इस संकलन की कविताओं के विषय में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखा है – "त्रिपाठी जी ने 'पंचवटी-प्रसंग,' 'अधिवास' तथा 'जुही की कली' नामक कविताओं को लिखकर हिन्दी के पद्य साहित्य में एक अभूतपूर्व नई शैली का समावेश किया है।"[2]

४० पृष्ठों की इस पुस्तक में कुल नौ कविताएँ हैं जिनका काल-खण्ड १९२१ से १९२३ तक विस्तृत है। कविताओं का क्रम इस प्रकार है – (१) पंचवटी-प्रसंग (२) अधिवास (३) अध्यात्म-फल (४) माया (५) जुही की कली (६) सच्चा प्यार (७) तुम और मैं (८) जलद (९) लज्जिता।

इन कविताओं में सबसे लम्बी प्रथम कविता ही है जो वनवास के दौरान राम-लक्ष्मण सीता के पंचवटी निवास को केन्द्रित कर लिखी गयी है। पाँच खण्डों में विभाजित इस कविता में

नाटक की भाँति राम, लक्ष्मण, सीता, सूर्पनखा आदि का उल्लेख बाईं तरफ किया गया है। शैली की दृष्टि से यह संवाद-शैली भी पाठक को प्रभावित करती है।

संग्रह की दूसरी कविता 'अधिवास' भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। वास्तव में यही वह कविता है जिसने यह स्पष्ट संकेत दिया था कि निराला घिसी-पिटी शैली अपनाने की अपेक्षा अपनी नयी शैली का प्रवर्तन करने के प्रति अधिक आग्रही थे। 'मैंने मैं शैली अपनायी' के साथ जो दूसरी रेखांकित करने योग्य बात है, वह है-पीड़ितों, वंचितों तथा शोषितों का पक्षधर होने का एलान। कहने की जरूरत नहीं है कि शैली और प्रवृत्ति की ये विशेषताएँ आगे चलकर निराला के सम्पूर्ण साहित्य की विशेषता के रूप में उभर कर आईं। संग्रह की सर्वाधिक चर्चित कविता 'जुही की कली' है। छायावादी काव्य की आरंभिक एवं चुनी हुई कविताओं में इसकी गणना की जाती है। १९१६ में रचित यह कविता नायक पवन और नायिका जुही के माध्यम से छायावाद के समस्त गुणों को प्रगट करने वाली विशिष्ट कविता तो है ही, साथ ही परिनिष्ठित भाषा और शैली का भी अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करती है।

निराला की जिन कविताओं में रहस्यवादी स्वर मुखरित हुए हैं उनमें एक प्रमुख कविता है 'तुम और मैं'। यह कविता इंगित करती है कि निराला का रहस्यवाद भारतीय धारा के आत्म-चिन्तन का परिणाम है। निराला ने वेदान्त का विस्तृत अध्ययन किया था। तभी तो वे परम तत्व में नानात्व के सौन्दर्य को देखते हैं। अद्वैतवादी रहस्यवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा 'तुम और मैं' कविता में पाई जाती है।

'अनामिका' के समर्पण में निराला ने देवी सरस्वती को सम्बोधित करते हुए लिखा है –

"माँ !
जिस तरह चाहो, बजाओ इस वीणा को,
यन्त्र है
सुनो तुम्हीं अपनी सुमधुर तान,
बिगड़ेगी वीणा तो सुधारोगी बाध्य हो।"[१]

समर्पण की अन्तिम पंक्ति यह संकेतित करती है कि कवि को अपनी सीमाओं का आभास है, परन्तु काव्य की देवी सरस्वती की कृपा से वह पूर्ण आश्वस्त है। पूरे संकलन को पढ़कर किसी भी काव्य-रसिक पाठक के मन में जो विचार आयेंगे, वे भूमिका में महादेव प्रसाद सेठ द्वारा व्यक्त किए गए इन विचारों के करीब ही होंगे – "इतना मैं अवश्य कहूँगा और दावे के साथ कहूँगा कि त्रिपाठी जी ने 'पंचवटी-प्रसंग', 'अधिवास' तथा 'जुही की कली' नामक कविताओं को लिखकर हिन्दी के पद्य-साहित्य में एक अभूतपूर्व नई शैली का समावेश किया है और यदि हिन्दी का कवि- समाज इस शैली का आदर और अनुगमन करेगा तो मातृ-भाषा का बड़ा उपकार होगा और उसके लालित्य में एक नई बात पैदा हो जायगी।"[२]

परिमल

संवत् १९८६ (सन् १९२९) में गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय की ओर से प्रकाशित २४७ पृष्ठों का काव्य-संग्रह 'परिमल' तीन खण्डों में विभाजित है। तीनों खण्डों में संकलित कविताओं के बारे में कवि ने कृति की भूमिका में महत्वपूर्ण और रोचक स्पष्टीकरण किया है। "प्रथम खण्ड में सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं जिनके लिये हिन्दी के लक्ष्ण-ग्रन्थों के द्वारपालों को 'प्रवेश-निषेध' या 'भीतर जाने की सख्त मुमानिअत है' कहने की जरूरत शायद न होगी। दूसरे खण्ड में विषम-मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं, इस ढंग के साथ मेरे 'समवायः सखा मतः' या 'एकक्रियं भवेन्मित्रम्' सुकुमार कवि मित्र पन्त जी के ढंग का साम्य है, यह भी उसी तरह ह्रस्व-दीर्घ-मात्रिक संगीत पर चलता है। तीसरे खण्ड में स्वच्छन्द छन्द है, जिसके सम्बन्ध में मुझे विशेष रूप से कहने की जरूरत है, कारण इसे ही हिन्दी में सर्वाधिक कलंक का भाग मिला है।"[५]

संक्षेप में सममात्रिक, विषम मात्रिक और स्वच्छन्द कविताओं से युक्त इस ग्रन्थ में विविध भावबोध की कविताएँ हैं। कुल ७८ कविताओं वाले संग्रह की भूमिका भी १५ पृष्ठों की है जिसके बारे में कवि ने स्वयं कहा भी है – "कविता की पुस्तक में कैफ़ियत से भरी हुई बृहत भूमिका मेरे विचार से हास्यास्पद है।"[६] कवि की दृष्टि में यह भले ही हास्यास्पद हो परन्तु 'परिमल' की भूमिका निराला के विस्तृत अध्ययन को प्रमाणित करती है। साहित्य के क्षेत्र में दलबन्दी पर अपने विचार प्रकट करते हुए भूमिका में निराला ने कहा है – "दलबन्दियों के भाव जिनमें न हों ऐसे साहित्यिक कदाचित ही नजर आते हैं, और प्रतिभाशाली साहित्यिकों को निष्प्रभ तथा हेय सिद्ध करके ससम्मान आसन ग्रहण करने वाले महालेखक और महाकविगण साहित्य में अपनी प्राचीन गुलामी-प्रथा की ही पुष्टि करते जा रहे हैं।"[७] यह कथन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि निराला के जीवन में विविध प्रकार के विरोध रहे हैं। उनके साहित्यिक अवदान को स्वीकार न कर आलोचना के स्तर पर उन्हें जो विरोध झेलना पड़ा था उसके कारण कई बार उन्हें टूटते और पराजित होते हुए देखा गया है परन्तु निराला का सम्पूर्ण जीवन यह प्रमाणित करता है कि टूटन और पराजय से वे कभी निराश नहीं हुए। उससे प्रेरणा प्राप्त करके नयी ऊर्जा के साथ उन्होंने अपने साहित्यिक प्रदेय से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। ऊपर जिस उद्धरण की चर्चा की गयी है, उसमें व्यक्त भावना का विकास निराला की रचनाओं में यत्र-तत्र देखा जा सकता है। भूमिका के छठे पृष्ठ पर उन्होंने मनुष्यों की मुक्ति की तरह 'कविता की मुक्ति' के बारे में कुछ उल्लेखनीय बातें कही हैं – "मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।....मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।"[८]

इस लम्बी भूमिका के लिखने के पीछे मुक्त छन्द वाली कविता के समर्थन में कवि की अपनी अभिव्यक्ति तो है ही, उसकी पाण्डित्यपूर्ण तेजस्विता और आलोचकीय तेवर भी परिलक्षित

होते हैं। कविता को स्वाधीन करने के महत् उद्देश्य के कारण उसे "काव्य की स्वाधीनता का घोषणा-पत्र" भी कह सकते हैं।

'परिमल' में जो कविताएं हैं उनका विषय-वैविध्य भी ध्यान देने योग्य है। इसमें आराधना के गीत हैं, प्रेमपरक कविताएँ हैं, प्रकृति का सुन्दर चित्रण है, ऐतिहासिक प्रसंगों वाली प्रेरक रचनाएँ हैं और समाज की विषम परिस्थितियों को चित्रित करने वाली भिन्न-भिन्न रुचियों की महत्वपूर्ण रचनाएँ भी हैं। 'भिक्षुक', 'संध्या-सुन्दरी', 'विधवा', 'बादल-राग', 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र' आदि श्रेष्ठ कविताओं के साथ इस संकलन से पूर्ववर्ती 'अनामिका' संग्रह की प्रमुख कविताएँ भी हैं।

गीतिका

'गीतिका' संगीत-काव्य के क्षेत्र में निराला का एक अनूठा प्रयोग है। इसका प्रकाशन सन् १९३६ में भारती-भण्डार इलाहाबाद से हुआ। यह संग्रह कवि निराला ने अपनी स्वर्गीया पत्नी श्रीमती मनोहरा देवी को समर्पित किया है। यों तो कवि ने बाल्य-काल से ही स्वर-साधना की थी किन्तु इस काव्य के प्रणयन में कहीं-न-कहीं पत्नी की अदृश्य प्रेरणा भी रही है। कृति के समर्पण में कवि की यह पंक्ति – "जिसका स्वर गृहजन, परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे (संगीत) स्वर को परास्त करता था"[९] स्पष्ट करती है कि पत्नी के कंठ-स्वर के प्रभाव ने निराला के मन में स्पर्धा जगा दी थी। यही नहीं बल्कि स्वर-साधना की इसी लगन के फलस्वरूप 'गीतिका' जैसा गीत-संग्रह साहित्य-जगत को प्राप्त हुआ।

कृति के आरम्भ में लगभग १४ पृष्ठों की लम्बी-चौड़ी भूमिका में निराला ने गीतों के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए अपने गीतों के सम्बन्ध में इस आरोप का भी खण्डन किया है कि खड़ी बोली के गीत गाये नहीं जा सकते। यही नहीं बल्कि कुछ गीतों की शास्त्रीय स्वर-लिपि देकर उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि खड़ी बोली में भी स्वर-माधुर्य एवं संगीतात्मकता को पिरोया जा सकता है। इस क्षेत्र में निराला ने कृतज्ञतापूर्वक 'खड़ीबोली में नये गीतों के प्रथम सृष्टिकर्ता प्रसाद जी' एवं गुप्त जी का प्रभाव स्वयं पर स्वीकार किया है।

कृति की भूमिका यह भी संकेत करती है कि रवीन्द्रनाथ की ही भांति निराला भी अपने गीतों की स्वर-लिपि स्वयं ही तैयार करना चाहते थे परन्तु आर्थिक अभावों के कारण वे ऐसा करने में असमर्थ रहे। उन्होंने लिखा है – "मेरी सरस्वती संगीत में भी मुक्त रहना चाहती है, सोचकर मैं चुप हो गया। ....चूँकि मैं बाजार का नहीं बन सका, शायद इसीलिए सरस्वती ने मेरे स्वरों को बाजारू नहीं बनने दिया।"[१०]

इस संग्रह में कुल १०१ गीत संगृहीत हैं। विषय की दृष्टि से इनका विभाजन प्रकृति, प्रेम तथा सौन्दर्य, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय जागरण एवं दर्शन आदि शीर्षकों में किया जा सकता है।

प्रेम तथा शृंगारिक गीतों में 'प्रिय यामिनी जागी', 'मौन रही हार', 'मेरे प्राणों में आओ', 'दृगों की कलियां नवल खुलीं', 'स्पर्श से लाज लगी', 'नयनों के डोरे लाल', 'नयनों का नयनों

से बन्धन' आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें सौन्दर्य के उदात्त-चित्र, हृदय की कोमल-वृत्ति, विरह के कारुणिक दृश्य एवं आत्म-समर्पण का प्रकाशन अत्यन्त उत्कृष्ट ढंग से किया गया है।

प्रकृति सम्बन्धी गीतों में 'सखि वसन्त आया', 'बह चली अब अलि', 'शिशिर समीर', 'बादल में आये जीवन-घन', 'रूखी री यह डाल', 'मेघ के घन केश घन', 'गर्जन से भर दो वन', 'डूबा रवि अस्ताचल', 'घोर शिशिर', 'खुलती मेरी शेफाली' आदि गीत उल्लेखनीय हैं। इनमें विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में आए परिवर्तन, प्रकृति का मानवीकृत रूप, जन-जीवन के साथ उसकी संपृक्ति आदि के मनोहारी चित्र उपस्थित किए गए हैं।

'मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा', 'रे कुछ न हुआ तो क्या', 'रे अपलक मन', 'मैं रहूँगा न गृह के भीतर', जैसे गीतों में निश्छल आत्म-प्रकाशन तथा जीवन की कटु तिक्त अनुभूतियों के मध्य भी कर्मवादी बने रहने का संकल्प उभरा है।

इसी तरह 'धन्य कर दे माँ', 'जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन', 'भारति जय विजय करे', 'वन्दूँ पद सुन्दर तव' में मातृ-भूमि की वन्दना की गयी है। इनमें राष्ट्रीय-चेतना का स्वर ही प्रमुख है।

भक्तिपरक एवं प्रार्थना-प्रधान गीतों में 'नर जीवन के स्वार्थ सकल', 'प्रात तव द्वार पर', 'तुम्हीं गाती हो अपना गान', 'कौन तम के पार रे', 'वीणा वादिनी वर दे' आदि गीत प्रसिद्ध हैं। इनमें माँ से शक्ति और भक्ति की कामना की गयी है। कुछ गीतों में अद्वैतवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। इनमें अलौकिकता और रहस्यात्मकता के संकेत मिलते हैं।

इस तरह 'गीतिका' में निराला की काव्य-कला की प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इसमें संगीत एवं काव्य का अनूठा सम्मिश्रण मिलता है। कल्पना, भावना एवं माधुर्य का सफल संयोजन इस कृति की विशेषता है। शब्द-चयन, स्वर-माधुर्य, लयात्मकता एवं अर्थ-गाम्भीर्य की दृष्टि से यह कृति 'हिन्दी के लिए सुन्दर उपहार' है।

अनामिका

सन् १९३७ में भारती भण्डार, इलाहाबाद से प्रकाशित 'अनामिका' सर्वथा नवीन काव्य-संग्रह है। सन् १९२३ में कलकत्ते से प्रकाशित 'अनामिका' काव्य-संग्रह का कोई चिह्न इस नवीन संग्रह में अवशिष्ट नहीं है। नाम की इस पुनरावृत्ति का निराला ने इस संग्रह की भूमिका में ठोस कारण प्रस्तुत किया है – "'अनामिका' नाम की पुस्तिका मेरी रचनाओं का पहला संग्रह है। आदरणीय मित्र स्वर्गीय श्री बाबू महादेव प्रसाद जी सेठ ने प्रकाशित की थी .... वैदान्तिक साहित्य से खींच कर हिन्दी में परिचित और प्रगतिशील मुझे उन्हीं ने किया, अपना मतवाला निकाल कर। मेरा उपनाम 'निराला' मतवाला के ही अनुप्रास पर आया था। ....यह नामकरण मैंने सिर्फ इसलिए किया जिससे कि इसे उन्हें ही उनकी स्मृति में समर्पित करूँ।"[१२] भूमिका में कवि द्वारा किया गया यह स्पष्टीकरण प्रकट करता है कि 'अनामिका' शीर्षक यह संग्रह प्रथम संग्रह से सर्वथा भिन्न एक नवीन एवं मौलिक संग्रह है।

इस संग्रह में कुल ५६ कविताएँ संगृहीत हैं जिनमें 'तोड़ती पत्थर', 'सरोज-स्मृति', 'राम की शक्ति-पूजा' जैसी प्रसिद्ध कविताएँ भी हैं। निराला ने कविता के क्षेत्र में किसी बंधी-बंधायी परिपाटी का अनुसरण नहीं किया बल्कि जीवन और जगत को जब, जहाँ, जैसा देखा और अनुभव किया, वैसा ही काव्य में वर्णित किया। इसीलिए जहाँ एक ओर 'प्रेयसी', 'प्रेम के प्रति', 'प्रगल्भ प्रेम', 'प्रिया से', 'चुम्बन', 'यही', कविताओं में प्रेम और शृंगारिकता की प्रवृत्ति विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर 'दान', 'वनबेला', 'मित्र के प्रति', 'ठूंठ', 'उक्ति', 'सच है' कविताओं में व्यंग्य का स्वर प्रधान है।

'नाचे उस पर श्यामा', 'कहाँ देश है', 'तोड़ती पत्थर', 'दिल्ली', 'वे किसान की नयी बहू की आँखें' कविताओं में भारत के अतीत गौरव का स्मरण करते हुए सामाजिक एवं राजनीतिक वैषम्य पर तीखा प्रहार किया गया है।

'बसंत की परी के प्रति', 'वारिद-वन्दना', 'विनय', 'खुला आसमान', 'मेरी छवि ला दो' कविताओं में प्रकृति के विभिन्न चित्र खींचे गए हैं।

कवि के रूप में निराला को अनेक विरोधों का सामना करना पड़ा था। उनका व्यक्तिगत जीवन भी संघर्षमय रहा। कवि की यही पीड़ा 'हिन्दी के सुमनों के प्रति', 'सरोज-स्मृति', 'वन-बेला', 'हताश' जैसी कविताओं में उभर कर आयी है। 'सरोज-स्मृति' हिन्दी का उत्कृष्टतम शोक-गीति है। इसमें कवि निराला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की मार्मिक व्यंजना हुई है।

'राम की शक्ति-पूजा' लम्बी आख्यानक कविता है। पौराणिक कथा पर आधारित यह कविता ओज गुण से सम्पन्न है। वीर रस की प्रमुखता होने पर भी इसमें अन्य सभी रसों का समावेश मिलता है। भाषा-शैली, वस्तु-चयन, विराट सांस्कृतिक परिवेश आदि के कारण इसे 'महाकाव्यात्मक कविता' माना गया है।

'तट पर', 'ज्येष्ठ', 'कहाँ देश है', 'गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को' तथा 'नाचे उस पर श्यामा' बंगला से अनूदित कविताएँ हैं किन्तु अनुवाद होते हुए भी इनमें मौलिकता की स्पष्ट छाप विद्यमान है।

संग्रह की एक अन्य उल्लेखनीय कविता 'सेवा-प्रारम्भ' है। यह बंगाल में घटी एक सत्य घटना पर आधारित है। इसमें रामकृष्ण-मिशन की सेवा-भावना का वर्णन है साथ ही इस कविता में प्रगतिवादी चेतना के स्पष्ट संकेत भी मिलते हैं।

विरोधाभास निराला के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता रही है और यह विरोधाभास इस संग्रह की कविताओं में भी मुखरित हुआ है। भाषा, शैली एवं छन्द की दृष्टि से भी इस संग्रह की कविताओं में वैविध्य है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'अनामिका' संग्रह निराला का प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है।

तुलसीदास

'तुलसीदास' एक लम्बी कथात्मक कविता है, जिसका प्रकाशन १९३८ ई० में भारती-

भण्डार इलाहाबाद से हुआ। 'कुकुरमुत्ता' के अतिरिक्त दूसरी लम्बी कविता यही है, जो स्वतंत्र रूप से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई है। मुगलों के आक्रमण द्वारा हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के पराभव तथा मध्यकालीन सामाजिक अधःपतन की पृष्ठभूमि में वैदिक एवं सांस्कृतिक युग के प्रतिष्ठाता के रूप में गोस्वामी तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व तथा मानसिक दुर्बलता से ऊपर उठकर उनकी चेतना के ऊर्ध्वगमन की प्रक्रिया को इस काव्य का विषय बनाया गया है। यहाँ ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विघटन को दोहरी अर्थ-व्यंजना के माध्यम से प्रकट किया गया है।

यह कृति कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। तुलसीदास के जीवन-वृत्त को नाटकीय घटनाओं के संयोजन के माध्यम से प्रस्तुत कर निराला ने एक नए प्रकार के चरित्र-चित्रण की शुरुआत की। इस प्रकार से गाथा लिखने का श्रेय छायावादी कवियों में सर्वप्रथम निराला को ही जाता है।

इसमें मध्यकालीन समाज में शूद्रों पर उच्च वर्गों द्वारा किए जा रहे अत्याचार का जीवन्त वर्णन तथा मुगलों के आक्रमण के फलस्वरूप नष्ट हुई भारतीय सभ्यता के हृदयस्पर्शी वर्णन द्वारा ऐतिहासिकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है। भारत के सांस्कृतिक अन्धकार की चिन्ता निराला की अपनी चिन्ता है जो युग-जीवन की त्रासद स्थिति के कारण उनके संवेद्य हृदय को मथ रही थी। यहाँ दूधनाथ सिंह की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं – "'तुलसीदास' में तुलसीदास राम भी हैं और वह तुलसी और उनमें प्रतिरोपित राम - निराला ही हैं। यानी कि राम-कथा के रचयिता तुलसीदास और राम और निराला यहाँ एक हो जाते हैं।"[१२] पौराणिक चरित्र राम, मध्ययुगीन भक्त कवि तुलसीदास और आधुनिक युग की नब्ज पहचानने वाले कवि निराला के चरित्रों और विचारों का यह एकीकरण प्रमाणित करता है कि एक सजग कलाकार और विचारक, चाहे वह किसी भी युग का हो – युगीन समस्याओं की उपेक्षा नहीं कर पाता।

इस कृति में शिल्प के स्तर पर भी नवीन प्रयोग किया गया है। इसमें निराला ने एक मौलिक छन्द की सर्जना की है। प्रथम दो पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास की योजना है और तृतीय कुछ लम्बी पंक्ति पूर्ण स्वतन्त्र रहती है। यह तृतीय पंक्ति छन्द की अन्तिम षष्ठ पंक्ति से अनुपात की दृष्टि से जब मिलती है तो कविता में स्वर-सामंजस्य एवं एक अनूठे नाद-सौन्दर्य को जन्म देती है।

शब्द-चयन, विभिन्न अलंकारों के कुशल प्रयोग एवं प्रसंगानुकूल तत्सम तथा कोमल-कान्त-पदावली की योजना ने कृति को सौन्दर्य प्रदान किया है। इस कृति में विभिन्न रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। निराला का व्यक्तित्व एवं कृतित्व जिस ओज गुण के लिए प्रसिद्ध रहा है, उसकी पूर्ण परिणति इस कृति में देखी जा सकती है। प्रकृति का अत्यन्त उदात्त तथा भव्य चित्रण, मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण, रहस्यवाद की उसके अन्तर्द्वन्द्व के साथ कथा-रूप में नियोजना के कारण इस काव्य को महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है। डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय इसे "अन्तर्मुख प्रबन्ध-काव्य"[१३] मानते हैं तो दूधनाथ सिंह कथा-तत्त्व की विद्यमानता के कारण इसे "लम्बी कथात्मक कविता"[१४] कहते हैं।

निराला को 'आलोक का कवि' मानने वाले प्रो० मालारविंदम् चतुर्वेदी इस कृति के

वैशिष्ट्य का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं – "इस कथानक के विकास में घटनाओं के घात-प्रतिघात की अपेक्षा प्रकाश-पुंजों की क्रिया-प्रतिक्रिया अधिक दृष्टि-गोचर होती है। ..... 'तुलसीदास' काव्य का कथानक अपनी प्रबन्ध-वक्रता के कारण प्रतीकात्मक बन जाता है और यह प्रतीक भी आलोक-मूलक ही है।"[१५]

कुकुरमुत्ता

'कुकुरमुत्ता' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन १९४२ ई० में युग-मन्दिर, उन्नाव से हुआ। यह प्रथम संस्करण एक काव्य-संग्रह था जिसमें 'कुकुरमुत्ता' के अलावा सात अन्य कविताएँ इस प्रकार थीं – (१) गर्म पकौड़ी (२) प्रेम-संगीत (३) रानी और कानी (४) खजोहरा (५) मास्को डायलाग्स (६) स्फटिक शिला (७) खेल। कविताओं के नीचे दी गयी रचना-तिथि से स्पष्ट होता है कि इनका रचनाकाल १९३९-४२ है। इस कृति का साहित्य-जगत में बड़ा समादर हुआ और लोगों ने इसे हाथों-हाथ लिया। दूसरे संस्करण में स्वयं कवि ने आवेदन में लिखा है – "बाजार आज भी गवाही देता है कि किताब चाव से खरीदी गई, आवृत्ति हजार कान सुनी गई और तारीफ लाख-मुँह होती रही।"[१६] इस संग्रह की लोकप्रियता को देखते हुए कवि को लिखना पड़ा – "हो सका तो ऐसी और रचनाएँ लायी जायेंगी।"[१७]

इस काव्य-संग्रह का दूसरा संस्करण १९४८ ई० में राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी से प्रकाशित हुआ। उसमें केवल 'कुकुरमुत्ता' कविता ही थी। अतः यह कृति एक लम्बी कथात्मक कविता-पुस्तक बन कर रह गयी क्योंकि 'कुकुरमुत्ता' के अलावा बाकी सभी कविताएं निराला ने अपने अगले काव्य-संग्रह 'नये-पत्ते' में शामिल कर लीं।

'कुकुरमुत्ता' का जिस समय प्रकाशन हुआ, वह राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल का युग एवं साहित्य-जगत में प्रगतिशील आन्दोलन का युग था। अतः 'कुकुरमुत्ता' की समस्त कविताओं पर इसकी स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इन कविताओं में एक ओर पूंजीवादी सभ्यता पर व्यंग्य किया गया है वहीं दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग के शोषण को दिखाकर कवि ने समाज के उपेक्षित वर्ग की समस्याओं एवं उनके जीवन की विभीषिकाओं का दिग्दर्शन कराया है।

'कुकुरमुत्ता' एक लम्बी कविता है जिसमें गुलाब और कुकुरमुत्ता को क्रमशः पूंजीवादी संस्कृति एवं किसान तथा मजदूर वर्ग के प्रतीक के रूप में उपस्थित किया गया है। दोनों के वार्तालाप के माध्यम से जहाँ एक ओर पूंजीवादी संस्कृति पर प्रहार किया गया है वहीं दूसरी ओर कुकुरमुत्ता के रूप में उपेक्षित के उन्नयन और सामान्य की प्रतिष्ठा भी की गयी है। कविता में निहित व्यंग्य सामाजिक विषमता को दर्शाता है।

इस संग्रह की 'प्रेम-संगीत' और 'गर्म-पकौड़ी' शीर्षक कविताओं में निराला प्रेम-प्रसंगों के आभिजात्य को नकारते हैं एवं ब्राह्मण-संस्कृति का उपहास करते हैं।

इसी प्रकार 'रानी और कानी' कविता में एक साथ व्यंग्य और करुणा की सृष्टि की गयी है। यह कविता उस वैवाहिक-प्रथा पर तीखा प्रहार करती है जिसमें कन्या के गुण से ज्यादा उसके रूप को महत्व दिया जाता है।

'खजोहरा' कविता में हास्य और व्यंग्य के मध्य ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

इस संग्रह की 'मास्को डायेलाग्स' एक महत्वपूर्ण कविता है जिसमें आधुनिक समाजवादी नेताओं पर कटाक्ष किया गया है। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए साहित्यिक बनकर किसी पैसे वाले को ठगना ही इनका प्रमुख उद्देश्य होता है।

'कुकुरमुत्ता' संग्रह की 'स्फटिक शिला' कविता बेहद विवादास्पद एवं चर्चित है। इसमें कवि ने अपनी चित्रकूट-यात्रा तथा प्रकृति-चित्रण की मनोरम झांकी प्रस्तुत की है। कविता के अन्त में सद्य: स्नाता युवती का घोर श्रृंगारिक वर्णन करने के साथ-साथ जानकी का स्मरण किया गया है। इसी प्रसंग के कारण यह कविता विवादास्पद बन गयी है।

संग्रह की अन्तिम कविता 'खेल' बाल मनोविज्ञान को उद्घाटित करती है।

'कुकुरमुत्ता' संग्रह में भाषा और शिल्प के स्तर पर भी नवीनता दिखाई पड़ती है। यहाँ निराला छायावादी एवं आभिजात्य संस्कारों से पूर्णत: मुक्त हो सामान्य की प्रतिष्ठा करते हैं। इसलिए संस्कृत की तत्सम शब्दावली को छोड़ ठेठ भाषा का प्रयोग करते हैं। गद्यात्मकता में भी छन्द और लय को बनाये रखने की कोशिश ने इस कृति को एक अभिनव रूप प्रदान किया है।

अणिमा

सन् १९४३ के उत्तरार्ध में निराला का सातवाँ काव्य-संग्रह 'अणिमा' युग मन्दिर, उन्नाव से प्रकाशित हुआ। वस्तुत: यह गीत-संग्रह है। भूमिका की यह पंक्ति "कुछ गीत आल इण्डिया-रेडियो, दिल्ली और लखनऊ से गाये गये हैं"[१९] इन गीतों की लोकप्रियता प्रमाणित करती है और शायद इसीलिए रेडियो से इनका प्रसारण हुआ। १०४ पृष्ठों के इस संग्रह में कुल ४५ गीत हैं। इन गीतों में मुख्यतया तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं वे हैं— भक्ति, दु:ख करुणा एवं निराशा तथा प्रशस्ति। 'जन-जन के जीवन के सुन्दर', 'उन चरणों में', 'दलित जन पर करो करुणा', 'भाव जो छलके पदों पर', 'धूलि में तुम मुझे भर दो', 'मैं बैठा था पथ पर', 'तुम्हीं हो शक्ति समुदाय की' जैसे गीतों में भक्ति का स्वर प्रधान है। दलित जनों पर भी करुणा करने की प्रार्थना कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है।

'तुम आये' तथा 'तुम चले ही गये प्रियतम' कविताओं में भावुकता मिश्रित रहस्यात्मकता के दर्शन होते हैं।

इस संग्रह में 'मैं अकेला', 'स्नेह निर्झर बह गया है' जैसी महत्वपूर्ण कविताएँ भी हैं जिनमें कवि के जीवन की व्यक्तिगत निराशा, एकाकीपन तथा अवसाद का मार्मिक वर्णन है। 'परिमल' संग्रह में 'अभी न होगा मेरा अन्त' कहकर अपनी जिजीविषा का उद्घोष करने वाले निराला अपने दिवस की 'सान्ध्य-वेला' स्पष्ट देखने लगे थे।

संभवत: निराशा के इन्हीं आकुल क्षणों में वे परम-सत्ता की ओर उन्मुख हुए और प्रभु से अपने चरणों में शरण देने की प्रार्थना की।

'उद्बोधन' तथा 'सहस्राब्दि' जैसी कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर उभरा है तो 'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता में विज्ञान-विकास ने मानव-मात्र को जो संवेदन-हीनता प्रदान की है – कवि ने उस ओर भी इशारा किया है।

इस संग्रह में संत रविदास, आचार्य शुक्ल, प्रसाद, भगवान बुद्ध, श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित, श्रीमती महादेवी वर्मा का प्रशस्ति गान कर साहित्यिक मनीषियों, राजनीतिक नेताओं तथा धार्मिक महात्माओं के प्रति अपना श्रद्धा-ज्ञापन किया गया है। इन कविताओं के सम्बन्ध में निराला संग्रह की भूमिका में लिखते हैं – ''कुछ छोटी-बड़ी रचनाएं प्रसिद्ध जनों पर हैं जो काव्य की दृष्टि से, आलोचकों के कथनानुसार अच्छी आई हैं। पढ़ने पर पाठकों को प्रसन्नता होगी।''[३३]

'यह है बाजार', 'सड़क के किनारे दुकान', 'चूंकि यहाँ दाना है' तथा 'जलाशय के किनारे कुहरी थी' जैसी कविताओं में प्रगतिवादी स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है। इनमें सामाजिक जीवन के यथार्थ पर व्यंग्य किया गया है।

इस संग्रह के गीतों में भाषागत वैविध्य के दर्शन होते हैं। सहज, सरल तथा प्रवाहमयी भाषा, स्वर-सौन्दर्य, श्रुति मधुरता तथा लयात्मकता के कारण निराला के साहित्यिक मित्रों ने इन गीतों की तारीफ की – ऐसा भूमिका में स्वयं कवि ने उल्लेख किया है।

सबसे महत्वपूर्ण बात इस संग्रह में यह नजर आती है कि इसमें छन्द-मुक्ति के प्रति कवि आग्रही नहीं है बल्कि ''उसका ध्यान संवेदनागत और भाषागत मुक्ति पर केन्द्रित हो गया।''[३४]

बेला

जनवरी १९४६ में हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स द्वारा इलाहाबाद से निराला के 'बेला' काव्य-संग्रह का प्रकाशन हुआ। कुल १०४ पृष्ठों की इस पुस्तक में ९५ गीत समाहित हैं। यह संग्रह आचार्य कविवर जानकी वल्लभ शास्त्री को समर्पित है। इसमें सभी तरह के गीत हैं जैसा कि निराला ने स्वयं आवेदन में लिखा है। इसकी भाषागत विशेषता के बारे में स्वयं कवि का कथन द्रष्टव्य है – ''भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं।''[३५] यही नहीं बल्कि कवि विश्वासपूर्वक आगे कहते हैं – ''पाठकों की हिन्दी मार्जित हो जायगी अगर उन्होंने आधे गीत भी कण्ठाग्र कर लिये, यों आज भी ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण अधिकांश जन तुतलाते हैं, खड़ी बोली के गीत खुलकर नहीं गा पाते। प्राय: सभी दृष्टियों से उनको फायदा पहुँचाने का विचार रखा गया है। पढ़ने पर वे आप समझेंगे।''[३६]

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि उस समय तक यद्यपि खड़ी बोली का साहित्य-लेखन में प्रयोग किया जाने लगा था तथापि वह ब्रजभाषा के प्रभाव से पूर्ण मुक्त नहीं हो पायी थी। यही नहीं बरन् जनसाधारण भी खड़ी बोली का प्रयोग करने में हिचकिचाहट का अनुभव करता था। पाठकों को फायदा पहुँचाने के विचार से लिखी गई इस पुस्तक के आवेदन से यह स्पष्ट होता है कि निराला हिन्दी के प्रति सचेष्ट थे तथा उसे जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें ''अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं जिनमें फारसी के

छन्द: शास्त्र का निर्वाह किया गया है।''[11] हिन्दी के साथ-साथ फ़ारसी साहित्य का गहन अध्ययन एवं फ़ारसी छन्द: शास्त्र के नियमों के अनुकूल गजलों की सफलतापूर्वक रचना कर निराला ने इस विधा को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

'बेला' के गीतों में विषयगत वैविध्य के दर्शन होते हैं। प्रकृति-चित्रण, देश-भक्ति, रहस्यानुभूति, प्रेम आदि भावों के गीतों के साथ-साथ सामाजिक वैषम्य पर करारा व्यंग्य करने वाले गीतों का संयोजन यह स्पष्ट करता है कि निराला की चेतना सदा लोक-जीवन से संपृक्त रही। ऐसे गीतों में क्रांति और विद्रोह का स्वर मुखर है। कुल मिलाकर यह संग्रह निराला का एक अभिनव प्रयोग माना जा सकता है।

नये पत्ते

'नये पत्ते' का प्रकाशन मार्च १९४६ में हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद से हुआ। यथार्थवादी धरातल पर रचित इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में पीड़ित-शोषित निम्न वर्ग की व्यथा को वाणी दी गयी है। यह संग्रह आधुनिक कविता में एक नये वैचारिक मोड़ की शुरुआत है। अत: निराला के समस्त काव्य संग्रहों में इसे महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इसके पद्यों की विशेषता प्रकट करते हुए निराला प्रस्तावना में लिखते हैं – '' 'नये पत्ते' इधर के पद्यों का संग्रह है। सभी तरह के आधुनिक पद्य हैं, छन्द कई, मात्रिक, सम और असम। हास्य की भी प्रचुरता, भाषा अधिकांश में बोलचाल वाली। पढ़ने पर काव्य की कुंजों के अलावा ऊँचे-नीचे फारस के जैसे टीले भी।''[12] इस भूमिका से स्पष्ट होता है कि इसमें छन्द वैविध्य है। इस संग्रह की कविताएँ आज की सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करती हैं।

इस संग्रह में कुल २८ कविताएँ हैं। 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायेलाग्स', 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'स्फटिक-शिला', 'खेल' ये सात कविताएँ 'कुकुरमुत्ता' संग्रह के प्रथम संस्करण से ली गयी हैं। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य का स्वर प्रधान है।

'डिप्टी साहब आये', 'छलांग मारता चला गया', 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डट कर बोला', 'महंगू महंगा रहा' आदि कविताओं में जमींदारी-प्रथा पर व्यंग्य के साथ-साथ कृषकों की दयनीय स्थिति तथा उन्हें विरोध के लिए कटिबद्ध होता दिखाया गया है।

'मास्को डायेलाग्स' में समाजवादी नेताओं पर व्यंग्य किया गया है। साथ ही यह भी दिखाया गया है कि ये तथाकथित देशभक्त राजनेता भी अपनी स्वार्थ-पूर्ति में दिन-रात लगे रहते हैं तथा पूंजीवादी व्यवस्था के पोषक हैं।

'राजे ने अपनी रखवाली की' कविता में उन कवियों, लेखकों, इतिहासकारों तथा कलाकारों पर व्यंग्य किया गया है जो धोखे से भरे हुए धर्म को बढ़ावा देते हैं तथा सभ्यता के नाम पर खून की नदी बहाते हैं।

'खुशखबरी' कविता सिनेमा के बढ़ते हुए घातक प्रभाव तथा उसके परिणाम स्वरूप

पाश्चात्य-संस्कृति के बढ़ते हुए कुप्रभाव को दर्शाती है। संग्रह की 'वर्षा', 'खजोहरा', 'स्फटिक-शिला', 'कैलाश में शरत्', 'देवी सरस्वती' आदि कविताएँ प्रकृति चित्रण प्रधान हैं। इनमें ग्राम्य वातावरण का जीवन्त चित्रण मिलता है।

'तिलांजलि' तथा 'रामकृष्ण देव के प्रति' कविताएँ प्रशक्ति-गान हैं। प्रथम में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के स्वर्गीय पति श्री आर.एस.पण्डित तथा द्वितीय में स्वामी रामकृष्ण देव के प्रति कवि ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

'चौथी जुलाई के प्रति' तथा 'काली माता' कविताएँ स्वामी विवेकानन्द की अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद हैं।

इस संग्रह की कविताओं में बोलचाल वाली भाषा का प्रयोग किया गया है। इसका कारण यही रहा होगा कि जिस प्रकार की भावभूमि पर ये कविताएँ खड़ी हैं, समाज के उस शोषित वर्ग की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के लिए ऐसी ही भाषा की आवश्यकता थी जो जन-साधारण के निकट हो।

दूधनाथ सिंह मानते हैं कि "संवेदनागत और भाषा की एकतानता के लिहाज से 'नये पत्ते' निराला के संग्रहों में सर्वश्रेष्ठ है। यहाँ हर लिहाज से एक रंग और एक जमीन की कविताएँ सबसे ज्यादा मिल जायेंगी।"[५]

इन कविताओं में निराला ने हिन्दी कविता के लिए सर्वथा एक नवीन शब्द-भंडार की रचना की है। ठेठ शब्दों का बाहुल्य पुराने अभिजात शब्द-भंडार के समक्ष चुनौती के रूप में उभरा है। इस सम्बन्ध में दूधनाथ सिंह का कथन द्रष्टव्य है – "यहाँ आकर निराला समझ चुके हैं कि सिर्फ छन्द मुक्ति से ही कविता की मुक्ति संभव नहीं है, बल्कि उसके लिए सदियों से जन-साधारण की अदृश्य खानों में पड़े उन शब्द-रत्नों को खोद कर, साफ करके उन्हें इस्तेमाल करना होगा। सदियों से वंचित जन-साधारण के उन्नयन और कला में उसे प्रतिष्ठित करने के लिए उसी के आत्मीय शब्द-बन्ध को काव्य में पिरोना होगा। उसी की सपाट गद्यात्मकता के सौन्दर्य को उतारना होगा। 'नये पत्ते' की कविताओं द्वारा निराला ने यही किया है इसीलिए ये कविताएँ भाषा, संवेदना और अर्थ – सभी स्तरों पर हिन्दी की भविष्य-कविता की सूचना देती हैं।"[६]

अपरा

'अपरा' काव्य-संग्रह १९४६ में साहित्यकार-संसद, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। यह कोई मौलिक ग्रन्थ नहीं बल्कि निराला द्वारा विभिन्न कालों में लिखी गयी प्रकाशित-अप्रकाशित कविताओं में से चुनी हुई कविताओं का संचयन मात्र है। इस संग्रह में १९१६ से १९४२ के काल खण्ड के मध्य लिखी गई उल्लेखनीय कविताएं समाविष्ट की गयी हैं। कुल ७९ कविताओं के इस संग्रह की कविताओं में मातृ-वन्दना, प्रकृति-चित्रण, आध्यात्मिक, शृंगारिक, उद्बोधनपरक, लम्बी आख्यानक, आत्म-चरितात्मक आदि सभी प्रकार की कविताएँ संकलित हैं। इस तरह इस एक संग्रह में ही निराला काव्य की विविध प्रवृत्तियों को दर्शाने वाली कविताओं के संकलित होने के कारण यह संग्रह अपने आप में विशिष्ट है।

'बादल-राग', 'जुही की कली', 'जागो फिर एक बार', 'सन्ध्या-सुन्दरी', 'तोड़ती पत्थर', 'राम की शक्तिपूजा', 'मैं अकेला', 'भिक्षुक', 'तुम और मैं', 'विधवा', 'यमुना के प्रति', 'नाचे उस पर श्यामा', 'सरोज-स्मृति' तथा 'तुलसीदास' जैसी श्रेष्ठ कविताएँ इस संग्रह में हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि निराला के काव्य-ग्रन्थों से अपरिचित पाठक यदि केवल 'अपरा' संग्रह का भी अध्ययन करें तो निराला के विशाल, बहु-आयामी एवं विरोधी प्रवृत्तियों से निर्मित व्यक्तित्व की झलक पा सकता है।

अर्चना

'अर्चना' काव्य-संग्रह का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९५० ई० में कला-मन्दिर, प्रयाग से हुआ। इस संग्रह में आध्यात्मिक-भाव से पूर्ण कविताएं देखी जा सकती हैं। इसके अधिकांश गीतों में भक्ति-रस की धारा प्रवाहित होती दिखायी देती है।

इस संग्रह में कुल ११२ गीत संग्रहीत हैं। इनमें से लगभग ३४-३५ गीत शरणागति के हैं। इनके विषय में स्वयं कवि का कथन है – "रस-सिद्धि की परताल कीजिएगा तो कहना होगा कि हिन्दी के भाषा-साहित्य में ज्ञानी और भक्त कवियों की पंक्ति बैठी हुई है, जिनकी रचनाएँ साधारण जनों के जिह्वाग्र से अमृत की धारा बहा चुकी हैं, ऐसी अवस्था में लोकप्रियता की सफलता दुराशा मात्र है।"[२१] इस संकलन के गीतों के सम्बन्ध में लेखक की ऐसी उक्ति उनकी अतिशय विनयशीलता को उजागर करती है। यों तो अपने प्रथम काव्य-संग्रह 'अनामिका' की 'माया' शीर्षक कविता से ही निराला में इस भक्ति-भाव का बीजारोपण होता है, किन्तु उसकी पूर्ण परिणति इस संग्रह में होती दिखायी देती है। कवि का यह भक्ति-भाव किसी निराशा, पराजय अथवा दैन्य का सूचक नहीं है जैसा कि कुछ आलोचकों का मन्तव्य है, बल्कि इस भाव-धारा को भारतीय जीवन की सनातन परम्परा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। 'भवसागर से पार करो हे', 'सागर से उत्तीर्ण तरी हो', 'तरणि तार हो', 'कठिन यह संसार' आदि गीतों में भक्त के हृदय की आकुलता प्रकट हुई है।

इस संग्रह में भक्ति-भाव के अलावा लगभग पन्द्रह गीत प्रकृति से सम्बन्धित, पन्द्रह गीत शृंगारिक तथा शेष गीत प्रयोगशील कहे जा सकते हैं।

प्रकृति-चित्रण के कुछ प्रसिद्ध गीत 'अलि की गूंज चली', 'आज प्रथम गायी पिक-पंचम', 'फूटे हैं आमों में बौर', 'केशर की कलि की पिचकारी', 'कुंज-कुंज कोयल बोली है' आदि हैं। इन गीतों का वैशिष्ट्य इस बात में निहित है कि इनमें प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन किया गया है।

'बांधो न नाव इस ठांव बन्धु', 'गवना न करा' जैसे गीतों में लोक-गीत एवं लोक-धुनों का सहज माधुर्य परिलक्षित होता है।

'खेलूंगी कभी न होली', 'पात-पात की गात संवारी', 'प्रिय के हाथ लगाए जागी', 'घन आए घनश्याम न आए', 'हरिण नयन हरि ने छीने हैं' जैसे स्वस्थ शृंगारिक गीतों में वैष्णव भक्ति-धारा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इसी तरह 'मानव का मन शान्त करो हे', 'शिविर की शर्वरी', 'निविड विपिन पथ कराल', 'घन तम से आवृत धरणी है', 'कठिन ग्रह संसार' जैसे गीतों में युग-जीवन का चित्रण मिलता है।

इस संग्रह के अधिकांश गीत खड़ी-बोली में लिखे गए हैं। साथ ही कुछ नए शब्दों की रचना भी कवि ने की है। कवि निराला का अंग्रेजी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था – इसका संकेत उन्होंने संग्रह की भूमिका में दिया है। कुछ गीतों की रचना में इसका प्रभाव देखा जा सकता है।

आराधना

जीवन में सत्य, सुन्दर और शिव के आराधक निराला का 'आराधना' काव्य-संग्रह १९५३ ई० में साहित्यकार-संसद, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। कृति के आरम्भ में संसद की मन्त्री महादेवी जी ने 'दो शब्द' में लिखा है – "अविश्वास के इस अन्धकार युग में 'आराधना' के स्वर दीपक-राग की भाँति संगीत और आलोक की समन्वित सृष्टि करने में समर्थ होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।"[१८]

वास्तव में इस संग्रह के गीत अविश्वास, घृणा, आडम्बर के उस युग में भक्ति और आस्था का प्रकाश लेकर अवतरित हुए। इस संग्रह में १९४९ से १९५२ तक के कुल ९६ गीतों को संकलित किया गया है। प्रत्येक गीत के नीचे दी गयी तिथि से उसके निर्माण-काल का पता चलता है। इस विशाल गीत-संग्रह में यों तो शृंगार, प्रकृति-चित्रण, करुणापरक, आत्म-विषाद एवं निराशा तथा मानवता के उत्थान की शुद्ध भावना रखने वाले प्राय: सभी प्रकार के गीतों को समाहित किया गया है किन्तु कृति के गीतों की मूल भावधारा भक्ति-रस से ओत-प्रोत तथा अध्यात्मपरक है। सम्भवत: जीवन भर संघर्षों से जूझने एवं विद्रोह तथा क्रांति के गीत गाने के बाद जीवन के सांध्य-काल में निराला भी भक्ति की ओर उन्मुख हुए थे। किन्तु यह भक्ति कवि की पराजय या निराशा की द्योतक नहीं है, बल्कि धर्म के प्रति भारतीय जन-मानस की सनातन आस्था को प्रकट करती है। 'कृष्ण कृष्ण राम राम काम रूप', 'हरो काम', 'द्वार पर तुम्हारे', 'राम के हुए तो बने काम', 'विपदा हरण हार', 'मेरी सेवा ग्रहण करो हे', 'अशरण-शरण राम' जैसे गीतों में भक्त के हृदय की शुद्ध निश्छलता ही प्रकट हुई है।

इसी प्रकार 'हरि-भजन करो', 'जपूँ नाम राम-राम', 'रहते दिन दीन-शरण भज ले' जैसे गीतों में भजन-कीर्तन तथा नाम-जप की महत्ता प्रदर्शित की गयी है।

'मरा हूँ हजार मरण', 'हार गया', 'दुखता रहता है अब जीवन', 'सूने हैं साज आज', 'सीधी राह मुझे चलने दो', 'भग्न तन', 'रुग्ण मन', 'क्षीण भी छाँह तुमने छीनी' जैसे गीतों में कवि की व्यक्तिगत वेदना एवं अवसाद की अभिव्यक्ति तो हुई ही है साथ ही युग जीवन के दैन्य एवं निराशा का भी चित्रण अप्रत्यक्ष रूप में मिलता है। कवि निराला का संवेद्य हृदय व्यक्तिगत विडम्बनाओं से घिरे रहने पर भी सार्वजनिक जीवन की दुर्दशा को देखकर पीड़ित था। 'ऊँट बैल का साथ हुआ है', 'मानव जहाँ बैल-घोड़ा है' – गीतों में भौतिक सभ्यता के उत्थान के साथ-

साथ मानव-मूल्यों का पतन होते देखकर कवि का मन अत्यन्त पीड़ित था। यही पीड़ा इन गीतों में मर्मस्पर्शी ढंग से व्यंजित हुई है।

'आराधना' के कुछ गीतों में प्रकृति का स्वतन्त्र एवं मनोहारी चित्रण हुआ है। 'धाये धाराधर धावन हैं', 'जावक-जय चरणों पर छाई' तथा 'वन-उपवन खिल आई कलियां' गीतों में प्रकृति के वस्तुवादी एवं यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए गए हैं।

इसी तरह 'खेत जोत कर घर आये हैं', 'महकी साड़ी', 'धान कूटता है', 'आंख-अधर रंग भर गए हैं' जैसे गीतों में ग्राम्य जीवन की सादगी एवं नैसर्गिकता के स्वाभाविक चित्रण दर्शनीय हैं।

इस संग्रह का अन्तिम गीत 'यह गाढ़ तन' — शृंगारिक गीत है जिसमें विभिन्न ऋतुओं में विरहिणी नायिका की मनोदशा का प्रभावोत्पादक वर्णन है। यह गीत प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों द्वारा बारहमासा के वर्णन-परम्परा की याद दिलाता है।

'आराधना' संग्रह में सहज, सरल एवं प्रवाहमयी भाषा में कवि के हृदय की निश्छलता का प्रकाशन यह प्रमाणित करता है कि जीवन में सत्य और सुन्दर के साधक निराला यहाँ आकर शिवत्व की साधना में लीन हो गए थे।

गीत-गुंज

सन् १९५३-५४ में निराला द्वारा रचित गीतों का संग्रह 'गीत-गुंज' नाम से हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस से प्रकाशित हुआ। कुल २६ गीतों के इस संग्रह के आरम्भ में विभिन्न प्रकाशनों द्वारा प्रकाशित निराला साहित्य का सम्पूर्ण विवरण दिया हुआ है। साथ ही संग्रह के गीतों के सम्बन्ध में २२ पृष्ठों का परिचयात्मक निबन्ध सुधाकर पांडेय का है।

इस संग्रह की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें महाकवि निराला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विशेषताओं को व्यंजित करने वाली तीन कविताएं क्रमशः डा० रामविलास शर्मा, श्री जानकी-वल्लभ शास्त्री एवं श्री शिव गोपाल मिश्र द्वारा लिखित हैं।

महाकवि द्वारा इस संग्रह के अधिकांश गीतों की रचना रोग-शय्या पर की गई है। इस सम्बन्ध में कृति के प्रस्तुतकर्त्ताओं की ये मार्मिक पंक्तियाँ 'गीत-गाथा' में ध्यान देने योग्य हैं — "नयी हिन्दी के इस युग में मानव-मणि महाकवि-निराला हैं। एक उद्दाम मनस्वी निकले जिन्होंने भीष्म पितामह की भाँति शर-शय्या ही नहीं, प्रत्युत उससे भी अधिक उत्पीड़न शील एकांग अस्थिगत सन्धि नामक व्याधि से सतत रोग शय्या पर रहकर भी हिन्दी जगत के प्रफुल्लार्थ हमारी प्रार्थनाओं को न ठुकरा कर, इस 'गीत-गुंज का' समारम्भ किया।"[३५]

भूमिका की ये पंक्तियां स्पष्ट करती हैं कि कवि-कर्म को समर्पित निराला पीड़ा के दारुण क्षणों में भी लेखन से विरत नहीं हुए थे।

इस संग्रह के अधिकांश गीतों में विभिन्न ऋतुओं में नये-नये रूपों में अवतरित होती प्रकृति का जीवन्त चित्रण किया गया है। आमों के लदे बाग, धानों के खेत, हरी ज्वार की थरियां,

कमल-ताल, मलार-कजली की धुन छेड़ती बहती पुरवाई आदि के मनोहारी चित्र यहाँ देखे जा सकते हैं।

कुछ गीतों में रहस्यात्मकता के भी दर्शन होते हैं। इनमें प्रकृति के मोहक सौन्दर्य में कवि को उसी विराट शिल्पी के रंग बिखरे नजर आते हैं।

प्रकृति के विभिन्न उपादानों में बादल ने निराला को विशेष रूप से प्रभावित किया था। 'बादल राग' के गीत उसके साक्षी हैं। इस संग्रह में भी 'आओ आओ वारिद वन्दन' कहकर कवि कहीं बादल को सहज आमंत्रण देता है तो कहीं 'बादल रे, जी तड़पे' कहकर वर्षा की बूंदों के वियोगावस्था में दाहक प्रभाव को भी अभिव्यंजित करता है।

आज के मानव की स्वार्थी प्रवृत्ति को दर्शाने वाली 'मानव जहाँ बैल-घोड़ा है' कविता इस संग्रह की प्रसिद्ध कविता है।

कुछ कविताओं में कवि के व्यक्तिगत विषाद की छाया भी नजर आती है।

सहज-सरल भाषा में निश्छल अभिव्यक्ति, लोक-गीतों की परम्परा का निर्वाह तथा लोक-धुनों पर आश्रित गीतों में भारतीय संस्कृति की आत्मा के दर्शन किए जा सकते हैं। ग्राम्य-जीवन एवं परिवेश में रचे-बसे ये गीत नैसर्गिकता से संपन्न हैं।

सांध्य-काकली

'सांध्य-काकली' संग्रह का प्रकाशन निराला की मृत्यु के उपरान्त १९६९ में वसुमती प्रकाशन द्वारा हुआ। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में रोगग्रस्त हो निराला शय्याशायी हो गए थे, किन्तु इस अवस्था में भी उनका लेखन-कार्य अवरुद्ध नहीं हुआ था। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ इन्हीं दिनों लिखी गयी थीं। संग्रह की भूमिका में सम्पादक श्री नारायण चतुर्वेदी लिखते हैं– "निराला जी की ये अन्तिम कविताएँ अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उनके विचारों, आस्थाओं ही के सम्बन्ध में नहीं, उनके मानसिक असन्तुलन की उग्रता के सम्बन्ध में भी लोगों में बड़ा मतभेद है। समर्थ और अधिकारी विद्वानों एवं आलोचकों को उनकी इन अंतिम कविताओं से इन विवादग्रस्त विषयों पर विचार करने में सहायता मिलेगी।"[१०]

कृति के आरम्भ में लगभग १० पृष्ठों की भूमिका में सम्पादक ने कवि के साथ अपने सम्बन्धों को प्रकट करते हुए इस संग्रह की कविताओं का विवेचन किया है। इस संग्रह की आरम्भिक कुछ कविताएँ अन्य संग्रहों में भी संकलित हैं। इस संग्रह में कुल ६५ कविताएँ हैं। इन्हें प्रकृति-चित्रण, शृंगारिक, आत्मपरक एवं राष्ट्रीय उद्‌बोधन परक शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी आरम्भिक कुछ कविताएँ 'गीत-गुंज' संग्रह से ली गयी हैं जिन पर पहले विचार किया जा चुका है। 'फिर नभ घन घहराये', 'शुभ्र शरत् आई अम्बर पर', 'गहरी विभावरी शीत की' जैसे गीतों में वर्षा, शरद एवं शीत ऋतु का मनोहारी चित्रण हुआ है। इनमें सम्पूर्ण प्राकृतिक परिवेश पूरी जीवन्तता के साथ उपस्थित हुआ है।

जीवन भर जागरण एवं उद्‌बोधन के गीत गाने वाले कवि निराला की कुछ कविताओं में मृत्यु-मधुर का आह्वान किया गया है। 'मधुर मधुर मृत्यु मधुर', 'जय तुम्हारी देख भी ली', 'डमड डम डडम डम' तथा 'पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है' जैसे गीतों में कवि को 'मृत्यु नीली रेखा' के रूप में दीख पड़ती है, किन्तु यहाँ भी जन्मान्तर के पार फिर नया जीवन पाने की चाह ही प्रबल दीख पड़ती है।

'प्यार की भाती यह पाती', 'यह जी न भरा तुमसे मेरा', 'जीवन में जब पाई', 'घट बाँहों के उलटे', 'ये बालों में बादल छाये' जैसे गीत प्रेम की गहन अनुभूति से भरे हैं।

इसी तरह 'शंकर शुभंकर', 'तुम्हारे आसरे', 'तुम्हारी छाँह', 'बाँध दो बाँध', 'तुम आओ सुहाओ', 'सरल न हुए न छुए वे चरण', 'तुम्हारे भाव में सोये' जैसे गीतों में अध्यात्म भाव भरा है तथा भक्ति रस की सरिता प्रवाहित होती दिखाई देती है।

इस संग्रह की कुछ कविताओं में ध्वनि-साम्य के आधार पर चमत्कार उत्पन्न किया गया है। 'ताक कमसिन वारि', 'वारि वन वनवारि', 'मेटिने वारी वार दे' जैसे गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इनमें ध्वनि-साम्य के आधार पर संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है। कुछ आलोचक इन्हें निराला के विक्षिप्त मस्तिष्क की बड़बड़ाहट कहकर अर्थहीन बताते हैं किन्तु अमूर्त ध्वनि चित्र उपस्थित करने में ये गीत सक्षम हैं।

संग्रह की अन्तिम कविता 'हाथ वीणा समासीना' सम्भवतः कवि निराला के जीवन-काल में लिखित अन्तिम कविता है जो उन्होंने वाग्देवी के सम्मान में लिखी है।

'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है' इस संग्रह की अत्यन्त महत्वपूर्ण कविता है क्योंकि इसमें महाकवि निराला द्वारा अपने जीवन का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है। शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह की भाँति मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए महाकवि निराला द्वारा अपने जीवन की विभिन्न ऋतुओं का वर्णन अत्यन्त मार्मिक है, किन्तु कविता में एक आदर्शवादी दृष्टिकोण है। मृत्यु के बाद भी कवि को एक नये प्रभात का विश्वास था। इस दृष्टि से यह कविता अपना ऐतिहासिक महत्व रखती है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि कवि निराला के काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ इस संग्रह की कविताओं में देखी जा सकती हैं। जीवन के सांध्य-काल में रचित इस संग्रह में विविध सुरों की काकली निनादित होती है।

इस प्रकार निराला की समग्र काव्य-कृतियों का सर्वेक्षण उनके विराट कवि-व्यक्तित्व का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उनकी समग्र कविताओं के सूक्ष्म अवलोकन से कवि के अन्दर स्थित कथाकार की भी झलक पायी जाती है। 'राम की शक्ति-पूजा', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'सेवा-प्रारम्भ', 'सरोज-स्मृति' आदि लम्बी कविताएँ इसका प्रमाण हैं। हिन्दी की चुनी हुई लम्बी कथात्मक कविताओं में 'राम की शक्तिपूजा', 'सरोज-स्मृति' का तो समस्त हिन्दी साहित्य में शीर्ष स्थान है। १९१६ से लेकर १९६१ तक की इस लम्बी काव्य-यात्रा में निराला की ये

आख्यानपरक कविताएँ उनके कथाकार रूप का विवेचन करने में निश्चय ही सहयोगी भूमिकाओं का निर्वाह करेंगी।

निराला के इन समस्त काव्य-संग्रहों का सर्वेक्षण इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि निराला ने अपने समय के सभी काव्य-आन्दोलनों में महत्वपूर्ण कवि के रूप में अपनी पहचान दर्ज करायी थी। उनकी कविताओं में छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद से लेकर नयी कविता के भी गुण-धर्म विद्यमान हैं। उनकी अध्यात्मपरक रचनाएँ तथा राष्ट्रीयता से आपूरित अनेक कविताएँ कवि की बहुमुखी प्रतिभा को प्रमाणित करती हैं।

निराला की कविताओं के सर्वेक्षण से यह खास बात उभर कर आती है कि कवि में दलित, पीड़ित एवं वंचित वर्ग के प्रति सहानुभूति की भावना थी। शोषण, गरीबी, अन्याय तथा अत्याचार के खिलाफ आवाज बुलन्द करने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। आडम्बर और ढोंग के खिलाफ तथा चाटुकार-वृत्ति के विरुद्ध उन्होंने अपनी कविताओं में क्षोभ व्यक्त किया है। इस प्रकार की रचनाओं में 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'विधवा', 'कुकुरमुत्ता', 'राजे ने अपनी रखवाली की' तथा 'नये पत्ते' संग्रह की अनेक कविताएँ परिगणित की जा सकती हैं। इन कविताओं में सामाजिक विषमता और अव्यवस्था के विरुद्ध समाज की कुंठा और आक्रोश को व्यक्त करने के लिए कवि ने सहज भाषा में ही कहीं व्यंग्य के द्वारा तो कहीं क्षुब्ध वाणी में कठोर प्रहार किए हैं।

कवि निराला को सामाजिक वैषम्य पर प्रहार करने का उन्मुक्त अवसर मिला है अपने कथा साहित्य में। कहानी और उपन्यासों में निराला का भावुक कवि-हृदय अपनी निराली भंगिमा एवं तीखे तेवर के साथ उपस्थित हुआ है। अगले अध्याय में कथा-साहित्य के सर्वेक्षण के दौरान इसे प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

निराला के निबन्ध : एक सर्वेक्षण

१९३४ से १९६४ के बीच निराला के पाँच निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुए। कवि निराला ने अपनी अनुभूति एवं चिन्तन को प्रस्तुत करने के लिए निबन्ध जैसी महत्वपूर्ण विधा को भी अपनाया था। उनके सभी निबन्ध संग्रह साहित्यकार निराला के प्रौढ़ चिन्तन का परिदर्शन कराते हैं। ये संग्रह एक तरफ उनकी सामाजिक जागरूकता का परिचय देते हैं तो दूसरी ओर उनकी वैचारिक प्रबुद्धता का भी प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। कालक्रमानुसार निबंध-संग्रहों का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रबन्ध-पद्म

'प्रबन्ध-पद्म' निराला का प्रथम निबन्ध संग्रह है जो सन् १९३४ में गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। यह संग्रह "आचार्य श्रीमत् स्वामी सारदानन्द जी महाराज"[१९] को समर्पित किया गया था। संग्रह के निवेदन में लेखक ने उन महान विभूतियों तथा साहित्यिक मित्रों

के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है जिन्होंने साहित्य एवं दर्शन पर उन्हें लेख-आलोचनाएँ आदि लिखते रहने के लिए प्रोत्साहित किया।

इस संग्रह में कुल दस निबन्ध हैं। विषय की दृष्टि से इन्हें निम्न श्रेणियों में रखा जा सकता है।

१) दार्शनिक निबन्ध – 'शून्य और शक्ति'।
२) सामाजिक – 'राष्ट्र और नारी' तथा 'रूप और नारी'।
३) साहित्य की आलोचना सम्बन्धी निबन्धों में 'हमारे साहित्य का ध्येय', 'काव्य में रूप और अरूप', 'साहित्य का फूल अपने ही वृंत पर'।
४) तुलनात्मक निबन्ध की श्रेणी में 'मुसलमान और हिन्दू-कवियों में विचार-साम्य'।
५) भाषा-विषयक निबन्ध – 'साहित्य और भाषा' तथा 'एक बात'।
६) समीक्षात्मक निबन्ध – 'पंतजी और पल्लव'।

इनमें से 'पन्त जी और पल्लव' शीर्षक निबन्ध बाद में स्वतंत्र रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ, जिस पर अलग से विचार करना समीचीन होगा। ये सभी निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हो चुके थे – इसका उल्लेख लेखक ने संग्रह के निवेदन में किया है।

इस संग्रह का प्रथम निबन्ध 'शून्य और शक्ति' दार्शनिक कोटि का है। इसमें लेखक ने गणित, रेखागणित, बीजगणित, विज्ञान आदि सभी के केन्द्र में शून्य को ही माना है तथा संसार की व्यक्त अव्यक्त सभी भावनाओं का पर्यवसान शून्य में ही स्वीकार किया है। उन्होंने शक्ति और शून्य में अभेद स्थापित करते हुए युग-धर्म से युक्त साहित्य-सृजन की आवश्यकता पर बल दिया है।

'राष्ट्र और नारी' तथा 'रूप और नारी' शीर्षक सामाजिक निबन्धों में उन्होंने आधुनिक भारतीय नारी द्वारा पश्चिमी नारियों के अन्धानुकरण पर चिन्ता प्रकट करते हुए उन्हें अपनी आत्मा की शक्ति तथा सौन्दर्य से परिचित कराना चाहा है। इसके लिए उन्होंने आत्मा के अलंकरण तथा आत्मिक भूषणों की आवश्यकता पर बल दिया है। लेखक मानते हैं कि समस्त सृष्टि में ही उस अरूप की स्वतंत्र सत्ता निहित है तथा साहित्य में इसे ही 'नारियों में स्थिर' कर दिया गया है।

निराला के साहित्यिक निबन्धों में साहित्य के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। 'हमारे साहित्य का ध्येय' में राजनीति और साहित्य के महत्व को रेखांकित किया गया है। निराला का विचार है कि राजनीतिक स्वतंत्रता बहुत कुछ जड़ स्वतन्त्रता है किन्तु साहित्य हृदय परिवर्तन द्वारा मानसिक स्वतंत्रता प्रदान करता है। 'काव्य में रूप और अरूप' निबन्ध में विश्व की समस्त कलाओं में भाव-साम्य की चर्चा करते हुए लेखक ने "साहित्य के हृदय को दिगन्त-व्याप्त करने के लिए विराट रूपों की प्रतिष्ठा"[११] को आवश्यक माना है। इसी तरह 'साहित्य का फूल अपने ही वृन्त पर' निबन्ध में कला की परिवर्तनशीलता पर विचार करते हुए साहित्य में परिवर्तन को आवश्यक माना है। इसी संदर्भ में उन्होंने ब्रज भाषा को पूर्ण भाषा स्वीकार करते हुए भी खड़ी-बोली के महत्व को प्रतिष्ठित किया है।

'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य' तुलनात्मक निबन्ध है। इसमें दोनों सम्प्रदायों के आपसी वैमनस्य का चित्रण करते हुए लेखक ने बताया है कि "दोनों जातियाँ ऊँची भूमि पर एक ही बात कहती हैं।"[1] इसी तरह ईश्वर की सत्ता, मृत्यु की नश्वरता, वैराग्य-भावना, प्रेम की सर्वव्यापकता सम्बन्धी भाव दोनों ही धर्मों के साहित्य में लगभग एक ही प्रकार से व्यक्त किए गए हैं। निराला का स्पष्ट मत है कि "दबने दबाने वाले अपर भावों को त्याग कर आपस में मैत्री स्थापित करके"[2] ही दोनों जातियाँ उत्कर्ष कर सकती हैं।

इस संग्रह के 'साहित्य और भाषा' तथा 'एक बात' शीर्षक निबन्धों की रचना साहित्य के भाषा-पक्ष को लेकर की गयी है। 'साहित्य और भाषा' निबन्ध में हिन्दी को सरल बनाने की चीत्कार करने वाले लोगों के अज्ञान पर लेखक ने आश्चर्य प्रकट किया है तथा भाषा को भावानुसारिणी बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। 'एक बात' निबन्ध में भारतीयता के विकास के लिए हिन्दी भाषा को आवश्यक मानते हुए भी हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए अन्य भाषाओं के महत्व को भी लेखक ने स्वीकार किया है।

प्रबन्ध-प्रतिमा

'प्रबन्ध-प्रतिमा' निराला का दूसरा निबन्ध संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् १९४० में भारती-भंडार, इलाहाबाद से हुआ। कुल २२ निबन्धों का यह संग्रह निराला के साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों को प्रकट करता है।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इन निबन्धों को इस प्रकार अलग-अलग श्रेणियों में रखा जा सकता है –

१) सामाजिक निबन्ध के अन्तर्गत 'चरखा', 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ', 'सामाजिक पराधीनता', 'वर्तमान हिन्दू समाज', 'अधिकार-समस्या' एवं 'हमारा समाज' – इन निबन्धों को रखा जा सकता है।

२) साहित्यिक निबन्ध – 'नाटक समस्या', 'हिन्दी साहित्य में उपन्यास' एवं 'मेरे गीत और कला' शीर्षक निबन्ध इसी श्रेणी के हैं।

३) आलोचनात्मक – 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म', 'कला के विरह में जोशी-बन्धु', 'साहित्य की नवीन प्रगति पर' शीर्षक निबन्ध आलोचनापरक हैं।

४) भाषा-सम्बन्धी – 'रचना-सौष्ठव' एवं 'भाषा-विज्ञान' निबन्ध इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

५) तुलनात्मक – 'विद्यापति और चंडिदास' निबन्ध में दोनों कवियों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

६) 'कविवर श्री चंडिदास' जीवनीपरक निबन्ध है।

७) 'कवि गोबिन्ददास की कुछ कविता' एवं 'बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार-वर्णना' समीक्षात्मक निबन्ध हैं।

८) 'महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर' को व्यक्तिपरक निबन्ध की श्रेणी में रखा जा सकता है।

९) 'गांधी जी से बातचीत', 'नेहरू जी से दो बातें' एवं 'प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन, फैजाबाद' निबन्ध वस्तुतः आत्मसंस्मरण हैं। अतः इन्हें संस्मरणात्मक निबन्ध माना जा सकता है।

सामाजिक निबन्धों में निराला ने तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को प्रकट किया है। 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' में उन्होंने स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता पर जोर दिया है क्योंकि अशिक्षित स्त्रियाँ ही पाशविक अत्याचारों की शिकार होती हैं। 'सामाजिक पराधीनता', 'वर्तमान हिन्दू समाज', 'हमारा समाज' तथा 'अधिकार समस्या' निबन्धों में उन्होंने जाति-प्रथा की समस्या को उठाया है। निराला की मान्यता है कि मनुष्य को योग्यता के मापदण्ड से आंका जाना चाहिए। उन्होंने देश की उन्नति के लिये चारों वर्णों की एकता को आवश्यक बताया। जाति-प्रथा की रूढ़िवादिता को कम करने के लिये शिक्षा प्रसार पर उन्होंने बल दिया।

साहित्यिक निबन्धों के अन्तर्गत विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर विचार करते हुए निराला ने नवीन स्थापनाएं की हैं। 'नाटक समस्या' निबन्ध में उन्होंने नाटक को पूर्ण साहित्य माना है। उनके अनुसार "काव्य, संगीत, कला-कौशल दर्शन, साहित्य, विज्ञान, समाज, राजनीति, धर्म आदि"[१०] सभ्यता के विविध विषय नाटक के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं। उन्होंने वर्तमान नाटक की अवस्था पर विचार करते हुए विभिन्न प्रकार के नाटकों की भाषा कैसी होनी चाहिए – इस पर भी अपना मत दिया। 'हिन्दी साहित्य में उपन्यास' में उन्होंने प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यासों की चर्चा करते हुए प्रेमचन्द को सफल उपन्यासकार माना एवं उपन्यास में विराट चित्रों के समावेश पर बल दिया। 'मेरे गीत और कला' शीर्षक निबन्ध में निराला ने कला-सम्बन्धी अपने विचारों को प्रकट किया है। ये कला की सिद्धि चित्रों के खण्ड-खण्ड प्रदर्शन में न मानकर उसकी सम्पूर्णता में मानते हैं। उन्होंने कविता में वर्णों के आडम्बर को व्यर्थ बताते हुए भाव-सौन्दर्य की सरलता पर बल दिया। इसी क्रम में उन्होंने अपनी 'जुही की कली' कविता के पूर्ण सौन्दर्य का चित्रण करते हुए पन्त जी की कविताओं की भी आलोचना प्रस्तुत की है।

आलोचनात्मक निबन्धों में निराला ने अत्यन्त ओजपरक शैली में अपने ऊपर लगाए गए आक्षेपों का उत्तर दिया है। 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म' निबन्ध में 'विशाल भारत' के संपादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लगाए गए आक्षेपों का उत्तर देते हुए 'वर्तमान धर्म' निबन्ध को भी प्रस्तुत किया गया है। 'कला के विरह में जोशी बन्धु' अत्यन्त चर्चित निबन्ध है। इसमें लेखक ने जोशी बन्धुओं (इलाचन्द्र जोशी एवं हेमचन्द्र जोशी) के 'माडर्न रिव्यू' में छपे कला सम्बन्धी विचारों का खण्डन किया है। इसी तरह 'साहित्य की नवीन प्रगति पर' निबन्ध में निराला ने आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवि विलियम ब्लेक की कविताओं की कटु आलोचना का कड़ा जवाब दिया है।

'रचना सौष्ठव' निबन्ध में साहित्य की रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए वर्णन में

कुशलता प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक अध्ययन एवं मौलिक चिन्तन को निराला ने आवश्यक माना। कालजयी एवं सार्वभौमिक कृति की रचना के लिए साहित्यकार को धर्म, संप्रदाय, जाति और रूढ़ियों के बन्धन से ऊपर उठकर स्थितप्रज्ञ होना चाहिए ऐसा निराला का मत था। 'भाषा-विज्ञान' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने रचना को युद्ध-कौशल एवं भाषा को तदनुरूप अस्त्र स्वीकार करते हुए प्रवहमान एवं प्रकाशनशील भाषा की आवश्यकता पर जोर दिया।

'कविवर श्री चंडिदास' निबन्ध में उनके जीवन का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया तो 'विद्यापति और चंडिदास' में दोनों कवियों के कृतित्व की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए विद्वत्ता की दृष्टि से कविशेखर विद्यापति की रचना को अधिक प्रौढ़ और प्रांजल ठहराया।

इस संग्रह के निबन्धों को देखते हुए कहा जा सकता है कि निराला के साहित्य की गति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में थी। इन निबन्धों में उनका गहन अध्ययन मौलिक चिन्तन, विविध भाषा ज्ञान तो परिलक्षित होता ही है साथ ही उनके प्रखर व्यक्तित्व की छाप भी देखी जा सकती है।

चाबुक

निराला के निबंधों का तीसरा संग्रह सन् १९६२ में 'चाबुक' नाम से प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह के अधिकांश लेख सन् १९२३-२४ में लिखे गए हैं। निराला ने पुस्तक के निवेदन में लिखा है – '' 'चाबुक' शीर्षक से मैं एक दूसरे नाम से 'मतवाला' में व्याकरण पर आलोचनायें लिखा करता था। आलोचनायें यथार्थ लिए हुए जितनी भी हों, कटुता लिए हुए अवश्य थीं। आज जिन लेखकों और सम्पादकों पर मेरी श्रद्धा है, उन्हें, उस समय, मैंने अपनी यह श्रद्धा नहीं दी। मैं करबद्ध होकर कटुता से समालोचित पूज्य साहित्यिकों से क्षमा चाहता हूँ। उस कटुता को ज्यों-का-त्यों इसीलिए जाने दे रहा हूँ कि देखूं अगर कुछ सत्य भी है तो वह कितनी कटुता हजम कर सकता है। मुझे विश्वास है पढ़ने पर पाठकों का श्रम जिस तरह सूक्ष्मता-दर्शन से सार्थक होगा उसी तरह मेरे तत्कालीन मनोभाव और अज्ञता के परिचय से प्रफुल्ल।''[१९]

लेखक ने सहज रूप से अपनी कमजोरियों को स्वीकार करते हुए जो भाव व्यक्त किए हैं वे वास्तव में प्रशंसनीय हैं। निबंधों में लेखक का जो कटु स्वर यत्र-तत्र परिलक्षित होता है उसे तत्कालीन स्थिति में संघर्षशील निराला के परिप्रेक्ष्य में युक्तिसंगत माना जा सकता है परन्तु कृति के निबंधों में लेखक की अज्ञता का आभास कहीं नहीं मिलता।

संग्रह में जो ९ निबन्ध संकलित हैं वे हैं – 'भौम कवि', 'कविवर बिहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र', 'श्री नन्द दुलारे वाजपेयी', 'काव्य साहित्य', 'कला और देवियां', 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति', 'बहता हुआ फूल', 'चरित्रहीन' और 'चाबुक'।

आरम्भिक चार निबन्ध साहित्य से संबंधित हैं जिनमें समीक्षक 'आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी' तथा 'बिहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र' शीर्षक निबन्ध विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'कला और देवियाँ' शीर्षक निबन्ध निराला के अध्यात्म ज्ञान और कला प्रेम का परिचायक है तो 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' शीर्षक लेख सामाजिक है।

'बहता हुआ फूल' और 'चरित्रहीन' निबंधों में बंगला से किए गए हिन्दी अनुवादों की शिथिलता पर लेखक ने महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं।

इन सभी निबंधों में निराला की संपादकीय कुशलता और आलोचकीय दृष्टि का पता चलता है। कृति के नाम के अनुरूप निबंधों में चाबुक की फटकार भी यत्र-तत्र सुनाई पड़ती है। तीक्ष्ण तेवर वाले ये विविध निबंध निराला के निरालापन को भी उजागर करते हैं। कुछ निबंधों में सहज तथा कुछ में संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है। शैली की दृष्टि से निबंधों में विषय के अनुसार वैविध्य है।

चयन

'चयन' निराला का चौथा निबन्ध संग्रह है जो सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ। यह सन् १९२० से सन् १९५६ तक के मध्य लिखे गए उन तमाम लेखों एवं समालोचनाओं का संग्रह है जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इस संग्रह में कुल २२ निबन्ध हैं।

१. भाषा एवं साहित्य की व्याख्या करने वाले निबन्धों में 'भाषा की गति और हिन्दी की शैली', 'खड़ी बोली के कवि और कविता', 'काव्य-साहित्य', 'हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' एवं 'साहित्य की समतल भूमि' है।

२. परिचयात्मक एवं संस्मरणपरक – 'छतपुर में तीन सप्ताह', 'मनसुखा को उत्तर', 'पं० बनारसीदास का अंग्रेजी ज्ञान', 'श्री भुवनेश्वर की तारीफ', 'कवि अंचल', 'तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि' तथा 'महादेवी के जन्म दिवस पर' 'हिन्दी के आदि प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'।

३. 'महाकवि रवीन्द्र की कविता', 'ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास' में इन साहित्यकारों के कृतित्व की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

४. 'अर्थ-अर्थान्तर', समीक्षात्मक, 'शक्ति परिचय' दार्शनिक, 'बंग भाषा का उच्चारण' भाषा-विज्ञान संबंधी निबन्ध हैं।

५. 'कामायनी महाकाव्य परीक्षा', 'बोलचाल', 'श्री रामकृष्ण आश्रम धंतौली की पुस्तकें' एवं 'प्राच्य और पाश्चात्य' वस्तुतः निबन्ध न होकर पुस्तक समीक्षा हैं।

भाषा एवं साहित्य की व्याख्या करने वाले निबन्ध लेखक के गहन चिन्तन मनन को प्रकट करते हैं। 'भाषा की गति और हिन्दी की शैली' में भाषा की गतिशीलता के कारणों का उल्लेख करते हुए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन किए जाने की उपयुक्तता पर लेखक ने प्रकाश डाला है। इसी प्रकार 'खड़ी बोली के कवि और कविता' निबन्ध में मृत-प्राय ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली के उद्भव और विकास पर हर्ष प्रकट करते हुए खड़ी बोली के कुछ प्रमुख कवियों के काव्यों के गुण-दोषों की परीक्षा की गयी है। 'काव्य-साहित्य' निबन्ध भी इसी विषय पर लिखा गया है और 'चाबुक' संग्रह में भी संग्रहीत किया गया है किन्तु प्रकाशकों द्वारा उसमें कुछ परिवर्तन कर दिए जाने के कारण उसके मूल रूप में उसे पुनः 'चयन' में संकलित किया

गया। 'हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' एवं 'साहित्य की समतल भूमि' में लेखक ने हिन्दी-साहित्य में भारतीयता को बनाए रखने की बात कही तथापि निराला मानते थे कि दूसरी भाषाओं के रत्नों को अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

परिचयात्मक एवं संस्मरणपरक निबन्ध निराला जी के जीवन के मधुर तिक्त अनुभवों को सँजोने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनमें जहाँ एक ओर लेखक ने नवयुवक कवियों की प्रशंसा की है वहीं दूसरी ओर तत्कालीन कुछ राजनीतिज्ञों एवं साहित्यिकों के साथ अपनी मुठभेड़ों का चित्रण किया है। ऐसे लेखों में कटुता के बीज मिलते हैं जो निराला के प्रखर, स्वाभिमानी एवं ओजस्वी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं।

'महाकवि रवीन्द्र की कविता' एवं 'बंग भाषा का उच्चारण' निबन्धों में लेखक ने बंगभाषा के प्रति एवं उसके महानतम कवि के प्रति अपनी निष्ठा एवं आदर भाव प्रदर्शित किया है।

'अर्थ अर्थान्तर' निबन्ध निराला के पाण्डित्य का परिचायक है क्योंकि इसमें दुलारे दोहावली के एक श्लोक के छह अर्थ प्रस्तुत किए गए हैं।

निराला जी समय-समय पर पुस्तकीय समीक्षाएँ भी लिखा करते थे इसका प्रमाण इस संग्रह में संकलित कुछ समीक्षाएँ हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इस संग्रह के निबन्ध निराला के विविधमुखी व्यक्तित्व के परिचायक होने के साथ-साथ भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में उनकी अबाध गति को भी प्रदर्शित करने वाले हैं।

संग्रह

'संग्रह' महाप्राण निराला का पाँचवाँ निबन्ध-संकलन है। इसका प्रकाशन निराला जी की मृत्यु के उपरान्त उनके आत्मज श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने सन् १९६३ में कराया। इसमें सन् १९२२ से लेकर सन् १९३४ तक के समय के मध्य लिखे गये १३ निबन्धों का संगृहीत किया गया है। ये समस्त निबन्ध समय-समय पर 'समन्वय', 'मतवाला', 'सुधा' तथा 'माधुरी' में प्रकाशित हो चुके हैं – इसका ज्ञान निबन्धों के नीचे दिए गए पत्र के नाम तथा प्रकाशन वर्ष से होता है।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इन निबन्धों को दार्शनिक, धार्मिक, जीवनीपरक, तुलनात्मक, आलोचनात्मक एवं साहित्यकारों के कृतित्व की समीक्षापरक इन श्रेणियों में रखा जा सकता है। इस निबन्ध - संग्रह के १३ निबन्धों में से सात निबन्धों को दार्शनिक एवं धार्मिक कोटि में रखा जा सकता है। ये निबन्ध हैं – (१) बाहर और भीतर (२) प्रवाह (३) तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व (४) विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास (५) युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण (६) भारत में श्री रामकृष्णावतार (७) अर्थ।

जीवनीपरक निबन्धों के अन्तर्गत 'श्री देव रामकृष्ण परमहंस' एवं 'वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द' – इन दो निबन्धों को रखा जा सकता है।

'भक्त जी और प्रकृति निरीक्षण' तथा 'श्री चकोरी जी की कविता' निबन्धों में इन साहित्यकारों के कृतित्व की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

'साहित्यिकों तथा साहित्य प्रेमियों से निवेदन' को आलोचनापरक एवं 'दो महाकवि' को तुलनात्मक निबन्ध माना जा सकता है।

दार्शनिक एवं धार्मिक कोटि के निबन्धों में निराला ने अपने अनुभव एवं प्रयोग के आधार पर जीव जगत एवं ब्रह्म के सम्बन्ध में अपने सुचिन्तित विचार प्रस्तुत किए हैं। 'बाहर और भीतर' निबन्ध में उन्होंने जड़वादी संस्कृति के उत्थान एवं पतन के कारणों का उल्लेख करते हुए व्यक्ति को अन्तर्मुख बनने का उपदेश दिया है क्योंकि इसी से मनुष्य को ब्रह्म और सृष्टि का कुल रहस्य मालूम हो सकता है। इसी तरह 'प्रवाह' निबन्ध में जीवन को प्रवाह की संज्ञा देते हुए प्रत्येक जाति के खंडज्ञान को उस जाति का साहित्य माना है। लेखक का विश्वास है कि ''जातीय साहित्य में जितनी दृढ़ता होगी जातीय जीवन में जीवनी शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी।''[13]

'तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्त्व' निबन्ध में निराला ने 'मानस' के विभिन्न उद्धरणों की सहायता से उसमें अद्वैत भाव को स्वीकारते हुए उसका विशद विवेचन प्रस्तुत किया है तथा भगवत् प्राप्ति के लिए भोग की निस्सारता एवं त्याग के महत्व को स्वीकार करते हुए ज्ञान, भक्ति एवं कर्म मार्ग द्वारा उस अद्वैत को प्राप्त करने की बात कही है। इसी तरह 'विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास' निबन्ध में तुलसी को ''विज्ञान की चरम सीमा में पहुँचा हुआ अखण्ड-वृत्ति महापुरुष'' मानते हुए अपना तर्क इस प्रकार प्रस्तुत किया है– ''गोस्वामी जी ने भगवान श्री रामचन्द्र जी के सिर्फ स्थूल का ही दर्शन नहीं किया था किन्तु उन्होंने उनके महाकारण स्वरूप को देखा था और इस प्रकार दर्शन के उपाय को हम विज्ञान कहते हैं और दर्शक को विज्ञानी।''[14]

'युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण' और 'भारत में श्री रामकृष्णावतार' निबन्धों में पश्चिमी जड़वादी संस्कृति के भारत पर पड़ने वाले कुप्रभावों पर विचार करते हुए ऐसे समय में श्री रामकृष्ण के आविर्भाव को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है क्योंकि वे राष्ट्रीय मैत्री के लिए स्वार्थहीन प्रेम के एकमात्र सूत्रधार थे।[15] निराला ने रामकृष्ण का व्यापक अर्थ लिया क्योंकि श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न धर्मों एवं देवी-देवताओं की उपासना पृथक्-पृथक् रीतियों से करके न केवल उनके दर्शन प्राप्त किए बल्कि उसी स्वरूप में लीन होकर वही हो गए थे। लेखक भारत की मुक्ति धार्मिक एकता में ही मानते थे। निराला ने इस लेख में स्पष्ट कहा कि ''यहाँ राजनीति वही मान्य है जो धर्म से सम्बन्ध रखती हो।''[16]

'अर्थ' निबन्ध में अर्थ को धन, अधिकार एवं मुक्ति इन तीन अर्थों में ग्रहण करते हुए मुक्ति पर विशेष बल दिया गया है क्योंकि इसी के द्वारा ''भारत पराजित, परा या श्रेष्ठ विद्या को जीतने वाला है।''[17]

दार्शनिक-धार्मिक श्रेणी के ये निबन्ध जहाँ एक ओर दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में लेखक की गहरी पैठ का दिग्दर्शन कराते हैं वहीं दूसरी ओर जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान दर्शन-शास्त्र में ही कराते हैं।

'श्रीदेव रामकृष्ण परमहंस' एवं 'वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द' जीवनीपरक निबन्ध हैं। प्रथम में रामकृष्ण परमहंस एवं द्वितीय में स्वामी विवेकानन्द के जीवन के विविध पक्षों का विशद वर्णन किया गया है। इन दोनों महापुरुषों के व्यक्तित्व, उनकी साधना एवं विचारों से निराला अत्यधिक प्रभावित थे तथा इन निबन्धों के माध्यम से लेखक ने उनमें अपनी आस्था एवं विश्वास को ही प्रकट किया है।

'भक्त जी और प्रकृति निरीक्षण' निबन्ध में श्री गुरुभक्त सिंह जी की कवि-प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है तो 'श्री चकोरी जी की कविता' में कवयित्री श्रीमती रामेश्वरी देवी के कृतित्व की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए उन्हें हिन्दी साहित्य की वर्तमान कवयित्रियों में विशिष्ट स्थान का अधिकारी बताया गया है।

'साहित्यिकों तथा साहित्य प्रेमियों से निवेदन' निबन्ध में निराला ने 'विशाल भारत' के सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के उन आरोपों का खण्डन किया है जो उन्होंने 'भारत' में प्रकाशित निराला के 'वर्तमान धर्म' लेख की आलोचना करते हुए अपने 'साहित्यिक सन्निपात' शीर्षक लेख में उन पर लगाए थे। यही नहीं बल्कि अपने विरुद्ध चलाए जा रहे आन्दोलन का भी करारा जवाब दिया है।

'दो महाकवि' निबन्ध में निराला ने गोस्वामी तुलसीदास एवं रवीन्द्रनाथ की परस्पर तुलना करते हुए तुलसीदास को दर्शन तथा काव्य दोनों ही क्षेत्रों में रवीन्द्रनाथ से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। निराला ने इस लेख में दोनों के कृतित्व के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य इस प्रकार दिया है – "केवल काव्य के सौंदर्य पर विचार करने पर तुलसीदास ही बड़े ठहरते हैं – भाषा-साहित्य में रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में कहना पड़ता है कि भ्रम, त्रुटियाँ मिल सकती हैं, पर तुलसीदास के सम्बन्ध में, कोई शायद ही मिले।"[१] लेखक का स्पष्ट निष्कर्ष है कि "छायावाद, रहस्यवाद या अध्यात्मवाद की तुलना में रवीन्द्रनाथ किसी तरह भी तुलसीदास के सामने नहीं ठहरते।"[२]

निष्कर्षतः यह निबन्ध-संग्रह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। निराला के आत्मज श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने पुस्तक के प्राक्कथन में इस संग्रह का महत्व इन पंक्तियों में स्पष्ट किया है – "एक ओर जहाँ निराला जी की अस्त-व्यस्त रचनाओं के संकलन की दिशा में यह एक लघु प्रयास कहा जा सकता है, वहाँ तरुण निराला की भावनाओं से परिचित होने के लिए अनुपम साधन भी।"[३]

इस प्रकार निराला के निबन्ध-संग्रहों का सर्वेक्षण यह सिद्ध करता है कि इस सशक्त विधा के माध्यम से साहित्य, समाज, भाषा, अध्यात्म आदि विषयों पर निराला ने अपने तेजस्वी विचार प्रकट किए थे। एक ओर उनके साहित्यिक निबन्धों में साहित्य की भिन्न-भिन्न विधाओं पर समीक्षात्मक टिप्पणियाँ हैं तो दूसरी ओर सामाजिक निबन्धों में तत्कालीन समाज में नारी की विडम्बनीय स्थिति एवं समाज की दयनीय अवस्था पर लेखकीय चिन्ता व्यक्त हुई है। यही चिन्ता कथा-साहित्य में व्यापक धरातल पाकर विविध रूपों में प्रकट हुई है।

निराला की आलोचनात्मक कृतियाँ : एक सर्वेक्षण

निराला ने कवि एवं निबन्ध लेखक के अतिरिक्त अपनी आलोचकीय क्षमता को भी प्रमाणित किया। 'रवीन्द्र-कविता-कानन' एवं 'पन्त और पल्लव' में उनका प्रखर आलोचक रूप उभर कर आया है। इन कृतियों का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है।

रवीन्द्र-कविता-कानन

'रवीन्द्र-कविता-कानन' के माध्यम से महाकवि निराला ने गद्य-रचना के क्षेत्र में पदार्पण किया। इस कृति के माध्यम से उन्होंने रवीन्द्रनाथ के सम्पूर्ण साहित्य का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया। बंग-प्रदेश में जन्म लेने तथा अपने जीवन का आरम्भिक काल यहीं व्यतीत करने के कारण इस प्रदेश एवं यहाँ की भाषा तथा साहित्य के प्रति निराला का अपूर्व लगाव था। समस्त बंगला-भाषी कवियों में वे रवीन्द्रनाथ से विशेष प्रभावित थे। यही नहीं बल्कि रवीन्द्रनाथ के साहित्य में उनकी गहरी पैठ भी थी। हिन्दी जगत को इस महाकवि के साहित्य से परिचित कराने एवं रवीन्द्रनाथ के प्रति अपनी आस्था प्रकट करने के उद्देश्य से निराला ने इस आलोचनात्मक पुस्तक की रचना की।

इस कृति में रवीन्द्रनाथ के सम्पूर्ण साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या तो की ही गयी है, साथ ही अपने विवेचन को पूर्ण बनाने के लिए प्रथम अध्याय में उनका सम्पूर्ण जीवन वृत्त भी दिया गया है जो तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रण में सहायक सिद्ध हुआ है। जीवनी को उद्घाटित करने वाले इस अध्याय का शेषांश किन्हीं अपरिहार्य कारणों से पं० नरोत्तम जी व्यास ने पूरा किया इसका उल्लेख प्रकाशकीय वक्तव्य में श्री निहालचन्द वर्मा ने किया है।

रवीन्द्रनाथ के साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए उन्होंने उसमें स्वदेश-प्रेम, बाल-मनोविज्ञान, शृंगार एवं संगीत तत्व के उद्घाटन के साथ-साथ महाकवि के सत् संकल्पों से भी लोगों को परिचित कराया है। उनके साहित्य का विवेचन करते हुए निराला ने आलोचना की प्राय: सभी शैलियों को अपनाया है। यही नहीं बल्कि रवीन्द्रनाथ की कविताओं में निहित सौन्दर्य की सूक्ष्म व्याख्या करके उन्होंने रवीन्द्र-साहित्य में अपनी गहरी पैठ को भी प्रमाणित किया है। यहाँ एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ निराला रवीन्द्रनाथ की तुलना अन्य बंगला कवियों से करते हैं वहां निस्सन्देह उन्हें श्रेष्ठ बताते हैं किन्तु रवीन्द्रनाथ को अपराजेय प्रतिभा का धनी मानते हुए भी वे तुलसीदास को उनसे श्रेष्ठ मानते हैं। यही नहीं बल्कि हिन्दी कवियों से तुलना करते समय भी वे हिन्दी कवियों के कृतित्व को ही श्रेष्ठ प्रमाणित करते हैं। सम्भवत: यह निराला की हिन्दी के प्रति अतिशय पक्षधरता ही है। उनके 'चरखा', 'गाँधी जी से बातचीत' आदि निबन्ध इसके प्रमाण हैं।

इस कृति के प्रत्येक अध्याय में प्रतिपाद्य विषय पर निराला की मजबूत पकड़ रही है।

उन्होंने रवीन्द्रनाथ की कविताओं में निहित विविध अर्थ उन्हीं के कविता-उद्धरणों द्वारा प्रमाणित करने का प्रयास किया है। ऐसे स्थलों पर निराला के अपने विचार सूक्ति रूप में ही आये हैं।

इस कृति की भाषा भावानुरूप है। जीवनी वाले अंशों में जहाँ सहज, सरल भाषा का प्रयोग किया गया है, वहीं उनके काव्य की व्याख्या करते समय विषयानुरूप गंभीर एवं संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग किया गया है। ऐसे स्थलों पर भाषा भाव-बोझिल हो गयी है। जहाँ कवित्वमयी भाषा का प्रयोग एवं अलंकारों की प्रमुखता रही है वहाँ आलोचक निराला पर कवि निराला हावी दिखायी पड़ता है। इस तरह आलोचना में भी काव्यात्मकता के समावेश द्वारा निराला ने अपनी विशिष्ट एवं मौलिक पहचान बनाई है। हिन्दी में रवीन्द्र-साहित्य पर प्राप्त आलोचना में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

पंत और पल्लव

'पंत और पल्लव' में निराला ने कवि पंत के कृतित्व की समीक्षा प्रस्तुत की है। आरम्भ में 'प्रबन्ध-पद्म' संग्रह में यह निबन्ध संग्रहीत किया गया था किन्तु निराला की साहित्य-सम्बन्धी मान्यताओं को प्रतिपादित करने वाले इस निबन्ध के स्वतन्त्र प्रकाशन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सन् १९४९ में गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से पुस्तक रूप में यह प्रकाशित हुआ।

पंत जी ने 'पल्लव' की भूमिका में काव्य के भाव-बोध और शिल्प-पक्ष के सम्बन्ध में अपनी जो मान्यताएँ रखी थीं, उन्हीं पर अपनी असहमति जताते हुए उनका खण्डन निराला ने इस कृति में किया है। उन्होंने 'पल्लव' में संग्रहीत कुछ कविताओं की रवीन्द्रनाथ की कविताओं से तुलना करते हुए पंत जी को ''चौर्य कला में निपुण''[५५] ठहराया है क्योंकि निराला के अनुसार पंत जी ने रवीन्द्र की कविताओं से केवल भावों का ही नहीं बल्कि शब्दों का भी अपहरण किया है। अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने दोनों कवियों की कविताओं के पर्याप्त उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

इसी तरह से पन्त जी द्वारा मुक्त छन्द के विषय में जो अवधारणा प्रस्तुत की गयी थी एवं निराला पर जो कटाक्ष किए गए थे, उनका भी समुचित उत्तर निराला ने इस निबन्ध के माध्यम से दिया है। पंत जी ने कवित्त-छन्द को सौन्दर्यहीन और परकीय मानते हुए मात्रिक छन्द को श्रेष्ठ छन्द माना था। किन्तु निराला के अनुसार कवित्त छन्द पौरुष का छन्द है। उन्होंने कवित्त छंद में संगीतात्मकता दिखाते हुए उसके कोमल एवं परुष दोनों रूपों को प्रकट किया है। यही नहीं बल्कि ब्रजभाषा पर पन्त जी ने अश्लीलता का जो आरोप लगाया था, उसका निराकरण निराला ने विद्यापति, चंडिदास जैसे हिन्दी कवियों और कतिपय अंग्रेजी कवियों के काव्य से उदाहरण देते हुए किया है।

पन्त जी द्वारा यूरोपीय साहित्य को प्राचीन भारतीय साहित्य से श्रेष्ठ माने जाने पर भी निराला ने आपत्ति की है एवं भारतीय दर्शन की गूढ़ व्याख्या करते हुए पंत जी को उनके अज्ञान के लिए दोषी ठहराया।

'पन्त और पल्लव' कृति में निराला जहाँ एक समीक्षक की पैनी दृष्टि से पंत जी के दोषों पर वार करते हैं वहीं उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए उन्हें श्रेष्ठ कवि भी सिद्ध करते हैं।

आलोचना की विभिन्न शैलियों का निरूपण इस कृति की विशेषता है। साथ ही यथासंदर्भ इतिहास, दर्शन-शास्त्र, भाषा-विज्ञान, व्याकरण, सौन्दर्य-शास्त्र पर निराला का गहन अध्ययन विश्लेषण भी दृष्टव्य है। इस कृति में आलोचक निराला का आक्रमक तेवर अधिक उभरा है बल्कि कहीं-कहीं तो वे व्यक्तिगत लांछनों, आरोपों तक पर उतर आए हैं। वस्तुतः यह निराला की अपराजेय प्रतिभा, उनका गहन चिन्तन-मनन, बहुभाषा-ज्ञान एवं भारतीय दर्शन तथा साहित्य के प्रति उनकी प्रगाढ़ निष्ठा ही थी जो किसी प्रकार के अतिवादी दृष्टिकोण के प्रति असहिष्णु हो उठती थी। विचारों के प्रस्तुतीकरण, शब्दों की सूक्ष्मतम व्याख्या एवं स्पष्टवादी दृष्टिकोण अपनाने के कारण निराला की यह आलोचनात्मक कृति अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

आलोचक निराला के विवेचित ये ग्रन्थ इस विधा पर निराला के सिद्धहस्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि स्थान-स्थान पर उनका आलोचक सीमा लंघन करते हुए कुछ ज्यादा ही कटु हो गया है तथापि उनके ये ग्रन्थ अपनी विलक्षणता के कारण हिन्दी आलोचना साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

सामाजिक दुर्नीतियों के विरुद्ध निराला के ये आलोचकीय तेवर उनके कथा-साहित्य में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं।

निराला कृत जीवनी साहित्य : एक सर्वेक्षण

महामानव निराला बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार थे। उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया। कवि, कथाकार, उपन्यासकार, निबन्धकार, रेखाचित्रकार, आलोचक होने के साथ-साथ वे कुशल जीवनी-लेखक भी थे। १९२६ ई० में जब उन्होंने जीवनी लेखन का कार्य आरम्भ किया उस समय इस साहित्यिक विधा का प्रचार अपने चरम पर था। द्विवेदी युग से ही जीवनी-साहित्य के क्षेत्र में प्रचुर कार्य हुआ। यह युगीन प्रभाव निराला पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है। उन्होंने जीवनी लिखने के लिए ऐतिहासिक एवं पौराणिक पात्रों का चयन किया क्योंकि किशोर पाठकों के प्रति सदा उनके मन में एक दायित्व-बोध रहा। 'भक्त ध्रुव' की भूमिका में इसी आशय की पुष्टि करते हुए उन्होंने लिखा है – "किसी देश को उन्नति के शिखर पर फिर से संस्थापित करने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि उसके बालकों की सार्वभौमिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाय। उनके सामने देश के आदर्श-बालकों के चरित्र रक्खे जायँ। इस तरह उनकी शारीरिक दशा का सुधार तो होगा ही, साथ ही उनकी मानसिक और नैतिक उन्नति भी हो सकेगी और निकट भविष्य में वे देश के मुखोज्वलकारी रत्न हो सकेंगे।"[७]

बालकों की सार्वभौमिक शिक्षा, उनकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति की

कामना तथा देश को उन्नति के शिखर पर संस्थापित करने की भावना यह प्रमाणित करती है कि निराला एक सजग कलाकार, साहित्यिक, विचारक होने के साथ-साथ देश के प्रति अपने कर्त्तव्य-बोध से बंधे एक आदर्श नागरिक भी थे।

निराला द्वारा लिखित 'भक्त ध्रुव', 'भीष्म पितामह', 'महाराणा प्रताप', 'भक्त प्रहलाद' ये चार जीवन-चरित्र प्राप्त होते हैं। इनमें से 'भक्त ध्रुव', 'भीष्म पितामह' तथा 'भक्त प्रहलाद' पौराणिक एवं 'महाराणा प्रताप' ऐतिहासिक चरित्र पर आधारित कृतियाँ हैं।

'भक्त ध्रुव' का प्रणयन १९२६ ई० में हुआ। तद्युगीन बालकोपयोगी आदर्श-भक्त साहित्य परम्परा का निर्वाह करते हुए निराला इस कृति की भूमिका में लिखते हैं – ''ध्रुव-चरित्र बालकों के लिए सर्वथा अनुकरणीय है। उनके चरित्र के पाठ से बालकों में धर्मभाव, शुद्धता और सजीवता के आने के साथ-ही-साथ, उनमें एक प्रकार की वह कर्मनिष्ठा और एकाग्रता आवेगी जिसके प्रभाव से वे सफलता की मंजिल पूरी करके ही दम लेंगे।''[४] भूमिका की ये पंक्तियाँ इस पौराणिक चरित्र के चयन में निहित लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करती हैं। साथ ही धर्मान्धता, जातीयता एवं प्रान्तीयता जैसी बुराइयाँ, जो तत्कालीन समाज में अपनी जड़ें फैला चुकी थीं उनसे बालकों को दूर रखना भी लेखक का उद्देश्य था, यह भूमिका की इन पंक्तियों से ध्वनित होता है – ''ईश्वर-प्राप्ति विषयक गूढ़-रहस्यों का उद्घाटन भी कर दिया गया है, ताकि धर्म के मार्ग से घातक कट्टरता का इस देश में लोप हो जाय, बच्चे हर प्रान्त और हर जाति के बालकों से सहानुभूति रखना सीखें।''[५]

'भक्त ध्रुव' का कथानक सुखसागर के चौथे स्कन्ध पर आधारित है जिसमें निराला ने अपनी काल्पनिकता का समावेश कर अधिक विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किया है। जीवनी-कला के अनुरूप ही इसमें ध्रुव के जन्म से मृत्यु तक के जीवन का सांगोपांग वर्णन किया गया है।

कृति के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कथा-विकास की अपेक्षा चरित्र-चित्रण में ही लेखक की वृत्ति अधिक रमी है। ध्रुव के चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करना ही लेखक का मुख्य लक्ष्य रहा है। उसके चरित्र में लेखक ने अन्तर्द्वन्द्व का समावेश कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। साथ ही उसके चरित्र को स्वाभाविक बनाने के लिए उसके उत्तम गुणों के वर्णन के साथ-साथ उसमें मानवोचित दुर्बलताओं का समावेश भी किया है। अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण गौण रूप में हुआ है।

इस कृति की भाषा सहज सरल एवं संवाद रोचक हैं। भाषा एवं संवादों के निरूपण में आयु-भेद का विशेष ध्यान रखा गया है।

देश-काल का चित्रण कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप में हुआ है। प्रकृति का आलम्बनगत एवं उद्दीपनगत दोनों ही रूपों में चित्रण हुआ है।

कृति की भूमिका में लेखक ने जिस उद्देश्य का उल्लेख किया था उसका पूर्ण निर्वाह इसमें किया गया है। ध्रुव को जीवन-संघर्ष के महान योद्धा के रूप में प्रस्तुत कर निराला ने पौराणिक चरित्र को अपने युग के अनुरूप ढालने में दक्षता दिखाई है।

निष्कर्षत: कृति जहाँ एक ओर बालकों के चरित्र को ऊँचा उठाने का महती कार्य करती है वहीं दूसरी ओर प्रचलित कुरीतियों को दूर कर आदर्श समाज एवं राष्ट्र की स्थापना पर बल देती है।

भीष्म पितामह

इस कृति की रचना १९२६ ई० में हुई। महाभारत के सर्वाधिक उज्ज्वल चरित्र भीष्म के आदर्श को बाल-वर्ग के सम्मुख रखकर उनके चरित्र-निर्माण की आकांक्षा ही इस कृति का उद्देश्य है। पुस्तक की भूमिका में लिखित यह अंश इसी आशय की पुष्टि करता है – "महावीर भीष्म के चरित्र से सब प्रकार की शिक्षाएँ एक साथ मिल जाती हैं। पिता के प्रति पुत्र की कैसी भक्ति होनी चाहिए, माता और विमाता के प्रति उसके क्या कर्त्तव्य हैं, मनुष्यता का आदर्श क्या हो, शास्त्र-अध्ययन, ब्रह्मचर्य और सरल भाव से जीवन के निर्वाह का फल क्या है, समर क्षेत्र में क्षत्रिय का क्या आदर्श है, यथार्थ वीरता किसे कहते हैं, इस तरह से मनुष्यों के मस्तिष्क में मनुष्यता से सम्बन्ध रखने वाले जितने प्रश्न आ सकते हैं, उन सब का उत्तर भीष्म के जीवन से मिल जाता है। ऐसे महापुरुष को आदर्श रूप से देश के सामने लाना उसके लिए बड़ा कल्याणकर है।"[५०]

'भीष्म' की कथा का चयन यद्यपि 'महाभारत' से किया गया है किन्तु लेखक ने उसमें कुछ परिवर्तन भी किए हैं और ये परिवर्तन भीष्म के चरित्र को और भी उज्ज्वल बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। भीष्म के जन्म से मृत्यु तक की सम्पूर्ण जीवनी को १३ अध्यायों में विभाजित किया गया है।

इनमें से प्रथम अध्याय को छोड़कर शेष सभी का नामकरण भीष्म अथवा उनके जीवन की किसी घटना को आधार मान कर किया गया है। प्रथम अध्याय में महाभारतकालीन परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन करते हुए महाभारत-समर को बहुत अंशों में भारत के लिए कल्याणकारी सिद्ध किया गया है क्योंकि "अगर यह लड़ाई न होती और दुष्ट प्रकृति वाले वे कुल मनुष्य बचे रहते, तो भी भारत कल्याण मार्ग पर न रह सकता।"[५१]

'जीवनी में कथा का विकास' सहज एवं स्वाभाविक है।

चरित्र-चित्रण में लेखक का मुख्य उद्देश्य भीष्म के आदर्श चरित्र को उद्घाटित करना रहा है। उनकी चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने के क्रम में अन्य गौण पात्रों का चरित्रांकन भी अनायास ही हो गया है।

संवाद-योजना भी चरित्रों के नवीन पक्षों के उद्घाटन को ध्यान में रखकर की गयी है। संवाद पात्रानुकूल एवं परिवर्तनशील हैं।

देशकाल एवं वातावरण चित्रण की दृष्टि से यह रचना सफल कही जा सकती है क्योंकि इसमें महाभारतकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

भाषा-शैली की दृष्टि से इसके संस्कृतनिष्ठ एवं तत्सम शब्द तथा आलंकारिक शैली किशोर पाठकों के लिए भले ही कुछ दुरूह हो गयी हो लेकिन चूंकि लेखक अतीत की गौरव-गाथा का वर्णन कर रहे हैं इसलिए चरित्रों को महिमा-मंडित करने के लिए ऐसी ही भाषा की आवश्यकता थी।

इस रचना का उद्देश्य जहाँ एक ओर भीष्म के उज्ज्वल चरित्र को उद्घाटित करना रहा है वहीं दूसरी ओर अपने पतन के कारणों को ढूँढ़कर उनका निराकरण भी रहा है। इस सम्बन्ध में कृति के प्रथम अध्याय में लेखक की ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं – "हमारे सामने आज हमारी जाति, धर्म और समाज के अन्दर जितने दुर्गुण आ गये हैं उनके निराकरण की औषधि भी हमें महाभारत से मिलती है। जब हम अपने पतन पर विचार करते हैं, तब हमारे पतन के कारण भी साथ ही हमारी दृष्टि के सामने आ जाते हैं। उन कारणों का दूरीकरण ही जाति, समाज और धर्म के पतन के गढ़े से निकालना है।"[५] लेखक इस तथ्य से भी भारतवासियों को अवगत कराना चाहते थे कि दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों का विनाश अवश्यम्भावी एवं समाज के लिए कल्याणकारी होता है। लेखक अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहे हैं।

निष्कर्षतः साहित्यिक दृष्टि से इस कृति का महत्व अक्षुण्ण है किन्तु 'बालकों के लिए' लेखक के इस कथन के आलोक में यदि इसे परखा जाए तो इसमें भाषिक दृष्टि से कुछ दुरूहता अवश्य नजर आती है। लेकिन महाभारतकालीन वातावरण को सजीव बनाने के लिए तथा भीष्म के चरित्र को गरिमा-मंडित करने के लिए ऐसा करना लेखक की अपनी विवशता थी।

महाराणा प्रताप

१९२९ में लिखित 'महाराणा प्रताप' जीवनी में निराला ने प्रथम बार एक ऐतिहासिक वीर-चरित्र का यशोगान किया है। परतन्त्र भारत में ऐसे वीर-चरित्रों के आदर्श को भारतीयों के समक्ष प्रस्तुत करना उस युग की मांग थी। साथ ही पौराणिक चरित्र की अपेक्षा सामान्य मनुष्य की भाँति जीवन-यापन करने वाले, जीवन के समस्त उतार-चढ़ाव को स्वयं अनुभव करने वाले तथा मानवोचित गुणों-अवगुणों से युक्त महाराणा प्रताप का चरित्र भारतीय जनता के लिए अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकता था क्योंकि वे इसी भारत-भूमि के एक वीर सपूत थे।

'महाराणा प्रताप' के सम्पूर्ण जीवन-वृत्त को अठारह अध्यायों में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। इन शीर्षकों में एक विशेषता जो स्पष्ट दिखाई देती है – वह यह है कि इसमें ऐतिहासिकता के पूर्ण निर्वाह के लिए चरित्रों के उज्ज्वल पक्षों के साथ-साथ उनके जीवन के कालिमायुक्त पक्षों का भी निस्संकोच उद्घाटन किया गया है। इस तरह निराला ने एक जीवनी-लेखक के गुणों का सफल निर्वाह किया है।

महाराणा-प्रताप के चरित्र के विभिन्न पक्षों के रेखांकन में लेखक की वृत्ति अधिक रमी है किन्तु इससे शक्ति सिंह, मानसिंह, अकबर, पृथ्वीराज जैसे चरित्रों का चित्रण भी उपेक्षित नहीं रहा है। महाराणा प्रताप के चरित्र-चित्रण में जहाँ एक ओर लेखक ने उनके स्वाभिमान, क्षत्रियत्व,

त्याग-वृत्ति, दृढ़-निश्चय, निर्भयता, नेतृत्व-शक्ति, धीरता, शौर्य जैसे गुणों का वर्णन किया है वहीं दूसरी ओर उनमें मानवोचित दुर्बलताओं का भी स्पष्ट अंकन किया है। वही नहीं बल्कि विभिन्न परिस्थितियों में उनकी मनः स्थिति तथा अन्तर्द्वन्द्व का उद्घाटन कर उनके चरित्र को स्वाभाविकता प्रदान की है। अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण उनके गुणों-अवगुणों के अनुरूप कर लेखक ने ऐतिहासिक सत्य का पूर्ण निर्वाह किया है।

इसकी संवाद योजना प्रभावशाली एवं परिस्थिति सापेक्ष है। संवादों में प्रवाहमयता तथा ओजगुण की प्रधानता है और वे तत्कालीन परिस्थिति के चित्रण में तथा पात्रों की अन्तर्निहित विशेषताओं का उद्घाटन करने में पूर्ण सफल रहे हैं। 'महाराणा प्रताप' के संवाद जहाँ एक ओर उनकी उत्कट देशभक्ति को प्रकट करते हैं वहीं दूसरी ओर प्रेरक तथा उत्साहवर्धक भी हैं।

इस कृति की भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी व्यावहारिक एवं सरल है। उर्दू शब्दों एवं वाक्यों के प्रयोग द्वारा जहाँ मुगल-वातावरण का सजीव चित्रण किया गया है वहीं तत्सम एवं सामासिक शब्दों के प्रयोग द्वारा राजपूती शौर्य एवं वीरता को मूर्तिमान किया गया है। भाषा एवं भाव के अनुरूप ही विविध शैलियों का प्रयोग किया गया है।

देश-काल एवं वातावरण चित्रण की दृष्टि से 'महाराणा प्रताप' एक सफल कृति है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का सजीव अंकन हुआ है।

इस कृति की रचना में लेखक का मुख्य उद्देश्य परतन्त्र भारतवासियों में जागृति लाना रहा है। महाराणा प्रताप के चरित्र, उनके संवाद एवं ओजस्वी वक्तव्यों द्वारा उक्त उद्देश्य की सिद्धि होती है। वीर महाराणा प्रताप के आदर्श चरित्र का जनता अनुकरण करे, इसी उद्देश्य से लिखी गयी इस रचना के प्रथम अध्याय में लेखक का कथन ध्यान देने योग्य है – "उस समय जिस वीर महापुरुष ने अकबर का सामना किया, हिन्दुओं की कीर्ति-पताका मुगलों के हाथ नहीं जाने दी, आज हम उसी लोकोज्वल-चरित्र महावीर महाराणा प्रताप सिंह की कीर्ति-गाथा अपने पाठकों को भेंट करते हैं।"[५३]

निष्कर्षतः महाराणा प्रताप कृति जीवनी-विधा की कसौटी पर खरी उतरती है। हिन्दी के जीवनी-साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

भक्त प्रह्लाद

१९३० में लिखित 'भक्त प्रह्लाद' कृति की रचना बालकों के चारित्रिक-उत्थान हेतु की गयी थी। पराधीन भारत में प्रचलित 'अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभाव से बालकों को बचाने के लिए भक्त प्रह्लाद जैसे धर्मनिष्ठ और दृढ़व्रत बालक के चरित्र के प्रचार की आवश्यकता लेखक महसूस कर रहे थे इसका उल्लेख उन्होंने कृति की भूमिका में स्पष्ट किया है – "ऐसे धर्मनिष्ठ, सरल और दृढ़व्रत बालक के चरित्र का प्रचार – स्खलित मति, निर्वीर्य, निरुत्साह और पथभ्रष्ट कर देने वाली कुशिक्षा से बचाने के लिए देश के बालकों में अवश्य होना चाहिए।"[५४]

'भक्त प्रह्लाद' की सम्पूर्ण कथा का आधार 'श्रीमद्भागवत' है जिसे लेखक ने अपने

युगानुरूप नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। इसके लिए निराला ने कृति की मूल कथा में कुछ परिवर्तन किए हैं किन्तु ये परिवर्तन 'भक्त प्रह्लाद' को केवल भक्तिपरक न बनाकर चरित्र प्रधान कथा बना देते हैं। कथानक में स्वाभाविकता लाने के लिए अलौकिक घटनाओं में भी किंचित परिवर्तन कर दिए गए हैं।

सम्पूर्ण कथानक को चौदह अध्यायों में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। प्रथम चार अध्यायों में प्रह्लाद के जन्म के पूर्व हिरण्यकशिपु तथा उसके भाई हिरणाक्ष के अत्याचारों का वर्णन है। पंचम से अन्तिम अध्याय तक प्रह्लाद की कथा का विकास हुआ है।

यद्यपि इस कृति में लेखक का मूल उद्देश्य प्रह्लाद के ईश्वर-प्रेम, भक्ति, शान्ति, क्षमा, दया, धृति, सरलता आदि सद्गुणों का वर्णन करना रहा है। इस लिए प्रह्लाद के चरित्र को ही प्रमुखता दी गयी है तथापि उसके गुणों को अधिकाधिक प्रकाश में लाने के लिए अन्य गौण-पात्रों का चरित्र भी यत्किंचित समाविष्ट हो गया है। भक्त प्रह्लाद को अधिक भावुक और साहसी चित्रित किया गया है। इसी तरह उसके पिता हिरण्यकशिपु के चरित्र-चित्रण में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया है। उसके चरित्र को समस्त मानवोचित सबलताओं, दुर्बलताओं के साथ प्रस्तुत करना निराला की मौलिक देन कही जा सकती है। इस तरह यहाँ पौराणिक चरित्र भी अधिक स्वाभाविक एवं विश्वसनीय बन पड़े हैं।

संवादों की योजना कथामें रोचकता लाने के लिए की गयी है। कृति में वर्णनात्मक शैली के प्राचुर्य के कारण संवाद अत्यधिक अल्प है किन्तु वे पात्रों की विशेषताओं के उद्घाटन में पूर्ण सक्षम हैं।

इस कृति में तत्युगीन सामाजिक, धार्मिक आदि स्थितियों का स्पष्ट चित्रण मिलता है। कुछ स्थलों पर उस काल के वातावरण के चित्रण के साथ-साथ निराला ने अपने समकालीन वातावरण का भी उल्लेख किया है। प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण वातावरण को अत्यधिक सजीवता प्रदान करता है।

'भक्त प्रह्लाद' की भाषा संस्कृतनिष्ठ होने पर भी उसमें तद्भव एवं उर्दू शब्द बहुतायत से प्राप्त होते हैं। भाषा बालकों की दृष्टि से कहीं-कहीं दुरूह हो गयी है किन्तु फिर भी उद्देश्य की अभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम है।

इस कृति का उद्देश्य भी बच्चों की चारित्रिक उन्नति रहा है। साथ ही निराला ने गीता के इस सिद्धान्त की भी पुष्टि की है कि "जब-जब धर्म की हानि होती है और पृथ्वी पर अधर्म बढ़ जाता है, तब-तब भक्तों का उद्धार करने के लिए भगवान जन्म लेते हैं।"

निष्कर्षत: जीवनी कला की दृष्टि से कृति पूर्ण सफल कही जा सकती है।

निराला विरचित ये जीवनियाँ यद्यपि बालकों के समग्र उन्नयन को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की गयी थीं – फिर भी तत्कालीन परिवेश में उनका विशेष महत्व रहा है। 'भक्त ध्रुव', 'भीष्म', 'महाराणा प्रताप' एवं 'भक्त प्रह्लाद' की इन जीवनियों से बालकों में चरित्र का निर्माण करने की लेखकीय उत्कंठा गुलाम देश में राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत करने की भावना का संकेत देती है।

निराला का स्फुट गद्य साहित्य : एक सर्वेक्षण

निराला विरचित कृतियों में 'महाभारत', 'रामायण की अंतर्कथाएँ' तथा निराला द्वारा लिखित कुछ महत्वपूर्ण पत्र हैं। आरम्भिक दो रचनाएँ तो पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं और पत्रों का संकलन 'निराला रचनावली' के आठवें खण्ड में किया गया है। 'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय मनीषा के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ के रूप में समादृत हैं। सामान्य जनों की सुविधा के लिए निराला ने इनकी रचना की थी। इसी प्रकार पत्रों का सूक्ष्म अध्ययन तत्कालीन समाज एवं साहित्य का परिदर्शन तो कराता ही है, निराला के व्यक्तिगत जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंगों को भी उद्घाटित करता है। इन रचनाओं का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है।

महाभारत

लोकोपयोगी साहित्य-सृजन की शृंखला में निराला के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'महाभारत' का प्रकाशन १९३९ में गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से हुआ। यह कृति "कलकत्ते की प्रिय स्मृति में पं० रामशंकर जी शुक्ल के कर कमलों में"[५५] समर्पित की गयी थी। साधारण जनों, गृहदेवियों और बालकों को महाभारत की कथाओं से अवगत कराने के उद्देश्य से लिखी गयी इस पुस्तक के भाव एवं इसकी भाषा सरल है। इस पुस्तक के प्रणयन में संस्कृत, बंगला और हिन्दी की कई छोटी-बड़ी पुस्तकों का आधार ग्रहण किया गया है – इसका उल्लेख पुस्तक की भूमिका में स्वयं निराला ने किया है।

'महाभारत' की पौराणिक कथा को शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिए सम्पूर्ण कथानक को इस प्रकार से अट्ठारह पर्वों में विभाजित किया गया है – (१) आदि पर्व (२) सभा पर्व (३) वन पर्व (४) विराट पर्व (५) उद्योग पर्व (६) भीष्म पर्व (७) द्रोण पर्व (८) कर्ण पर्व (९) शल्य पर्व (१०) सौप्तिक पर्व (११) स्त्री पर्व (१२) शांति पर्व (१३) अनुशासन पर्व (१४) अश्वमेध पर्व (१५) आश्रम-वासिक पर्व (१६) मौषल पर्व (१७) महाप्रस्थानिक पर्व (१८) स्वर्गारोहण पर्व।

यद्यपि कथा का आधार पौराणिक है तथापि उनके प्रस्तुतिकरण में मौलिकता के दर्शन होते हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण में उनके गुणों के साथ-साथ दुर्बलताओं का उद्घाटन भी लेखक ने किया है। इस तरह चरित्रों को स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक तद्युगीन देशकाल का चित्रण किया है। प्रकृति-चित्रण में उन्होंने विशेष रुचि ली है। चूँकि लेखक का उद्देश्य 'महाभारत' की मूल कथा से सामान्य जन को परिचित कराना था, अतः ग्रन्थ में नवीन उद्भावनाएँ नहीं की गयी हैं। भाषा एवं संवादों की सरलता की ओर कृतिकार ने विशेष ध्यान रखा है। अतः कृति प्रत्येक वर्ग के पाठक के लिए सहज ग्राह्य है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि यह पुस्तक लेखकीय-उद्देश्य की सफलता की द्योतक

है। इस ग्रन्थ की रचना द्वारा निराला ने अपने युग में विकसित महान् ग्रन्थों के लेखन की परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

रामायण की अंतर्कथाएँ

भारतीय जन-जीवन को उसके यथार्थ रूप में प्रतिबिम्बित करने वाले ग्रन्थों में से तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ने निराला को सर्वाधिक प्रभावित किया था। 'मानस' का नित्य-पठन उनके दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। इसके कृतिकार तुलसीदास की श्रेष्ठता उन्होंने अपने अनेक निबन्धों में प्रमाणित की है। निराला ने 'मानस की टीका' लिखने का कार्य भी सहर्ष आरम्भ किया था किन्तु गंगा-पुस्तकमाला के सम्पादक पं० दुलारे लाल भार्गव से पारिश्रमिक के विषय में मतभेद हो जाने के कारण 'मानस की टीका' दो खण्डों के बाद नहीं लिखी गयी। इन्हीं खण्डों में लिखी गयीं अंतर्कथाएँ बाद में गंगा-पुस्तकमाला से स्वतंत्र रूप में 'रामायण की अंतर्कथाएं' शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गयीं।

'मानस' के पौराणिक प्रसंगों को अपनी कल्पना शक्ति द्वारा अधिकाधिक स्पष्ट कर निराला ने अपूर्व कलात्मकता का परिचय दिया है। विषय के अनुरूप भाषा में संस्कृत शब्दों का प्राचुर्य होने पर भी भाषा सहज गतिशील है। प्रकृति वर्णन के समय जहाँ भाषा में अलंकृति के दर्शन होते हैं वहीं ओज-पूर्ण प्रसंगों के वर्णन में भाषा में ओजगुण का प्राधान्य दिखायी देता है। यथास्थान अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने भाषा में चमत्कार उत्पन्न किया है।

पौराणिक कथाओं को आधुनिक दृष्टिकोण से उपस्थित करने के कारण यह रचना अपने आप में महत्वपूर्ण बन गयी है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथों से आधारभूत सामग्री ग्रहण करने के कारण इनकी प्रामाणिकता के विषय में कोई संदेह नहीं रह जाता। इन कथाओं को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण निराला की अपनी मौलिक विशेषता है।

कुल तेईस अंतर्कथाओं के बारे में सूक्ष्म एवं प्रामाणिक जानकारी देने वाला यह ग्रंथ जहाँ एक ओर तुलसीदास के आदर्शवादी दृष्टिकोण एवं राम नाम के महत्व को प्रतिपादित करता है वहीं दूसरी ओर तुलसी साहित्य में निराला की गहरी पैठ एवं उनके मौलिक चिन्तन को भी रेखांकित करता है।

पत्र-साहित्य

निराला द्वारा समय-समय पर अपने साहित्यिक मित्रों एवं अन्य परिवार जनों को लिखे गए पत्र डा० रामविलास शर्मा की पुस्तक 'निराला की साहित्य-साधना' के तृतीय खण्ड एवं 'निराला रचनावली' के आठवें खण्ड में संकलित किए गए हैं। अपने आत्मज श्री रामकृष्ण त्रिपाठी एवं साहित्यिक मित्रों – श्री दुलारेलाल भार्गव, जानकी वल्लभ शास्त्री, विनोदशंकर व्यास एवं डा० रामविलास शर्मा को लिखे गए इन पत्रों के विपुल-भंडार को पत्र-साहित्य के अन्तर्गत

रखा जा सकता है। महाकवि निराला द्वारा लिखित इन पत्रों का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व है। एक ओर इनमें निराला की जीवन गाथा के खण्ड-चित्र यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं तो दूसरी ओर ये व्यक्ति-विशेष से उनके सम्बन्धों की घनिष्ठता को उजागर करते हैं। इस तरह निराला के पारिवारिक एवं साहित्यिक परिवेश की जानकारी इन पत्रों द्वारा होती है। ये निराला के साहित्यिक, सामाजिक एवं आर्थिक संघर्षों के जीवन्त दस्तावेज हैं। यही नहीं बल्कि इन पत्रों के आधार पर ही निराला के सम्बन्ध में फैली यह अफवाह भी दूर हो जाती है कि वे घर-गृहस्थी की ओर से पूर्ण दायित्वहीन थे। अपने आत्मज रामकृष्ण त्रिपाठी को लिखे गए पत्रों से यह प्रमाणित होता है कि निराला अपने गृहस्थ-जीवन के प्रति दायित्व-बोध से जुड़े थे। वे कर्तव्यनिष्ठ पिता थे जो अपनी विक्षिप्तावस्था में भी पुत्र के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का पूर्ण निर्वाह करने की दिशा में सदा प्रयत्नशील रहते थे।

साहित्यिक मित्रों को समय-समय पर लिखे गए पत्रों में उनकी प्रकाशित अप्रकाशित रचनाएँ, अन्य साहित्यकारों के कृतित्व की आलोचना तथा साहित्य-चर्चा ही प्रमुख रूप से हुआ करती थी। अत: ये पत्र उस समय की साहित्यिक गतिविधियों पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

अत: निराला का पत्र-साहित्य उनके सम्बन्ध में फैली तमाम भ्रान्तियों का निराकरण तो करता ही है, उस युग की साहित्यिक एवं सामाजिक झांकी भी प्रस्तुत करता है।

निराला की अनूदित रचनाओं का सर्वेक्षण

इन स्फुट गद्य रचनाओं के अतिरिक्त निराला ने कुछ महत्वपूर्ण बंगला कृतियों का हिन्दी में अनुवाद भी किया था। इन अनूदित कृतियों का साहित्यिक दृष्टि से महत्व तो है ही, निराला के अनुवादक रूप का परिचय प्रदान करने के कारण भी उनकी साहित्यिक महत्ता है। ये कृतियाँ निराला के अंग्रेजी एवं बंगला ज्ञान की परिचायक हैं।

हिन्दी साहित्य को निराला की देन सिर्फ मौलिक कृतियों के रूप में ही नहीं बल्कि अनूदित कृतियों के रूप में भी है। उन्होंने बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत की कुछ गद्य-कृतियों के हिन्दी अनुवाद कर जहाँ एक अनुवादक के रूप में अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की, वहीं साहित्य के विशाल-भंडार की श्रीवृद्धि की।

बंगला-भाषा से हिन्दी में अनूदित कृतियों में बंकिम चन्द्र चटर्जी के उपन्यासों की संख्या अधिक है। उन्होंने बंकिमचन्द्र के ग्यारह उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। उनके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं – 'आनन्दमठ', 'विषवृक्ष', 'कृष्णकान्त का विल', 'कपाल-कुण्डला', 'दुर्गेशनन्दिनी', 'राजसिंह', 'राजरानी', 'देवी चौधरानी', 'युगलांगुलीय', 'चन्द्रशेखर' एवं 'रजनी'।

इनके अतिरिक्त श्री रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं को – जो उनके भक्त श्री महेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा बंगला में लिपिबद्ध की गयी थीं – हिन्दी में तीन भागों में अनूदित किया।

स्वामी विवेकानन्द लिखित 'भारत में विवेकानन्द', 'परिव्राजक' और 'राजयोग' का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया।

इसी तरह 'वात्स्यायन कामसूत्र' एवं 'वैदिक साहित्य' का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद किया, किन्तु ये कृतियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं।

विभिन्न भाषाओं से हिन्दी में किये गये ये अनुवाद निराला को एक सफल अनुवादक प्रमाणित करते हैं क्योंकि इनमें कथा के मूल-भाव को सुरक्षित रखते हुए कला-पक्ष की दृष्टि से उन्हें हिन्दी की प्रचलित पद्धति के अनुरूप ढाला गया है। अतः अनूदित कृतियाँ भी लेखक की मौलिकता का आभास देती हैं एवं उनके विविध-भाषा-ज्ञान से लोगों को परिचित कराती हैं।

निराला की कविताओं, निबन्ध-संग्रहों, आलोचनात्मक कृतियों, जीवनी-साहित्य, स्फुट गद्य-साहित्य तथा अनूदित गद्य-रचनाओं का सर्वेक्षण हिन्दी के शीर्षस्थ रचनाकार की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय कराता है। साहित्य की इन विधाओं पर लिखित उनके ग्रन्थों के सूक्ष्म विवेचन से यह पता चलता है कि निराला की दृष्टि अपने समय के साहित्य, समाज, राजनीति एवं जीवन-जगत की विविध स्थितियों पर अत्यन्त सजग थी। समाज को समुन्नत बनाने के लिए उन्होंने जो कल्पनाएं संजोयी थीं, उन्हें साकार करने के लिए वे आकुल-व्याकुल थे, परन्तु समाज में व्याप्त वैषम्य, अनीति एवं दुराचार उनकी कल्पना को रूपायित नहीं कर पा रहे थे। निराला की इस व्याकुलता का आभास उनके समग्र कथा-साहित्य में प्राप्त होता है। अगले अध्याय में कथा-साहित्य के सर्वेक्षण के दौरान इस तथ्य को रेखांकित किया गया है।

संदर्भ :

१. भूमिका, अनामिका, प्राचीन संस्करण १९२३; २. वही; ३. समर्पण, अनामिका, प्राचीन संस्करण, १९२३; ४. भूमिका, अनामिका प्राचीन संस्करण १९२३; ५. भूमिका, परिमल, प्रथमावृत्ति संवत् १९८६, पृ० २; ६. वही, पृष्ठ १५; ७. वही, पृष्ठ २; ८. वही, पृष्ठ ६; ९. समर्पण, गीतिका, पृष्ठ ५, आठवाँ संस्करण संवत् २०३०; १०. भूमिका, गीतिका, पृष्ठ १९, आठवाँ संस्करण संवत् २०३०; ११. भूमिका, अनामिका, चतुर्थ संस्करण १९६३; १२. निराला: आत्महन्ता आस्था – दूधनाथ सिंह, प्रथम संस्करण १९७२, पृष्ठ १५७; १३. निराला का साहित्य और साधना – डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, द्वितीय संस्करण १९६५, पृष्ठ १२१; १४. निराला : आत्महन्ता आस्था-दूधनाथ सिंह, प्रथम संस्करण १९७२ पृष्ठ ११०; १५. निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व – संपादक- डा० प्रेमनारायण टंडन, १९६२ पृष्ठ २५८; १६. आवेदन, कुकुरमुत्ता, पृष्ठ ४, चतुर्थ संस्करण १९६९; १७. वही; १८. भूमिका, अणिमा, संस्करण १९४३; १९. वही; २०. निराला: आत्महन्ता आस्था – दूधनाथ सिंह १९७२ पृष्ठ २२२; २१. आवेदन, बेला, प्रथमावृत्ति १९४६; २२. वही; २३. वही; २४. प्रस्तावना, नये पत्ते, प्रथमावृत्ति १९४६; २५. निराला : आत्महन्ता आस्था – दूधनाथ सिंह, १९७२, पृष्ठ २४९; २६. वही, पृष्ठ २५५; २७. स्वयोक्ति, अर्चना, संस्करण १९५०; २८. आराधना, दो शब्द शीर्षक से महादेवी जी द्वारा लिखित भूमिका से; २९. गीत-गाथा, पृष्ठ ११ गीत-गुंज, प्रथम संस्करण संवत् २०११; ३०. सांध्य-काकली की भूमिका - संपादक श्री नारायण चतुर्वेदी का वक्तव्य;

३१. समर्पित, प्रबन्ध-पद्म, प्रथमावृत्ति, संवत् १९९१; ३२. प्रबन्ध-पद्म, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १६७ संवत् १९९१; ३३. वही, पृष्ठ १८; ३४. वही, पृष्ठ ४४; ३५. प्रबन्ध प्रतिमा, तृतीय संस्करण १९८३, पृष्ठ ४६; ३६. निवेदन, चाबुक; ३७. संग्रह-प्रथम संस्करण १९६३, पृष्ठ १४; ३८. वही, पृष्ठ २९; ३९. वही, पृष्ठ २९; ४०. वही, पृष्ठ ५०; ४१. वही, पृष्ठ ५०; ४२. वही, पृष्ठ १०१; ४३. वही, पृष्ठ १५१; ४४. वही, पृष्ठ १५१; ४५. प्राक्कथन, संग्रह, प्रथम-संस्करण १९६३, पृष्ठ ८; ४६. पंत और पल्लव, प्रथमावृत्ति सन् १९४९, पृष्ठ १३; ४७. भूमिका, भक्त ध्रुव, प्रथम संस्करण १९८६; ४८. वही; ४९. वही; ५०. भीष्म पितामह, भूमिका प्रथम संस्करण १९८८; ५१. वही, पृष्ठ ११; ५२. वही, पृष्ठ १२; ५३. महाराणा प्रताप, प्रथम संस्करण १९८८, पृष्ठ १०; ५४. भक्त प्रहलाद, भूमिका, प्रथम संस्करण १९८६; ५५. महाभारत, समर्पण, तृतीय संस्करण १९८६

तृतीय अध्याय

निराला के कथा साहित्य का सर्वेक्षण

पिछले अध्याय में हमने निराला के बहुआयामी साहित्यिक लेखन पर विचार किया है। काव्य, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि साहित्य-विधाओं में उत्कृष्ट सृजन द्वारा उन्होंने जहाँ एक ओर अपनी लेखकीय क्षमता को उजागर किया वहीं दूसरी ओर सामाजिक जागरूकता का भी परिचय दिया है। समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं का निराला को प्रत्यक्ष अनुभव था। उनका समूचा साहित्य इसी का दस्तावेज है। हमारा अध्येतव्य निराला का कथा-साहित्य है। इसके अन्तर्गत उपन्यास, कहानी एवं रेखाचित्र को समाहित किया गया है। यों तो रेखाचित्र अपने आप में एक स्वतंत्र विधा है, किन्तु निराला के रेखाचित्रों में भी कथा-तत्व की झलक मिलती है। आज उनके रेखाचित्रों को भी उपन्यास के संदर्भ में देखने की कोशिश की जा रही है। अतः इस अध्याय में कथा-साहित्य के अन्तर्गत कहानी एवं उपन्यास के साथ रेखाचित्रों पर विचार किया जा रहा है।

सामग्रिक मूल्यांकन के लिए विषय का अध्ययन तीन पृथक अध्यायों में किया गया है– कथा साहित्य का सर्वेक्षण, कथा साहित्य में वस्तु और कथा साहित्य में शिल्प। इस अध्याय में कहानियों, उपन्यासों एवं रेखाचित्रों का यह सर्वेक्षण यथासंभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है।

कथा-साहित्य

क्रम संख्या	*कृति का नाम*	*रचना काल*
कहानी संग्रह		
१.	लिली	१९३३
२.	सखी	१९३५
३.	सुकुल की बीवी	१९४१
४.	चतुरी चमार	१९४५
५.	देवी	१९४८
उपन्यास		
१.	अप्सरा	१९३१
२.	अलका	१९३३

३.	प्रभावती	१९३५
४.	निरुपमा	१९३६
५.	चमेली (अपूर्ण)	१९३९
६.	चोटी की पकड़	१९४६
७.	काले कारनामे	१९५०
८.	इन्दुलेखा (अपूर्ण)	१९६०

रेखाचित्र

१.	कुल्लीभाट	१९३९
२.	बिल्लेसुर बकरिहा	१९४२

निराला के कहानी-संग्रह : एक सर्वेक्षण

लिली

'लिली' कथा-साहित्य में निराला का प्रथम प्रयास है। यह कहानी-संग्रह १९३३ ई० में गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। १६ दिसम्बर, १९३३ को 'सुधा' पत्रिका के आवरण के अंतिम पृष्ठ पर एक अलसाये हुए यौवन के चित्र के साथ 'लिली' का विज्ञापन प्रकाशित हुआ, जिसमें इसे उत्कृष्ट कहानियों का संग्रह घोषित किया गया और उसे "सरस, चमत्कारपूर्ण, सुन्दर, स्वाभाविक, रोचक, काव्यमय, भावपूर्ण और सूक्ष्म चरित्र-चित्रण करने वाली शिक्षाप्रद और उत्साहवर्द्धक कहानियों का अनूठा संग्रह"[१] कहा गया। यह कृति "श्री दुलारेलाल जी के दक्षिण यशोवर्द्धन साहित्यकार"[२] को समर्पित है। इसकी भूमिका में निराला लिखते हैं – "मुझसे पहले वाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक इस कला को किस दूर उत्कर्ष तक पहुँचा सके हैं, मैं पूरे मनोयोग से समझने का प्रयत्न करके भी नहीं समझ सका। समझता, तो शायद उनसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता और पतन के भय से इतना न घबराता। अत: अब मेरा विश्वास केवल लिली पर है, जो यथासम्भव अधखिली रहकर अधिक सुगन्ध देती है।"[३] इस भूमिका से स्पष्ट है कि कहानीकार निराला कथा-साहित्य की रचना में किसी से प्रभावित नहीं है। उन्होंने भूमिका में स्पष्ट रूप से कहा है कि "पूरे मनोयोग से समझने का प्रयत्न करके भी"[४] वे अपने काल की कहानी-कला के विकास को भली-भाँति समझ नहीं सके। १९३३ तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित निराला की यह सहज स्वीकृति उनकी विनम्रता के रूप में देखी जा सकती है। अपने प्रथम संग्रह में ही निराला की इस टिप्पणी का विशेष महत्व है। विशेषकर ऐसे काल में इन कहानियों की रचना की गयी थी जब हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द जैसे शीर्षस्थ कथाकार ने अपना सम्माननजनक स्थान बना लिया था। उस काल में निराला द्वारा कहानियों की रचना करना इस बात को प्रमाणित करता है कि उनके अन्त:करण में कथा-सृजन के बीज भी वर्तमान थे जो समय पाकर पल्लवित-पुष्पित हुए।

'लिली' संग्रह में कुल आठ कहानियाँ हैं जिनका रचनाकाल १९२९-३० है। इनका क्रम इस प्रकार है – (१) पद्मा और लिली (२) ज्योतिर्मयी (३) कमला (४) श्यामा (५) अर्घ (६) प्रेमिका-परिचय (७) परिवर्तन (८) हिरनी। इस संग्रह की प्रथम कहानी 'लिली' के आधार पर ही संग्रह का नाम 'लिली' रखा गया। इससे यह भी आभासित होता है कि निराला को लिली पुष्प सर्वाधिक प्रिय था। 'अर्घ' एवं 'प्रेमिका-परिचय' को छोड़कर बाकी सभी कहानियों के केन्द्र में नारी है। इन कहानियों में नारी-जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का उद्घाटन किया गया है। शहर के रंग-ढंग में पली-बढ़ी आधुनिका हो अथवा ग्राम्य जीवन के सहज-सरल वातावरण में पली ग्रामीण बाला, उच्चवर्गीय ब्राह्मण-कन्या हो अथवा निम्नवर्गीय शूद्र कन्या, विवाहिता, परित्यक्ता आदि सभी किसी-न-किसी रूप में पुरुष समाज द्वारा उपेक्षित, प्रताड़ित रही है। उनकी मनोव्यथा को निराला ने इन कहानियों के माध्यम से वाणी दी है, साथ ही दहेज-प्रथा, वैवाहिक सम्बन्धों में जाति एवं कुल-प्रथा को लेकर आने वाली बाधाएँ आदि का भी कथाकार ने जीवन्त चित्रण किया है। एक विशेष गुण जो निराला के नारी चरित्रों में स्पष्ट परिलक्षित होता है वह यह है कि जहाँ एक ओर ये त्याग, कोमलता, सेवा-परायणता एवं कर्तव्य-निष्ठा की प्रतिमूर्ति हैं तो वहीं दूसरी ओर आवश्यकता पड़ने पर पुरुषों के मुकाबले अधिक सशक्त और प्रभावशाली बन कर उभरती हैं। 'पद्मा और लिली' की नायिका पद्मा संकीर्ण सामाजिक रूढ़ियों से प्रेम की उदात्तता की रक्षा करने के लिए सहर्ष आजीवन कौमार्य का व्रत लेती है वहीं कमला कहानी में परित्यक्ता कमला दंगे के दौरान मुसलमान के घर में रही पति की बहन का विवाह अपने भाई के साथ करने की सहर्ष स्वीकृति दे देती है क्योंकि "आपको उठा लेना ही मेरा धर्म है।"[५]

ज्योतिर्मयी कहानी में विधवा-जीवन की व्यथा-कथा कही गयी है। साथ ही दहेज-समस्या, कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के पाखण्ड और उनकी अर्थ-लोलुपता का ज्वलन्त चित्र खींचा गया है। 'श्यामा' कहानी में सामाजिक वर्ग-वैषम्य उभर कर आया है। इसमें एक ओर जमींदारों के शोषण का वर्णन किया गया है तो दूसरी ओर अछूतोद्धार की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। 'प्रेमिका-परिचय' में कालेज में पढ़ने वाले रंगीन मिजाज मनचले युवकों की प्रेम-लीला का वर्णन किया गया है तो 'परिवर्तन' कहानी की प्रमुख समस्या क्षत्रिय-परिवारों का पारस्परिक वैमनस्य, प्रतिशोध एवं वेश्या-पुत्री के विवाह की है। 'हिरनी' कहानी राजा-रजवाड़ों के अन्तःपुर के दास-दासियों के आपसी ईर्ष्या-द्वेष एवं सामन्तों अत्याचार में पिसती निरीह बालिका के जीवन पर प्रकाश डालती है।

इस संग्रह की कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कथाकार निराला ने युग जीवन की सच्ची झांकी इन कहानियों में प्रस्तुत की है। जीवन के यथार्थवादी चित्रण में लेखक का झुकाव आदर्श की स्थापना की ओर रहा है। अपने व्यक्तिगत जीवन में भी निराला ने रूढ़ियों और आडम्बरों का सदा विरोध किया था। विद्रोह तथा क्रांति के ये तेवर उनकी कहानियों में भी विद्यमान हैं।

इस तरह कहा जा सकता है कि अपने प्रथम कथा-संग्रह द्वारा ही निराला कथाकार के रूप में अपने को स्थापित करने में सफल हो गए थे।

सखी

निराला का द्वितीय कहानी-संग्रह 'सखी' अक्तूबर १९३५ में सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। यह संग्रह प्रिय "मास्टर कन्हैयालाल के परिणय में चारुशीला श्रीमती प्रतिभा देवी को सस्नेह"[५] समर्पित किया गया था। इस संग्रह की कहानियों के बारे में निराला निवेदन में लिखते हैं – "ग्रह-दोष से बरी कोई जीवन नहीं, यह विचार कहानियों के लिए मुझे शंकित करता है, पर जीवन का जैसा साहस भी इनमें है – मुझे विश्वास है।"[६] निवेदन की ये पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि कहानीकार की कहानियों के केन्द्र में सत् और असत् से परिवेष्टित मानव-जीवन ही है। किन्तु जीवन के साहस का भी इनमें उद्घोष है।

प्रथम संग्रह की ही भाँति इसमें भी कुल आठ कहानियाँ संग्रहीत हैं जिनका क्रम इस प्रकार है – (१) सखी (२) न्याय (३) राजा साहब को ठेंगा दिखाया (४) देवी (५) चतुरी चमार (६) स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं (७) सफलता (८) भक्त और भगवान। इन कहानियों का रचनाकाल १९३३-३४ है।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से ये कहानियाँ सामाजिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक कोटियों में रखी जा सकती हैं। 'सखी', 'न्याय', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'चतुरी चमार' और 'सफलता' में सामाजिक स्तर के विविध आयामों को स्पर्श किया गया है। 'देवी' यथार्थवादी धरातल पर रचित दार्शनिक तत्त्व को उद्घाटित करती है तो 'भक्त और भगवान' एवं 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' आध्यात्मिक तत्त्व को अपने में समाहित किए हुए हैं।

'सखी' कहानी के आधार पर संग्रह का नामकरण हुआ है। इस कहानी में धनवान सखी द्वारा निर्धन सखी के लिए त्याग का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर नारियों को भी पुरुष की कुदृष्टि से बचने के लिए किस तरह संघर्ष करना पड़ता है – यह इस कहानी में द्रष्टव्य है।

'न्याय' कहानी में पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार का जीवन्त चित्रण किया गया है। साथ ही यह भी दिखाया गया है कि इन ज्यादतियों के कारण ही आम नागरिक भी अन्याय और अत्याचार मौन होकर देखता-सहता रहता है।

'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' में सामन्ती परिवेश का चित्रण तथा शोषकों द्वारा शोषितों पर बर्बर और अमानवीय अत्याचार दिखाकर समाज के निम्न वर्ग के प्रति लोगों की सहानुभूति जगाने का प्रयास किया गया है।

'देवी', 'चतुरी चमार' और 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' शीर्षक कहानियाँ लेखक के अपने जीवनानुभवों पर आधारित कहानियाँ हैं। संभवत: इन्हीं के विषय में लेखक ने संग्रह के निवेदन में लिखा है – "कुछ कथाएँ ऐसी हैं, जो मेरे जीवन की घटनाओं में से हैं। यदि

इन्हें कथा-साहित्य में स्थान देते हुए साहित्यिक अनुदार न होंगे, तो मैं यह श्रम सार्थक हुआ समझूँगा।''[५] इन तीनों कहानियों में रेखाचित्र-धर्मिता पायी जाती है। इनमें निराला ने अपने संघर्षमय साहित्यिक जीवन के कुछ स्मृति-चित्रों को प्रस्तुत किया है। 'देवी' तथा 'चतुरी चमार' जैसी कहानियाँ जीवन सत्य की अति यथार्थवादी अभिव्यंजना के कारण प्रगतिशील कहानियों में परिगणित की जाती हैं।

'सफलता' कहानी में अछूतोद्धार की समस्या उठायी गयी है। 'भक्त और भगवान' शीर्षक कहानी में निराला ने मानो अपने ही जीवन के मनोवैज्ञानिक विकास को शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है। इस कथा के चरित-नायक निरंजन की भाँति ही निराला का अपना जीवन भी आसक्ति और विरक्ति के भावों से पूर्ण था। अपने महान काव्यों 'तुलसीदास' एवं 'राम की शक्ति-पूजा' की ही भाँति यहाँ विराट दृश्यों की संयोजना द्वारा मन के ऊर्ध्वगमन की प्रक्रिया को दर्शाया गया है।

झेले हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति के कारण ये कहानियाँ वास्तविकता के अधिक नजदीक हैं। यही उनके आकर्षण का कारण भी है। ये जनमानस पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ती हैं। निराला का उद्देश्य कहानी कहना कभी नहीं रहा, वरन् चरित्रों के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रकट करना ही जैसे उनका मुख्य ध्येय था।

सुकुल की बीवी

'सुकुल की बीवी' निराला का तीसरा कहानी संग्रह है जो सन् १९४१ में भारती भण्डार, प्रयाग से प्रकाशित हुआ था। १६ सितम्बर १९४१ को निराला एक पत्र में अपने मित्र श्री कुंवर सुरेश सिंह को लिखते हैं कि ''मेरी 'सुकुल की बीवी' छप गयी है।''[६] इससे यह स्पष्ट होता है कि यह कहानी-संग्रह १९४१ के सितम्बर-अक्टूबर के महीने में पाठकों तक पहुँचा होगा। इस संग्रह में कुल चार कहानियाँ इस क्रम से थीं – (१) सुकुल की बीवी (२) श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी (३) कला की रूपरेखा (४) क्या देखा। संग्रह का नामकरण प्रथम कहानी के आधार पर हुआ था। इस संग्रह के निवेदन में १०.२.४१ को निराला लिखते हैं – ''इसमें तीन कहानियाँ इधर की और अन्तिम 'क्या देखा' मेरी पहली कहानी है जैसा इसकी पादटीका में सूचित है। यह अन्तिम कहानी 'मतवाला' में १९२३ ई० में निकली थी। कुछ परिवर्तन मैंने कर दिया है, पर हृदय-गत भाव वही है। लोगों को एक निर्णय और निश्चय की सुविधा होगी। यह कहानी पहले उत्तम पुरुष से चली है बाद को तृतीय पुरुष में बदल गयी है, यह जितना दोष है, उतना ही गुण। मेरा विचार है, कहानियों से पाठक-पाठिकाओं का मनोरंजन होगा। कथा, साहित्य और कला की प्यास कुछ बुझेगी।''[७] इस भूमिका में निराला ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'क्या देखा' उनकी पहली कहानी है। यह 'मतवाला' के १९२३ई० के २० अक्तूबर, २६ अक्टूबर, १ दिसम्बर, ८ दिसम्बर और १५ दिसम्बर के अंकों में पाँच किस्तों में निकली थी। लेखक की जगह एक छद्म-नाम दिया गया था – 'जनाबअली'। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि इस समय तक कवि के रूप में

निराला साहित्य जगत में स्थापित हो चुके थे किन्तु कथाकार के रूप में वे अपनी सफलता पर शंकित थे। संभवतः इसीलिए इस कहानी के लेखक के रूप में निराला ने 'जनाबअली' यह छद्म नाम दिया होगा।

दूसरी गौर करने लायक बात यह भी है कि इस कहानी से पहले प्रकाशित निराला की एक अन्य कहानी मिलती है 'प्रेमपूर्ण तरंग।' यह कहानी 'मारवाड़ी सुधार' (मासिक, कलकत्ता) के वैशाख संवत् १९८० वि० (मई, १९२३) के अंक में निकली थी। ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन है कि निराला की पहली कहानी कौन सी है। 'निराला रचनावली' के चतुर्थ खण्ड की भूमिका में नन्द किशोर नवल लिखते हैं – "प्रेमपूर्ण तरंग', संभव है, उन्हें पसन्द न आयी हो, इसलिए उसे उन्होंने अपनी पहली कहानी होने का गौरव न प्रदान किया हो। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने इस कहानी को फिर से लिखा और उसे 'प्रेमिका परिचय' शीर्षक दिया।"[१०] जो हो, कहानीकार की स्वीकारोक्ति के अनुसार 'क्या देखा' ही उनकी पहली कहानी है।

'सुकुल की बीवी' की भूमिका में निराला के इस कथन – "कहानियों से पाठक-पाठिकाओं का मनोरंजन होगा"[११] – से यह भी स्पष्ट होता है कि इस तृतीय कहानी संग्रह के निकलने तक कहानीकार के रूप में निराला प्रतिष्ठित हो चुके थे और उनकी कहानियों का एक विशाल पाठक-वर्ग तैयार हो चुका था। किन्तु मात्र मनोरंजन ही उनका लक्ष्य नहीं रहा होगा अतः "कथा, साहित्य और कला की प्यास बुझाने"[१२] का दावा कहानीकार ने किया है।

इस संग्रह की प्रथम दो 'सुकुल की बीवी' तथा 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' एवं अन्तिम 'क्या देखा' कहानी सामाजिक कहानियों के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। 'सुकुल की बीवी' में हिन्दू-मुस्लिम विवाह की समस्या को उठाकर उसका क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' में अनमेल वैवाहिक समस्या एवं धर्म के ढकोसलों पर व्यंगात्मक प्रहार किया गया है। 'क्या देखा' कहानी वेश्या-जीवन की विडम्बना को प्रस्तुत करती है। इस संग्रह की तृतीय कहानी 'कला की रूपरेखा' शीर्षक की दृष्टि से निबन्ध प्रतीत होती है। वस्तुतः यह एक प्रकार का संस्मरण है जिसमें कला की परिभाषा देते हुए कहानीकार ने व्यक्तिगत जीवन के प्रसंगों का उल्लेख किया है।

इस संग्रह की चारों कहानियाँ सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य हैं। इन सभी कहानियों में स्वयं निराला अपने निरालेपन के साथ विद्यमान हैं।

चतुरी चमार

सन् १९४५ ई० में 'चतुरी चमार' नामक कहानी-संग्रह किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। यह नया अथवा स्वतंत्र संग्रह नहीं है बल्कि 'सखी' संग्रह का ही नाम परिवर्तित करके निकाला गया है। इसमें परिवर्तन केवल यह किया गया कि 'सखी' की भूमिका के स्थान पर एक नयी भूमिका जोड़ दी गयी एवं 'चतुरी चमार' कहानी जो 'सखी' संग्रह में पाँचवे स्थान पर थी उसे इस संग्रह में प्रथम स्थान पर कर दिया गया। शेष कहानियों का क्रम पुराना ही है। 'चतुरी

चमार' शीर्षक से कहानी संग्रह को पुन: प्रकाशित करना एवं इसी कहानी को संग्रह में प्रथम स्थान पर रखे जाने का कारण संभवत: यही रहा होगा कि 'सखी' संग्रह की यह कहानी हिन्दी-साहित्य में काफी चर्चित हो चुकी थी। इसका उल्लेख करते हुए निराला 'चतुरी चमार' की भूमिका में लिखते हैं – " 'चतुरी चमार' नाम का कहानी-संग्रह पाठकों के सामने है। पहली कहानी 'चतुरी चमार' की हिन्दी-साहित्य में काफी चर्चा हो चुकी है। आलोचक अनेकानेक निबन्धों में इसकी प्रशंसा कर चुके हैं। संग्रहकार अपने संग्रहों में इसको स्थान दे चुके हैं। पाठक पढ़ने पर इनके तथा अन्य कहानियों के मूल का हिसाब स्वयं लगा लेंगे।"[१४]

'चतुरी चमार' कहानी की इस लोकप्रियता का कारण यही है कि इसमें निराला ने एक अछूत को कहानी के नायक के पद पर आसीन कर शोषित, पीड़ित एवं दलित के प्रति अपनी संवेदना ही नहीं प्रकट की है बल्कि चतुरी को उसके अधिकार का ज्ञान कराके उसे अपनी असाधारण शक्ति से परिचित करा दिया और उस अति साधारण को असाधारण बना कर शूद्रत्व से लोहा लेने और अन्याय से टकराने का साहस प्रदान किया।

एक अन्य उल्लेखनीय बात इस संग्रह के सम्बन्ध में यह कही जा सकती है कि इस संग्रह के निकलने के पूर्व निराला के तीन कहानी संग्रह निकल चुके थे और कहानीकार के रूप में निराला की श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी। अत: कहानीकार का आत्म-विश्वास बड़ी दीप्ति के साथ भूमिका की इन पंक्तियों के माध्यम से प्रकट होता है – "पढ़ने पर पाठकों का श्रम सार्थक होगा, मुझको विश्वास है। भाषा, भाव और विषय के विवेचन में कहानियों के साथ उनका मन पुष्ट होगा। कला अपने आप उनको ऊँचा उठायेगी और मनोरंजन करेगी। उनका श्रम साहित्य-ज्ञानार्जन से सार्थक होगा।"[१५] वास्तव में कला के उत्कर्ष के साथ-साथ मनोरंजन प्रदान करने की अद्भुत क्षमता इस संग्रह की कहानियों में है।

देवी

'देवी' नामक एक अन्य कहानी संग्रह १९४८ ई० में राष्ट्रभाषा विद्यालय, बनारस से प्रकाशित हुआ था। भूमिका के नीचे स्वयं निराला द्वारा दी गयी तिथि १२ अगस्त, १९४८ से स्पष्ट होता है कि यह संग्रह १९४८ के उत्तरार्ध में निकला होगा। 'चतुरी चमार' की ही भाँति यह भी नया अथवा स्वतंत्र संग्रह नहीं है बल्कि अन्य संग्रहों की चुनी हुई कहानियों को इसमें संकलित किया गया है। केवल एक कहानी 'जान की' – ही ऐसी कहानी है जो पहले के किसी संग्रह में नहीं पायी जाती। यह संग्रह निराला ने प्रिय श्री महादेवी वर्मा को समर्पित किया है। देवी की भूमिका में निराला लिखते हैं – "देवी संग्रह प्रस्तुत है, आशा है पाठक पढ़कर प्रसन्न होंगे। हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए इसकी भाषा क्या काम करती है पढ़ने पर समझ में आ जाता है। लिखते जो श्रम किया जाता है उसका पारितोषिक उपेक्षित भाषा-साहित्य के लोग नहीं वितरित कर सके। अब जब देशी भाषा साहित्य की मांग बढ़ी है, आशा है अधिकारी-वर्ग स्कूल में प्रवेश देने का प्रयत्न करेंगे।"[१६] यह भूमिका कतिपय तथ्यों का उद्घाटन करती है। प्रथम तो यह कि

कहानीकार को विश्वास था कि इस संग्रह की कहानियाँ हिन्दी के प्रचार और प्रसार में अपना योगदान देंगी। द्वितीय यह कि इसमें निराला ने उन कृपण आलोचकों के रवैये पर क्षोभ प्रकट करते हुए व्यंग्य किया है जो लेखक के श्रम का उचित पारितोषिक वितरित नहीं कर सके। तीसरी प्रमुख बात जो भूमिका से परिलक्षित होती है वह यह कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देशी भाषा साहित्य की माँग बढ़ने पर स्कूल के पाठ्य-क्रम में स्थान देने की दृष्टि से यह संग्रह संकलित किया गया। इस संग्रह में कुल दस कहानियाँ इस क्रम से रखी गयी हैं (१) देवी (२) भक्त और भगवान (३) चतुरी चमार (४) हिरनी (५) सुकुल की बीवी (६) अर्थ (७) श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी (८) क्या देखा (९) प्रेमिका परिचय (१०) जान की।

यथार्थवादी, रोमांटिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक तथा राजनीतिक शोषण पर व्यंग्य करने वाली इन कहानियों का चयन यह स्पष्ट करता है कि निराला विद्यालयीय स्तर से ही छात्रों के विविधमुखी मानसिक विकास को तैयार कर देने के हिमायती थे।

इनके अलावा निराला लिखित 'देवर का इन्द्रजाल', 'दो दाने' और 'विद्या' ये तीन ऐसी कहानियाँ हैं जो निराला के किसी संग्रह में प्रकाशित नहीं हुईं। 'दो दाने' कहानी बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है जो श्री ब्रह्मदत्त विद्यार्थी द्वारा सम्पादित 'भूखा बंगाल' नामक कहानी संग्रह में संगृहीत है और 'नई कहानियाँ' के दीपावली विशेषांक भाग २, वर्ष २, दिसम्बर १९६१, अंक ८ में उनकी मृत्यु के उपरान्त प्रकाशित हुई थी। 'विद्या' कहानी प्रयाग के मासिक 'निराला' के फरवरी १९६२ के अंक में प्रकाशित हुई थी। दो पात्रों को लेकर संवादात्मक शैली में लिखी गयी यह कहानी निराला के संस्कृत और अंग्रेजी ज्ञान का परिचय देती है। इसमें कहानी का नायक संस्कृत बोलता है और नायिका अंग्रेजी। दोनों के संवादों का अनुवाद निराला ने किया है जो पाद-टिप्पणी में दिया गया है।

'देवर का इन्द्रजाल' निराला के हरफनमौला व्यक्तित्व का परिचय देने वाली एक कहानी है जो लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'चकल्लस' साप्ताहिक के 'भाभी अंक' में १९३८ के उत्तरार्ध में प्रकाशित हुई थी। अपनी उम्र के तेरहवें वर्ष में इन्द्रजाल की एक पुस्तक पढ़कर निराला ने किस तरह अपनी भाभी पर अपने मारन-मोहन और वशीकरण उच्चारन में सिद्ध होने का रौब जमाया – यह कहानी इसी प्रसंग का संकेत देती है। ये तीनों कहानियाँ 'निराला रचनावली' के चतुर्थ खण्ड में संकलित की गयी हैं।

निराला के उपन्यास : एक सर्वेक्षण

अप्सरा

अपनी प्रथम औपन्यासिक कृति 'अप्सरा' के माध्यम से निराला ने उपन्यास सृजन के क्षेत्र में पदार्पण किया। यह उपन्यास लखनऊ से निकलने वाले मासिक पत्र 'सुधा' के छः अंकों (अगस्त, १९३० से जनवरी १९३१ तक) में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था।

पुस्तक रूप में उसका प्रकाशन १९३१ ई० में गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से हुआ। उपन्यास की 'भूमिका' के नीचे स्वयं निराला जी द्वारा दी गई तिथि १ जनवरी १९३१ ई० से स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि यह उपन्यास १९३१ ई० के आरम्भ में ही निकल गया था। उपन्यास का समर्पण अत्यन्त रोचक एवं कलात्मक है। समर्पण में निराला लिखते हैं – "अप्सरा को साहित्य में सबसे पहले मन्द गति से सुन्दर-सुकुमार कवि-मित्र सुमित्रानन्दन पन्त की ओर बढ़ते हुए देखा, पन्त की ओर नहीं। मैंने देखा, पन्त जी की तरफ एक स्नेह-कटाक्ष कर, सहज फिरकर उसने मुझसे कहा, इन्हीं के पास बैठकर इन्हीं से मैं अपना जीवन-रहस्य कहूँगी, फिर चली गयी।"[१०] उपन्यास की भूमिका में 'औपन्यासिक सेठों' पर व्यंग्य करते हुए निराला बड़े विश्वासपूर्वक कहते हैं – "इन बड़ी-बड़ी तोंदवाले औपन्यासिक सेठों की महफिल में मेरी दंशिताधरा 'अप्सरा' उतरते हुए बिलकुल संकुचित नहीं हो रही – उसे विश्वास है, वह एक ही दृष्टि से इन्हें अपना अनन्य भक्त कर लेगी। किसी दूसरी रूपवाली अनिंद्य सुन्दरी से भी आँखे मिलाते हुए वह नहीं घबराती, क्योंकि वह स्पर्द्धा की एक ही सृष्टि, अपनी ही विद्युत से चमकती हुई, चिर सौन्दर्य के आकाश-तत्व में छिप गयी है।"[११] इस भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि निराला को विश्वास था कि उनका यह प्रथम उपन्यास ही अपने वस्तु-संगठन एवं कला-कौशल से लोगों को प्रभावित करेगा, यही नहीं उन्हें अपना अनन्य भक्त बना लेगा। अपने प्रथम उपन्यास की सफलता पर लेखक का यह दृढ़ विश्वास उनकी लेखन-क्षमता को तो उजागर करता ही है साथ ही लेखक के दृढ़ संकल्पशील व्यक्तित्व को भी रेखांकित करता है। यद्यपि उपन्यासकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि "मैंने किसी विचार से अप्सरा नहीं लिखी, किसी उद्देश्य की पुष्टि भी इसमें नहीं। अप्सरा स्वयं मुझे जिस-जिस ओर ले गयी, दीपक-पतंग की तरह मैं उसके साथ रहा। अपनी ही इच्छा से अपने मुक्त-जीवन-प्रसंग का प्रांगण छोड़ प्रेम की सीमित, पर दृढ़ बांहों में सुरक्षित, बंध रहना उसने पसन्द किया।"[१२] फिर भी "प्रासंगिक काव्य, दर्शन, समाज, राजनीति आदि की कुछ बातें चरित्रों के साथ व्यावहारिक जीवन की समस्या की तरह आ पड़ी हैं, वे अप्सरा के ही रूप-रुचि के अनुकूल हैं।"[१३] उपन्यास में वेश्या-जीवन की करुण-स्थिति के चित्रण के साथ-साथ उसके आत्म-त्याग, वैभव-विलासिता पूर्ण जीवन त्याग कर कुलवधू बनने की चाह का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित के विचार द्रष्टव्य हैं – "लेखक ने नारी-हृदय के नैसर्गिक सौंदर्य का यहाँ दिग्दर्शन कराया है। समाज की दृष्टि में वेश्या निष्ठाविहीन, अविश्वसनीय या छलना मानी जाती है, किन्तु निराला का निष्कर्ष है कि वेश्या के हृदय में भी स्त्रियोचित सौकुमार्य, उत्सर्ग और विशुद्ध प्रणय होता है। इस पात्री के चित्रण द्वारा उसने वेश्या में दिव्य भावनाओं की अन्तर्व्याप्ति निरूपित की है और उन्हें उपेक्षा के स्थान पर व्यापक सहानुभूति अर्पित की है जो सर्वथा सराहनीय है।"[१४] उपन्यास में प्रसंगवश देश की तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया गया है। छायावादी रूमानी स्वर की प्रधानता होने पर भी इसका महत्व इस दृष्टि से अत्यधिक है कि इसमें निराला ने "एक वैचारिक क्रांति का सूत्रपात

किया है तथा युग-चित्रण की झलकियों के परिप्रेक्ष्य में अपने विचारों और मन्तव्यों को एक नई दिशा एवं गति दी है।"[२२]

अलका

अप्सरा के बाद निराला का दूसरा प्रमुख उपन्यास 'अलका' है। "अलका में छायावादी भाव-वृत्ति से अवगुंठित प्रणय की हृदयस्पर्शी कथा है, जो आदर्श प्रेम के सम्बन्ध में लेखक की वैयक्तिक धारणा स्पष्ट करती है।"[२३] उपन्यास के आरम्भ में "लेखक का कथन घटनाओं में सत्य होने के कारण स्थानों के नाम कहीं-कहीं नहीं दिये गए"[२४] स्पष्ट करता है कि उपन्यास में कल्पना के साथ-साथ यथार्थ का सम्मिश्रण हुआ है। 'अलका' वास्तव में 'अप्सरा' पर कसी गई आवाजों की प्रतिक्रिया है जैसा कि लेखक ने कृति की भूमिका 'वेदना' में लिखा है – "मेरे जिन प्रिय पाठकों ने 'अप्सरा' को पढ़कर साहित्य के सिर बराबर वैसी ही बिजली गिराते रहने की मुझे अनुपम सलाह दी, या जिन्होंने 'अप्सरा' को चुपचाप हृदय में रखकर मेरी तरफ से आँखें फेर लीं, अथवा जिन्हें अप्सरा द्वारा पहले-पहले इस साहित्य के मुख पर मन्द-मन्द प्रणय-हास मिला, मुझे विश्वास है, वे अलका को पाकर विरही यक्ष की तरह प्रसन्न होंगे और अण्डे तोड़कर निकलने से पहले खड़खड़ाते हुए जिन्होंने मुझ पर आवाजें कसीं, वे एक बार देखें, उनके सम्राटों द्वारा अनधिकृत साहित्य की स्वर्ग-भूमि में मैंने कितने हीरे-मोती उन्हें दान में दिये।"[२५]

'अप्सरा' के पश्चात् 'अलका' में निराला ने वस्तुगत एवं शिल्पगत नवीन प्रयोग किया है। वे 'हिन्दी के नवीन-पथ' से पाठकों को परिचित कराने के लिए कृत-संकल्प दिखाई देते हैं। स्वयं निराला का कथन है – "हिन्दी के पाठक, साहित्यिक और आलोचक 'अलका' को अलकों के अन्धकार में न छिपाकर उसकी आँखों का प्रकाश देखेंगे कि हिन्दी के नवीन पथ से वह कितनी दूर तक परिचय कर सकी है।"[२६]

'अलका' का कथानक नारी जीवन के आदर्शों, आपदाओं के साथ-साथ कृषक जीवन की करुण-विडम्बना भी प्रस्तुत करता है। यहाँ निराला यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। डा० रामविलास शर्मा का निराला की यथार्थ-प्रियता को लक्ष्य कर कथन है कि – "यह स्पष्ट है कि यह उपन्यास निराला जी के जीवन में संक्रमण-काल का द्योतक है, वे इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि उनकी रोमांस की दुनिया ज्यादा दिन न चलेगी। अपनी कला के विकास के लिए जनता की दुःख-दर्द की तस्वीरें खींचना जरूरी है।"[२७]

इस उपन्यास के पूर्व 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' शीर्षक अपने निबन्ध में निराला ने नारी जाति की अधोगति के कारणों का सम्यक् विवेचन करते हुए स्त्री-स्वातंत्र्य, उनमें शिक्षा की अनिवार्यता, सामाजिक प्रबुद्धता का प्रबल समर्थन किया है। इस निबन्ध में व्यक्त उनके विचारों का जीवन्त रूप 'अलका' उपन्यास में देखा जा सकता है। बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा का कथन है– "'अलका' उपन्यास लिखने से पूर्व देशव्यापी सामाजिक अधोगति, विशेषकर नारी-जाति की विषम-स्थिति का जो सजीव चित्र अपने निबन्धों के माध्यम से निराला जी ने उपस्थित किया है

तथा इनके निस्तार का जो उपाय इनके मस्तिष्क में आया है उसका कथात्मक वर्णन बड़ी कुशलता के साथ उन्होंने अलका शीर्षक उपन्यास में किया है।"[२८]

उपन्यास का आरम्भ प्रथम महायुद्ध के अन्त के पश्चात् उत्पन्न महाव्याधि के भयावह वर्णन से हुआ है। यहाँ निराला की स्वानुभूति समाविष्ट है। स्वयं निराला को भी इस विभीषिका का सामना करना पड़ा था तथा भयंकर महामारी के कारण उनका बड़ा परिवार काल-कवलित हो गया था। इसका स्पष्ट वर्णन उन्होंने 'कुल्लीभाट' में किया है। अपनी आंखों-देखे एवं स्वानुभूत इसी भयावह दृश्य का अत्यन्त मार्मिक तथा हृदयग्राही चित्रण निराला ने 'अलका' उपन्यास में कुछ इस प्रकार किया है– "महासमर की जहरीली गैस ने भारत को घर के धुएँ की तरह घेर लिया है, चारों ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय। युक्त-प्रान्त में इसका और भी प्रकोप, गंगा, यमुना, सरयू, बेतवा, बड़ी-बड़ी नदियों में लाशों के मारे जल का प्रवाह रुक गया है। ....गंगा के दोनों ओर दो-दो हजार तक लाशें पहुँचती हैं। जलमय दोनों किनारे शवों से ठसे हुए, बीच में प्रवाह की बहुत ही क्षीण-रेखा, घोर दुर्गन्ध, दोनों ओर एक-एक मील तक रहा नहीं जाता। ....मकान ....के ....मकान खाली हो गये। एक परिवार के दस आदमियों में दसों के प्राण निकल गये। कहीं कहीं घरों में ही लाशें सड़ती रहीं। यह सब नृशंस महामृत्यु-ताण्डव पन्द्रह दिनों के अन्दर हो गया। भारत के साठ लाख आदमी काम आये।"[२९]

पराधीनताजन्य विवशता का करुण चित्र तब उपस्थित होता है जब सरकार द्वारा जंग फतह के उपलक्ष में आनन्द मनाने की सरकारी घोषणा की जाती है। इस स्थिति का बड़ा मर्मस्पर्शी एवं यथार्थ चित्रण निराला ने किया है। "पति के शोक में सद्यः विधवा, पुत्र के शोक में दीर्ण माता, भाई के दुःख में मुरझाई बहन और पिता के प्रयाण से दुःखी असहाय बाल-विधवाओं ने दूसरी विपत्ति की शंका कर काँपते हुए शीर्ण हाथों से दिये जला जलाकर द्वार पर रक्खे और घरों के भीतर दुःख से उभड़-उभड़ कर रोने लगीं।"[३०]

उपन्यास की नायिका शोभा पर भी प्रकृति की मार पड़ती है। माता-पिता के देहान्त के पश्चात् असहाय शोभा की ओर जिलेदार महादेव प्रसाद सहानुभूति एवं सहयोग का हाथ बढ़ाते हैं एवं उसे अपने घर में आश्रय देते हैं। वे शोभा को अवध के नामी ताल्लुकेदार बाबू मुरलीधर के हाथ बेचने का षडयन्त्र रचते हैं किन्तु अपनी सखी राधा द्वारा इस षडयन्त्र की जानकारी होने पर शोभा रात्रि के गहन अन्धकार में चुपचाप वह घर छोड़कर चली जाती है। दूसरे दिन ब्राह्म-मुहूर्त में टहलने जाते समय शोभा को मूर्छित पड़ी देखकर स्थानीय जमींदार पण्डित स्नेहशंकर उसे अपने घर में आश्रय देते हैं एवं उसकी सघन केश-राशि देखकर उसका नया नामकरण अलका करते हैं। उनके संरक्षण में अलका का सर्वांगीण विकास होता है। उसके शील समन्वित सौन्दर्य, उच्च संस्कारों एवं प्रतिभा से प्रभावित होकर निस्संतान कमिश्नर साहब उसे स्नेहशंकर जी से मांग लेते हैं तथा पुत्री रूप में स्वीकार करते हैं। यहीं प्रभाकर का रूप धारण किए हुए अपने पति विजय से शोभा की मुलाकात होती है जो उसके भाग जाने की खबर पाकर संन्यास-ग्रहण कर अपने मित्र अजित के साथ देश-सेवा का व्रत ले ग्रामवासियों के कल्याण के लिए कार्य करता फिर रहा था।

उसके समाज-सेवा के कार्य से प्रभावित होकर अलका भी उसकी नैश-पाठशाला में प्रतिदिन दो घण्टे कुलियों की स्त्रियों को पढ़ाना स्वीकार कर लेती है।

इसी बीच महादेव प्रसाद एवं राजा मुरलीधर अलका बनी हुई शोभा को पहचान कर एक रात्रि अकेली आती हुई शोभा के अपहरण का प्रयास करते हैं। अपनी आत्म-रक्षा के लिए शोभा पिस्तौल से राजा मुरलीधर की हत्या कर देती है। पिस्तौल वापस लेने के लिए आने पर विजय का मित्र अजित इसे पहचान जाता है एवं यह रहस्योद्घाटन होता है कि प्रभाकर कोई और नहीं बल्कि शोभा का पति विजय ही है। इस तरह अत्यन्त नाटकीय स्थितियों में उपन्यास का सुखद समापन होता है।

प्रभावती

निराला का तृतीय उपन्यास 'प्रभावती' १९३६ ई० में सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संस्करण में श्री रूपनारायण पाण्डेय की भूमिका है, उसके नीचे १७ फरवरी, १९३६ की तिथि दी गयी है। स्वयं निराला ने पुस्तक के 'समर्पण' के नीचे १ मार्च १९३६ की तिथि दी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास १९३६ ई० के पूर्वार्ध में प्रकाशित हुआ था। १७ अप्रैल, १९३६ को निराला ने आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री को एक पत्र में लिखा है – " 'सखी' और 'प्रभावती' मेरे पास रखी है, पर मैं भेज नहीं सकता।"[११] इससे भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। यह उपन्यास उन्होंने अपनी सलहज को समर्पित किया जिन्होंने निराला के पुत्र और पुत्री को बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा था। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए निराला 'समर्पण' में लिखते हैं –

"प्रिय बीबी,

बहुत दिन हुए – अट्ठारह वर्ष, - पन्द्रह वर्ष की तुम नववधू होकर घर आयी हुई थीं, जहाँ बिना माँ के दो शिशुओं की सेवा में तुम्हें श्रृंगार की साधना का समय नहीं मिला, तुम्हारे ऐसे हस्त संसार के किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नहीं किये जा सकते, मैं केवल अपनी प्रीति के लिए वहाँ यह पुस्तक न्यस्त करता हूँ, जानता हूँ, कालिदास भी तुम्हें 'वीणा-पुस्तक-रंगित-हस्ते' नहीं कर सकते, क्योंकि तुम तब से आज तक 'शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला' हो।"[१२] यह अत्यन्त भावपूर्ण समर्पण स्पष्ट करता है कि सरस्वती के इस उपासक के पास किसी को कृतज्ञता-स्वरूप देने के लिए हृदय की निश्छल भावना के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। 'प्रभावती' ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें कान्यकुब्जेश्वर सम्राट जयचन्द के शासन काल का चित्रण किया गया है। इसके कथ्य एवं शिल्प के विषय में चर्चा करते हुए उपन्यास के प्रथम संस्करण की भूमिका में निवेदन करते हुए निराला लिखते हैं – "ध्वंसावशेषों पर कुछ सत्य और कुछ कल्पना का आश्रय लिया गया है, जैसा ऐतिहासिक रोमांस के लिए प्रचलित है। भाषा खड़ी बोली, खिचड़ी शैली में होने पर भी, कुछ अधिक मार्जित है, प्राचीनता का वातावरण रखने के लिए। अपढ़ लोगों के वार्तालाप में अवधी मिली है।"[१३] 'निराला रचनावली' के तृतीय

भाग में उपन्यास की विषय-वस्तु का संकेत देते हुए नन्द किशोर नवल लिखते हैं – ''प्रभावती निराला का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह पृथ्वीराज – जयचन्दकालीन उत्तर भारत के राजाओं के आपसी संघर्ष को लेकर लिखा गया है, जिसका कारण प्राय: विवाह और कन्यादान हुआ करता था। उसमें एक पक्ष वीर नारियों का था, यह दिखलाना निराला का उद्देश्य है। उन्होंने इस उपन्यास में यमुना, प्रभावती, विद्या, रत्नावली आदि ऐसी तरुणियों का वर्णन किया है, जो नैतिकता के लिए जान पर खेलती रहीं। ये भारत की वीर नारियाँ हैं। ऐसे चरित्रों के निर्माण के पीछे भारतीय परम्परा का गहरा ज्ञान तो है ही, आधुनिकता की – नारी-उत्थान के आन्दोलन की – गहरी चेतना भी है।''[१९] डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित इसे 'ऐतिहासिक उपन्यास' की अपेक्षा 'औपन्यासिक इतिहास' कहना अधिक उपयुक्त मानते हैं क्योंकि ''लेखक का आग्रह प्रमुख रूप से अपने लोक-जीवन का इतिहास चित्रित करने का है, उपन्यास तो केवल साधन मात्र है। डलमऊ का किला, लालगढ़ और कान्यकुब्ज शासनाधीन बैसवाड़े का यह प्रदेश लेखक के अंतरंग जीवन तथा उसके पुरादर्शवाद का प्रतीक है।''[२०] इस उपन्यास में आंचलिकता का गहरा रंग सहज ही देखा जा सकता है। तत्कालीन राजनीति, समाज और धर्म कथा के साथ-साथ चले हैं। डा० नरपत चन्द सिंघवी मानते हैं कि ''प्रभावती के माध्यम से निराला ने वर्तमान युग को कुछ प्रेरणाएं एवं अर्थपूर्ण संकेत प्रदान किए हैं जो भावी इतिहास-निर्माण में सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं तथा दुर्बलताओं पर विजय प्रदान करने की शक्ति दे सकते हैं।''[२१]

निरुपमा

'अप्सरा', 'अलका' और 'प्रभावती' की परम्परा में निराला का चतुर्थ उपन्यास 'निरुपमा' है। इसका प्रकाशन १९३६ में भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से हुआ। इसके 'समर्पण' में स्वयं निराला द्वारा २१ मार्च, १९३६ की तिथि दी गयी है। इस तिथि को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह १९३६ के पूर्वार्ध में बाहर आया था किन्तु आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखे एक पत्र से यह धारणा गलत साबित होती है। १९ जून १९३६ को शास्त्री जी को एक पत्र में निराला ने स्पष्ट लिखा है – '' 'गीतिका' छप रही है सरस्वती प्रेस में भारती भण्डार द्वारा, 'निरुपमा' भी लीडर प्रेस में।''[२२] ७ नवम्बर को लिखे पत्र में वे सूचना देते हैं – '' 'गीतिका' कल तैयार हो जायगी, 'निरुपमा' हो चुकी है।''[२३] इससे यह स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास १९३६ के अन्त में प्रकाशित हुआ। निरुपमा के आरम्भिक दो परिच्छेद १६ जनवरी, १९३४ की 'सुधा' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। इस उपन्यास का 'समर्पण' बड़ा ही काव्यात्मक है। 'समर्पण' में निराला लिखते हैं – ''मेरे कलकत्ते के काव्यप्रसून को मिली प्रिय श्री दयाशंकर बाजपेयी की स्नेह-सुषमा को।''[२४] अपने मित्रों, सहयोगियों के प्रति यह स्नेह एवं कृतज्ञता का भाव निराला जैसे महान व्यक्तित्व के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। 'निवेदन' में निराला द्वारा लिखे गये इस वाक्य – ''हिन्दी के उपन्यास साहित्य को 'निरुपमा' मेरी चौथी भेंट है''[२५] से स्पष्ट होता है, यह उनका चतुर्थ उपन्यास है। भाषा और भावों का लच्छेदार वर्णन इस

उपन्यास का एक प्रमुख वैशिष्ट्य है जैसा कि 'निवेदन' में निराला कहते हैं– "आलोचक साहित्यिक जिन महानुभावों ने उठने की कसम खायी है भाषा और भावों के लच्छेदार वर्णन के संबंध में, उनके लिये मैं स्वयं उतर आया हूँ।"[१] यही नहीं बल्कि उपन्यासकार ने उन सहृदय पाठकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है जिन्होंने उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों का वास्तविक आकलन किया – "जिन्होंने 'अप्सरा' और 'अलका' आदि की तारीफ में मुझे उपन्यास-साहित्य का आधुनिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया है और मूल्य आँकते-आँकते अमूल्यता तक पहुँच गये हैं, उनकी मानसिक उच्चता के सामने कृतज्ञ मैं अत्यधिक संकुचित हूँ, पर निरुपमा के संकुचित होने का कोई कारण नहीं। मुझे विश्वास है, वह उन्हें निरुपम सौन्दर्य और संस्कृति देकर प्रसन्न कर सकेगी।"[२] उपन्यास की कथा का विस्तार ग्राम से शहर तक हुआ है। इस विराट फलक में ग्रामीण जीवन की विवशता, करुणा, जमींदार वर्ग का प्रभुत्व और शोषण, अन्ध विश्वास, सामाजिक जीवन की तमाम रूढ़ियों के साथ-साथ शहरी जीवन के अमृत और विष दोनों का ही सम्यक् चित्रण मिलता है। उपन्यास के अन्त में बंगला-भाषी समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली नायिका निरुपमा एवं हिन्दी समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले डा० कुमार का परिणय करा कर निराला ने दो भिन्न समाजों को एक सूत्र में बांधने का कार्य तो किया ही साथ ही अन्तर्जातीय विवाह प्रथा के प्रचलन का संकेत भी दिया है और इस तरह अपने लिए हुए "भिन्न दो समाजों के विषय, हिन्दी के अपरिचय के कारण, यद्यपि विष ही होना चाहते थे, फिर भी यथा साध्य उसे अमृत बनाने की कोशिश की है।"[३]

चमेली

'चमेली' निराला का अधूरा उपन्यास है जिसके कुछ अंश 'रूपाभ' मासिक, कालाकाँकर में फरवरी १९३९ में प्रकाशित हुए। इसकी नायिका चमेली के माध्यम से निराला ने ग्रामीण नारी के चिर शोषण और विद्रोह को वाणी दी है। केवल दो अंकों वाले मात्र आठ पृष्ठों के इस अधूरे उपन्यास में जमींदारों के शोषण, विधवा नारी की विवशता एवं करुणा, सिपाही वर्ग के जुल्म एवं समाज के तथाकथित उच्च वर्ग की व्यभिचार वृत्ति एवं कुत्सा का घोर यथार्थवादी चित्रण मिलता है। आंचलिकता का तत्व इस उपन्यास में उभरा है। यदि यह उपन्यास पूरा हो गया होता तो निश्चय ही 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' की परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी होता किन्तु इस अपूर्ण उपन्यास में भी निराला ने ग्रामीण जीवन की आत्मा के दर्शन करा दिए हैं।

इन्दुलेखा

'इन्दुलेखा' निराला कृत अपूर्ण उपन्यास है। यह कुल तीन अंकों तक ही लिखा जा सका। इसके कुछ अंश पटना से निकलने वाले 'ज्योत्सना' मासिक के 'दीपावली अंक' में १९६० ई० में प्रकाशित हुए। इस उपन्यास की नायिका इन्दु के चरित्र के माध्यम से संभवतः निराला उच्च शिक्षा प्राप्त युवती की वैवाहिक समस्याओं का उद्घाटन करना चाहते थे, किन्तु अपने जीवन के परवर्ती काल में शारीरिक और मानसिक व्याधियों से घिरे रहने के कारण अथवा

प्रकाशकों से रुपये के मामले में कटुता हो जाने के कारण उन्होंने इस नये उपन्यास का पटाक्षेप कर दिया। परवर्ती उपन्यासों के अपूर्ण रह जाने के सम्बन्ध में डा० रामरतन भटनागर के विचार द्रष्टव्य हैं – "यह संभव है कि वह अपनी प्रकृति को प्रगतिवाद की ओर अंतरंगत: नहीं मोड़ सके और जीवन की क्षुद्रताओं के प्रति ग्लानि से भरकर उन्होंने अपनी लेखनी में विराम लगा दिया।"[४४]

चोटी की पकड़

'चोटी की पकड़' उपन्यास का प्रकाशन १९४६ ई० में किताब महल, इलाहाबाद से हुआ। यह उपन्यास 'श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी महाराज की पुण्य स्मृति में उन्हें समर्पित' किया गया था। इसकी भूमिका में निराला उपन्यास की पृष्ठभूमि और उसके कुछ चरित्रों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं – " 'चोटी की पकड़' आपके सामने है। स्वदेशी-आन्दोलन की कथा है। लम्बी है, वैसी ही रोचक। पढ़ने पर आपकी समझ में आ जायगा। युग की चीज बनायी गयी है। जितना हिस्सा इसमें है, कथा का हिसाब उससे समझ में आ जायगा। इसकी चार पुस्तकें निकालने का विचार है। मुमकिन, दूसरी इससे कुछ बड़ी हो। चरित्र इसमें मुन्ना बांदी का निखरा है। अगले में प्रभाकर का। इस बड़े उपन्यास को पढ़ियेगा तो ज्ञान और आनन्द वैसे ही बढ़ेंगे।"[४५] जैसा कि भूमिका से स्पष्ट है यह स्वदेशी-आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इस वृहत् उपन्यास को निराला चार खण्डों में निकालना चाहते थे किन्तु अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे ऐसा करने में असमर्थ रहे। फलत: सिर्फ एक ही खण्ड लिखा गया। इसमें ह्रासोन्मुख सामन्ती सभ्यता की बाह्य तड़क-भड़क एवं आंतरिक विकृति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। तत्कालीन भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियाँ बंग-भंग, स्वदेशी एवं असहयोग-आन्दोलन की पृष्ठभूमि में सामन्ती समाज के पतन के कारणों का भी कुशलतापूर्वक वर्णन किया गया है। तत्कालीन समाज में बढ़ती अपराध एवं पापाचार की प्रवृत्तियों के मूल में अर्थ-लिप्सा रही है - यह संकेत उपन्यासकार ने दिया है।

सामन्ती युग में राजप्रासादों में होने वाले षडयन्त्रों, महलों में रहने वाली स्त्रियों की ऐयारी और दुश्चरित्रता, बांदियों के कुचक्र आदि के सूक्ष्म एवं व्यापक चित्रण इस बात का संकेत देते हैं कि ये कोरे वर्णन मात्र नहीं बल्कि महिषादल में रहते हुए निराला द्वारा देखे, भोगे एवं अनुभव किए गए यथार्थ का ही जीवन्त रूप है।

उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र राजा महेन्द्र प्रताप की एजाज वेश्या के प्रति आसक्ति जहाँ राजाओं की स्वेच्छाचारिता को दर्शाती है वहीं रानी साहिबा एवं मुन्ना बांदी के कुचक्र राजमहलों के अनैतिकतापूर्ण और विलासी वातावरण में रहने वाली महिलाओं की चरित्रहीनता को प्रकट करते हैं। बुआ के माध्यम से उस सरल और निष्कपट स्त्री का वर्णन किया गया है जो मुन्ना और रानी साहिबा के कुचक्रों से किसी प्रकार अपने वैधव्य को कलंकित होने से बचाती है और प्रभाकर के देश-प्रेम की भावना से अनुप्राणित हो आजीवन देश-सेवा का संकल्प लेती है।

उपन्यास का अन्य उल्लेखनीय चरित्र प्रभाकर है। इसके बारे में उपन्यासकार ने 'भूमिका'

में संकेत दिया है कि 'अगले खण्ड में प्रभाकर का चरित्र उभरेगा'। यों तो उपन्यास का बाकी अंश लिखा ही नहीं गया किन्तु फिर भी इसी खण्ड के उत्तरार्ध में उसका चरित्र उभरने लगता है। यह आदर्श चरित्र अपनी सेवा-भावना, स्वदेश-निष्ठा, दृढ़ संकल्प एवं शालीनता से उपन्यास के अन्य सभी पात्रों को प्रभावित तो करता ही है साथ ही रानी साहिबा एवं मुन्ना के चारित्रिक कालुष्य को भी धीरे-धीरे दूर करता है। लेखक ने उसके व्यक्तित्व का आरम्भिक परिचय इस प्रकार दिया है– ''देश-प्रेम जुआ था। रोशनी पश्चिम का बानिज। स्वामी विवेकानन्द की वाणी लोगों में वह जीवनी ले आई, खास तौर से युवकों में, जिससे आदर्श के पीछे आदमी जग कर लगता है। प्रभाकर राजनीति में इसी का प्रतीक था।''[46] स्वामी विवेकानन्द से निराला स्वयं भी अत्यधिक प्रभावित थे इसका संकेत वे अपनी कुछ कहानियों में दे चुके हैं।

उपन्यास में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह उभर कर आया है कि मुसलमानों ने अतीत में हिन्दुओं पर जो शासन किया, अपनी राजनीतिक प्रबुद्धता से उसी मजहबी हुकूमत के स्वप्न को पुन: सार्थक करने के लिए षडयन्त्र रचकर अंग्रेजों को अपने अनुकूल बनाया और इस तरह भारत के विभाजन के बीज बोए।

देश के इस राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पतन की स्थितियों के बीच प्रभाकर का चरित्र नवयुग की प्रतिष्ठा के लिए संकल्प की ज्वाला-सा उभरता है। उसके इन शब्दों में लेखक की ही राष्ट्रीयता की स्पष्ट झलक दिखाई देती है– ''स्वदेशी का, देश-प्रेम का जितना प्रचार होगा, देशवासियों का कल्याण है।''[47]

इस उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा, रोचक संवाद, जीवन्त वातावरण-निर्माण एवं परिस्थिति-सर्जना द्वारा उपन्यास के घटना-क्रम एवं कथानक को गतिशीलता प्रदान की गयी है। डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार– ''इस कृति में राष्ट्रीय सुधार का स्पष्ट आश्वासन है और जागरण का सन्देश भी।''[48]

डा० रामरतन भटनागर मानते हैं कि ''निराला के कथा-साहित्य का संबंध दो भाव-स्तरों से है। चार उपन्यास (प्रभावती, अप्सरा, अलका, निरुपमा) आदर्शवादी-स्वच्छंदतावादी प्रेरणा को लेकर लिखे गये हैं और शेष दो (काले कारनामे, चमेली) यथार्थवादी प्रगतिवादी भूमिका पर से। 'चोटी की पकड़' इन दोनों का संधि-स्थल है।''[49]

श्री गंगाधर मिश्र के अनुसार– ''यदि तटस्थतापूर्वक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक किसी भी दृष्टि से देखा जाय, तो निराला का 'चोटी की पकड़' उपन्यास हिन्दी के चोटी के उपन्यासों में शीर्ष स्थान पर दिखाई देता है।''[50]

काले कारनामे

'काले कारनामे' निराला कृत अपूर्ण उपन्यास है जिसका प्रथम संस्करण १९५० में कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग से निकला था। इसका प्रकाशन संभवत: १९४५ में आरम्भ हो गया था। अपने सुपुत्र पं० रामकृष्ण त्रिपाठी को २३ अगस्त १९४५ को लिखे पत्र में निराला स्पष्ट

लिखते हैं "काले कारनामे एक उपन्यास लिख रहे हैं।" इसी तरह १९ नवम्बर १९४५ को डा० रामविलास शर्मा को लिखे एक पत्र में निराला ने लिखा है "'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' दो उपन्यास छप रहे हैं। जनवरी के आखिर तक निकल जायेंगे, अलग-अलग प्रकाशनों से।"[५] इस तरह पाँच वर्षों के विलम्ब से निकलने के पश्चात् भी कृति की अपूर्णता का कारण संभवतः लेखक की शारीरिक अस्वस्थता और मानसिक असंतुलन था। इसके प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रकाशक ने लिखा है : "निराला जी की अस्वस्थता के कारण यह उपन्यास काफी दिनों से अधूरा पड़ा था। इस भय से कि कहीं निराला जी की यह नवीन कृति अन्धकार में ही विलुप्त न हो जाय, हम इसे इसी रूप में पाठकों के समक्ष रख देना अपना एक पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं। प्रथम संस्करण में परिच्छेदों के शीर्षक पहिली नजर, दूसरी नजर इस तरह रखे गये थे।"[६] कुल इकीस नजरों में विभक्त यह रचना जमींदारों के आपसी वैमनस्य, उनकी धोखाधड़ी, निराह जनता के शोषण, ग्रामीणों की पारस्परिक दलबन्दी, पुलिस थाने की ज्यादतियों तथा भारतीय समाज में कोढ़ की तरह व्याप्त जाति-प्रथा जैसी ज्वलन्त समस्याओं का पर्दाफाश करती है। यह उपन्यास जमींदारों के काले कारनामों का दर्पण कहा जा सकता है। कृति अपूर्ण होते हुए भी एक क्रान्तिकारी प्रभाव छोड़ने में सक्षम है और लेखक की ग्राम्य-जीवन के शरीर और आत्मा को पहचानने वाली सूक्ष्म दृष्टि का उद्घाटन करती है। ग्राम्य जीवन के काले कारनामों का उद्घाटन करने के लिए लेखक ने रामरखन, यमुनाप्रसाद, माधव मिश्र जैसे प्रतिनिधि चरित्रों की अवतारणा की है जो अपने छल-कपट से गाँव-वालों में आपसी वैमनस्य का बीज बो देते हैं और निरीह जनता को अपने कुचक्रों के जाल में फँसाकर उनसे मनमाना धन वसूलते हैं। थानेदार, हाकिम, सिपाही आदि भी उन्हीं से मिले होते हैं। इस कुशासन पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहते हैं – "जिस तरह चोरी का न होना एक सरकार का धर्म है, उसी तरह चोरी का होना भी उसका धर्म है कहा जा सकता है, जबकि लोगों की माली हालत के सुधार का तरीका ही उलटा है, जमींदारों के बढ़प्पन की साख चलती है, विलायत की नोबिलिटी का देश पर सिक्का है। इस तरह, एक थाने में हर रात चोरियाँ होती रहती हैं, कुछ लिखी जाती हैं, कुछ नहीं।"[७] मनोहर के रूप में एक उत्साही कर्मठ, साहसी युवा का चित्रण किया गया है जो जमींदारों के कुचक्रों का शिकार होता है एवं उनके मायाजाल को काटकर काशी में जाकर शूद्रों के लिए संस्कृत की शिक्षा का आयोजन करता है। वह सामाजिक वैचारिकता को चुनौती देता है और उसे इस कार्य के लिए प्रेरित करती है उसकी माँ जिसके हृदय में नारी के अपमान के कारण बदले की आग धधकती रहती है। पुत्र के सामने प्रकट किए गए उसके ये उद्गार उसके हृदय की ज्वाला को ही प्रकट करते हैं – "बेटा, मुझको विश्वास है कि तू मेरे दूध की लाज रखेगा और इन कामों की तह तक पहुँचकर इनकी जंजीर तोड़ने के काम आयेगा। .... हम एक मुद्दत से यह कसाले झेल रहे हैं। मुसलमानी जमाने से जो अपमान होते आये हैं .... मजबूरी के सिवा मरदों के हाथों उनके और भी जो अपमान होते हैं वे सैकड़ों बिच्छुओं के डंक मारने से ज्यादा जलन वाले और जहरीले हैं। मरदों की आँख के नीचे उनके अपमान हुए हैं और मरदों के हाथ-पैर नहीं चले।"[८]

प्रसंगवश लेखक ने वर्तमान भारतीय समाज में बढ़ती हीनता का भी वर्णन किया है – "हमारा समाज इस तरह स्वत्वहीन गुलामों का एक समाज हो रहा है।"[५]

लेखक की व्यंजना इतनी प्रौढ़ है और भाषा इतनी प्रभावशाली कि उपन्यास अपूर्ण होते हुए भी अपने उद्देश्य की स्पष्ट छाप जनमानस पर छोड़ जाता है।

गाँवों में जमीन के चप्पे-चप्पे पर जमींदार का नाम लिखा होता है। अत: एक इलाके के जमींदार की रियाया दूसरे इलाके में बिना उस इलाके के जमींदार की सहमति के पैर नहीं रख सकती। ऐसे में स्थिति कभी – कभी बड़ी भयावह हो जाती है क्योंकि "जमींदार की जात ब्रह्म-राक्षस से बढ़कर है जिससे पीछा कभी नहीं छूटता।"[६]

लेखक इन स्थितियों को देखकर अत्यन्त त्रस्त थे। समाज में फैले कुचक्र और विषमता के इस जाल को काटने के लिए विद्रोही निराला हमेशा व्यग्र रहते थे। मनुष्य-मनुष्य के बीच बढ़ते भेद-भाव की पीड़ा हमेशा लेखक के संवेदनशील हृदय को सालती रही तभी तो मनोहर के चिन्तन के माध्यम से स्वयं लेखक की आकुलता इन शब्दों में फूट पड़ती है – "दुनिया में लोग एक-दूसरे से इस तरह क्यों नहीं मिलते कि छोटे-बड़े का भेद-भाव भूल जाय, एक दूसरे के गले-लगे दोस्त हों, गर्दन नापने वाले दुश्मन नहीं।"[७]

निराला के रेखाचित्र : एक सर्वेक्षण

कुल्लीभाट

'कुल्लीभाट' संस्मरणात्मक रेखाचित्र है। निराला के सम्पूर्ण कथा-साहित्य में यह अपने ढंग की अनूठी कृति है। इसका पुस्तक रूप में प्रकाशन १९३९ ई० में गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से हुआ। यों इसके आरम्भिक तीन परिच्छेद 'माधुरी' (मासिक, लखनऊ) के मार्च १९३८ के अंक में प्रकाशित हो चुके थे। उसी वर्ष लखनऊ से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'चकल्लस' के मई अंक में 'मेरी ससुराल-यात्रा' शीर्षक से उसका दूसरा परिच्छेद निकला था। पुस्तक की भूमिका में स्वयं लेखक द्वारा दी गई तिथि से यह स्पष्ट होता है कि यह रेखाचित्र १९३९ के मई महीने में छपा था। पुस्तक का 'समर्पण' अपने आप में अनोखा है। स्वयं लेखक के अनुसार "इस पुस्तिका के समर्पण के योग्य कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्य में नहीं मिला, यद्यपि कुल्ली के गुण बहुतों में हैं, पर गुण के प्रकाश से सब घबराये। इसलिए समर्पण स्थगित रखता हूँ।"[८] समर्पण को स्थगित रखने का जो कारण लेखक ने प्रस्तुत किया है, वह लेखकीय ईमानदारी और निर्भीकता का परिचायक है।

जैसा कि कृति के शीर्षक से स्पष्ट होता है इसमें कुल्लीभाट अर्थात् पं० पथबारीदीन जी भट्ट जो निराला के अभिन्न मित्र थे – का परिचय प्रस्तुत किया गया है। "उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित्र भी आया है और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है। रूढ़िवादियों के लिए यह दोष है, पर साहित्यिकों के लिए, विशेषता मिलने पर, गुण होगा।"[९] पुस्तक की यह भूमिका

स्पष्ट करती है कि इसमें लेखक का अपना जीवन-चरित भी विस्तार से वर्णित है। कुल्ली और निराला दोनों के जीवन-प्रसंग एक दूसरे से जुड़े होने पर भी लेखक बहकते नहीं हैं और बड़ी कुशलतापूर्वक अपने कथा-नायक के चरित्र को उद्घाटित करते हुए आगे बढ़ते हैं। कुल्ली एक साधारण मानव है जो यौन विकृतियों का शिकार है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान कांग्रेस का कार्यकर्ता बनने पर शनैःशनैः उसके चरित्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है। जन-आन्दोलन के फलस्वरूप वह अपनी कमजोरियों और विकृतियों से मुक्त ही नहीं होता बल्कि एक अत्यन्त उदात्त भूमि पर पहुँच जाता है। जीवन की अधम, हीन और गर्हित स्थितियों से ऊपर उठकर मानवता के चरम शिखर पर प्रतिष्ठित होने वाले कुल्ली के चरित्र में अवनति एवं उन्नति दोनों की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। लघु मानव से महामानव के रूप में प्रतिष्ठित होने वाले कुल्ली के चरित्र की यह विकास-यात्रा इस बात की सूचक है कि साधारण व्यक्ति में भी असाधारणता विद्यमान होती है जो उचित अवसर आने पर प्रकाशित होती है।

कृति के आरम्भ में निराला के बाल्यावस्था से युवावस्था तक के जीवन के मधुर एवं करुण प्रसंगों का जीवन्त वर्णन है। इस तरह निराला की जीवन-झांकी उन्हीं की लेखनी द्वारा देखने को मिलती है।

कुल्ली के जीवन-प्रसंगों के वर्णन के संदर्भ में तमाम सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य उभरते हैं। लेखक की ससुराल-यात्रा के प्रसंग में बैसवाड़ा अंचल के सामाजिक जीवन, रीति-रिवाज, संस्कार-गीत, जातिगत आडम्बर आदि का सूक्ष्म एवं जीवन्त वर्णन है एवं अवध का रंग आकर्षक ढंग से उभरता है। यहाँ निराला बड़े मनोयोग से आत्म-वृत्तान्त प्रस्तुत करते हैं। यही नहीं बल्कि "मैं शुरू से विरोध के सीधे रास्ते चलता रहा हूँ"[६०] कहकर अपनी चारित्रिक विशेषता भी बड़ी ईमानदारी से उद्घाटित करते हैं। कृति के इसी पूर्वार्द्ध में पत्नी के हिन्दी ज्ञान एवं उनके संगीत कौशल जैसे प्रसंगों का मार्मिक वर्णन है जिनके कारण निराला हिन्दी के अध्ययन की ओर उन्मुख हुए एवं हिन्दी साहित्य-जगत को निराला जैसा बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न रचनाकार प्राप्त हुआ। "संसार में हारने की सी लाज नहीं, स्त्री सृष्टि की सबसे बड़ी हार है, पुरुष की जीत की सबसे बड़ी प्रमाण प्रतिमा, इससे मैं हारा।"[६१] पत्नी द्वारा पराजित निराला के जीवन का यह प्रसंग महाकवि तुलसीदास के जीवन-प्रसंग की ही भाँति है जहाँ ससुराल में पत्नी द्वारा लज्जित किये जाने पर उन्हें आत्म-ग्लानि होती है एवं तत्पश्चात उनके ज्ञान-चक्षु खुलते हैं और वे 'श्रीरामचरितमानस' जैसी अनूठी कृति की सर्जना करते हैं। यहीं निराला की पारिवारिक क्षति, पत्नी वियोग जैसे करुण एवं हृदयद्रावक प्रसंग वर्णित हैं।

कृति के उत्तरार्द्ध में लेखक का साहित्यिक संघर्ष, कुल्ली द्वारा मुसलमानिन से प्रेम-विवाह, सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन, अछूतोद्धार की समस्या तथा कुल्ली के सुधारवादी राजनीतिक रूप का वर्णन है। यहीं से कुल्ली के चारित्रिक उत्कर्ष की यात्रा शुरू होती है। अछूत-पाठशाला खोलकर कुल्ली सच्चे अर्थों में हरि-जन की सेवा करते हैं। इस तरह कुल्ली देश-सेवक एवं सांस्कृतिक समन्वय के प्रतिष्ठाता के रूप में उभरते हैं। कुल्ली की मृत्यु के उपरान्त उनकी शवयात्रा में उमड़ी

जनता और उसकी श्रद्धा कुल्ली के सुधारक एवं जननायक रूप को प्रतिष्ठित करती है। लेखक स्वयं कुल्ली का एकादशांश सम्पन्न कराते हैं।

इस तरह 'कुल्लीभाट' में लेखक ने 'सेंट-परसेंट निराला' रखा है। अर्थात् इस कृति में लेखक ने प्रचलित रूढ़ियों से किसी तरह का समझौता न कर कुल्ली के चरित्र को यथावत् प्रस्तुत करते हुए इसे शुद्ध यथार्थवादी धरातल पर उपस्थित किया है। डा० रामरतन भटनागर के अनुसार "वस्तुतः कुल्ली का कार्य हम सबके लिए चुनौती है और 'कुल्लीभाट' नामक कृति आज भी कलाकार के लिए चुनौती है।"[५]

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय इस कृति के वैशिष्ट्य का उद्घाटन इन शब्दों में करते हैं – "कुल्लीभाट अपनी सजीवता, मानवीय संवेदना, अकृत्रिम शैली और हास्य और करुण रसों के कारण, हिन्दी की अब तक की लघु जीवनियों तथा दीर्घ कथाओं में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।"[५१]

बिल्लेसुर बकरिहा

'बिल्लेसुर बकरिहा' रेखाचित्रात्मक उपन्यास है। इसके दो आरम्भिक अंश 'रूपाभ' (मासिक, कालाकांकर) के क्रमशः मार्च और अप्रैल १९३९ के अंकों में प्रकाशित हुए थे। यह पुस्तकाकार १९४२ ई० में युग-मन्दिर, उन्नाव से निकला। 'भूमिका' के नीचे निराला ने २५ दिसम्बर, १९४१ की तिथि दी है। इससे सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह उपन्यास १९४२ ई० के आरम्भ में ही निकल गया होगा। २३ जून १९४२ को निराला ने कवीं से श्री केदारनाथ अग्रवाल को लिखा – "बिल्लेसुर बकरिहा निकल गया है। मेरे पास ५ प्रतियाँ यहाँ भेजी गयीं थीं। आपको एक देना चाहता हूँ।"[५२] इस पत्र से भी इसी बात की पुष्टि होती है। इस कृति के प्रथम संस्करण की भूमिका में निराला लिखते हैं – "बिल्लेसुर बकरिहा हास्य लिये एक स्केच है। मुझे विश्वास है, पाठकों का मनोरंजन होगा।"[५३] किन्तु इस हास्य के कल-कल के नीचे भी करुणा और आक्रोश की धारा बहती रहती है। बिल्लेसुर के चरित्र के साथ-साथ ही उनका समस्त सामाजिक परिवेश, निर्धन, ग्रामीण ब्राह्मण के जातिगत संस्कारों, अंधविश्वासों तथा जीवन संघर्षों को निराला ने रेखांकित किया है।

कृति का नामकरण इस अर्थ में विशिष्ट है कि एक ओर वह चरितनायक के जीवन-संघर्ष तथा दूसरी ओर उसके सामाजिक परिवेश को मूर्त रूप प्रदान करता है। बिल्लेसुर 'बैलेश्वर' का तद्भव रूप है। पुरवा-डिवीजन में इस नाम का प्रतिष्ठित शिव-मंदिर है। बिल्लेसुर के बकरीपालक गुण को देखते हुए बकरिहा शब्द जोड़ा गया है। यहाँ भी लेखक यह स्पष्ट कर देते हैं कि "'हा' का प्रयोग हनन के अर्थ में नहीं, पालन के अर्थ में है।"[५४] बिल्लेसुर के बकरी-पालन के इस व्यवसाय के सम्बन्ध में निराला का व्यंग्य अत्यन्त रोचक है। "बिल्लेसुर जाति के ब्राह्मण तरी के सुकुल हैं। ....लेकिन तरी के सुकुल को संसार पार करने की तरी नहीं मिली तब बकरी पालने का कारोबार किया। गाँव वाले उक्त पदवी से अभिहित करने लगे।"[५५] कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के

तथाकथित जातिगत दंभ को त्याग कर बकरी पालने का पेशा अपनाना निश्चय ही बिल्लेसुर का प्रगतिशील कदम है और इस पर गाँव वालों द्वारा उन्हें 'बकरिहा' पदवी से अभिहित करना ग्रामीण मनः स्थिति का परिचायक है।

बिल्लेसुर के जीवन-संग्राम में उतरने तथा अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का अत्यन्त रोचक शैली में वर्णन किया गया है। लेखक ने बिल्लेसुर के चरित्र के माध्यम से कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की आर्थिक हीनता एवं जातिगत अहंकार को स्पष्ट किया है। निराला स्वयं भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे एवं कान्यकुब्ज समाज में व्याप्त कुसंस्कारों की पीड़ा के भुक्तभोगी थे। अतः उनका वर्णन अत्यन्त जीवन्त एवं यथार्थवादी है। चरित-नायक की अक्खड़ता कहीं-कहीं स्वयं लेखक की उपस्थिति का आभास कराती है।

इस कृति की विशिष्टता यह है कि इसमें एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का सजीव चित्रण है। लेखक की रोचक शैली, मधुर व्यंग्य की मुद्रा एवं सहानुभूति का संस्पर्श कृति को रोचकता एवं सहजता प्रदान करता है। इसी कारण बैसवाड़ा अंचल के जन-जीवन से अनभिज्ञ लोगों को भी कृति रोचक प्रतीत होती है।

इस कृति का अन्त भी विशिष्ट ढंग से किया गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में – "अन्त समाप्त होकर भी लटका हुआ है।"[८८] डा० नरपतचन्द सिंघवी के अनुसार – "इस प्रकार के अन्त के लिये एक विशेष कलात्मक संयम की आवश्यकता है जो कला को आत्म-गोपन की शक्ति प्रदान करता है। जिस प्रकार बिल्लेसुर ने अपने धनी होने का राज जीते जी न खुलने दिया, उसी प्रकार निराला के कलात्मक संयम ने इस अन्तहीन अंत में कला को आत्म-गोपन ही रहने दिया।"[८९]

निराला के कथा-साहित्य के सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि उन्होंने कहानियों, उपन्यासों एवं रेखाचित्रों के माध्यम से तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रित किया है। उनके समग्र कथा-साहित्य में जो समस्याएँ उठाई गई हैं उनकी व्याप्ति किसानों, मजदूरों, ग्रामीणों, मध्यवर्गीय परिवारों से लेकर विधवाओं, परित्यक्ताओं और वेश्याओं तक है। इन विभिन्न वर्गों की समस्याओं का सहानुभूति के साथ वर्णन उपस्थित करने के कारण उनकी ये कथा-कृतियाँ पाठकों की समझ और संवेदना को व्यापक एवं धारदार बनाती हैं। कथाकार की आंतरिक सहानुभूति का, कथा साहित्य में उसकी पैठ का अन्तरंग साक्षात्कार उसके वस्तु एवं शिल्प पक्ष के अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है। अगले दो अध्यायों में कथाकार निराला की रचनाओं का इसी आधार पर विवेचन किया गया है।

संदर्भ :

१. सुधा, १६ दिसम्बर १९३३ वर्ष ७, खंड १, संख्या-१० संपादक – दुलारेलाल भार्गव
२. लिली का समर्पण – निराला रचनावली भाग ४, पृष्ठ ४२७
३. लिली की भूमिका – निराला रचनावली भाग ४, पृष्ठ ४२७
४. वही
५. कमला-निराला रचनावली भाग ४, पृष्ठ ३०३
६. सखी का समर्पण – निराला रचनावली भाग ४, पृष्ठ ४२८
७. सखी की भूमिका- निराला रचनावली भाग ४, पृष्ठ ४२८
८. वही
९. भूमिका, निराला रचनावली भाग ४, पृष्ठ १४
१०. सुकुल की बीवी की भूमिका, निवेदन, निराला रचनावली, भाग ४, पृष्ठ ४२९
११. निराला रचनावली, भाग ४, पृष्ठ १४
१२. सुकुल की बीवी की भूमिका, निवेदन, निराला रचनावली, भाग ४, पृष्ठ ४२९
१३. वही
१४. आवेदन, चतुरी चमार, निराला रचनावली, भाग ४, पृष्ठ ४२९
१५. वही
१६. देवी की भूमिका, निराला रचनावली, भाग ४, पृष्ठ ४३०
१७. अप्सरा की भूमिका, निराला रचनावली, भाग ३, पृष्ठ १५
१८. वक्तव्य, अप्सरा, निराला रचनावली, भाग ३, पृष्ठ १६
१९. वही
२०. वही
२१. निराला का गद्य, डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित, पृष्ठ २२
२२. महाकवि निराला का कथा-साहित्य – डा० नरपत चन्द सिंघवी, पृष्ठ ६७
२३. निराला का गद्य – डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित, पृष्ठ २०
२४. अलका की 'वेदना' शीर्षक भूमिका, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ १३६
२५. वही
२६. वही
२७. निराला – डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ ७६
२८. कथा-शिल्पी निराला – डा० बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा, पृष्ठ १८०
२९. अलका, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ १३७
३०. वही
३१. भूमिका, प्रभावती, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड पृष्ठ ९
३२. प्रभावती, समर्पण, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २३१
३३. प्रभावती, प्रथम संस्करण की भूमिका, निवेदन, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २३३
३४. भूमिका, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ११
३५. निराला का गद्य – डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ १९
३६. महाकवि निराला का कथा-साहित्य – डा० नरपत चन्द सिंघवी, पृष्ठ ९७
३७. निरुपमा, भूमिका, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ९

३८. वही, पृष्ठ १०
३९. निरुपमा, समर्पण, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ३८९
४०. निरुपमा, निवेदन, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ३९०
४१. वही
४२. वही
४३. महाकवि निराला का कथा-साहित्य – डॉ० नरपतचन्द सिंघवी, पृष्ठ ९९
४४. निराला और नवजागरण – डॉ० रामरतन भटनागर पृष्ठ १२८
४५. निवेदन, चोटी की पकड़, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२०
४६. चोटी की पकड़, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १८८
४७. वही, पृष्ठ १९८
४८. निराला का गद्य – डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ १८
४९. निराला और नवजागरण – डॉ० रामरतन भटनागर, पृष्ठ ३४१
५०. युगस्रष्टा निराला – गंगाधर मिश्र, पृष्ठ २८४
५१. काले कारनामे, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२
५२. वही
५३. काले कारनामे, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २४३
५४. वही, पृष्ठ २१७
५५. वही, पृष्ठ २१६
५६. वही, पृष्ठ २१४
५७. वही, पृष्ठ २१५
५८. कुल्लीभाट, समर्पण, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २१
५९. वही, पृष्ठ २२
६०. कुल्लीभाट, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३१
६१. वही, पृष्ठ ५०
६२. निराला – डॉ० रामरतन भटनागर, पृष्ठ २८९
६३. निराला का साहित्य और साधना – डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ २७०
६४. भूमिका, बिल्लेसुर बकरिहा, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ११
६५. बिल्लेसुर बकरिहा, प्रथम संस्करण की भूमिका, प्राक्कथन, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ८४
६६. बिल्लेसुर बकरिहा, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड पृष्ठ ८५
६७. वही, पृष्ठ ८५
६८. बिल्लेसुर बकरिहा, द्वितीय संस्करण की भूमिका, निवेदन, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ८४
६९. महाकवि निराला का कथा-साहित्य – डॉ० नरपत चन्द सिंघवी, पृष्ठ २३५

निराला के कथा-साहित्य में वस्तु

कथा साहित्य का मूल आधार 'कथा' अथवा 'कहानी' है। इसके अभाव में कथा-साहित्य की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। 'वस्तु' वह अनिवार्य तत्व है जिस पर कहानी अथवा उपन्यास का भवन निर्मित होता है। यह एक तरह से कथा-साहित्य की आधारभूमि है, उसके शरीर का मेरुदंड है। कथावस्तु को विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज समालोचक शिप्ले महोदय मानते हैं – "कथावस्तु घटनाओं का वह संगठन है, भले ही वह सरल हो या जटिल, जिस पर कथा या नाटक की रचना होती है।"[1] प्रसिद्ध आलोचक ई.एम. फास्टर ने कथावस्तु को परिभाषित करते हुए लिखा है – "यह घटनाओं का वह कालक्रमानुसार वर्णन है जिसमें कार्य-कारण सम्बन्ध पर विशेष बल रहता है।"[2] ग्रीनवुड कथानक की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं – "कथावस्तु, लेखक के लिए वह धारा है, जिसके द्वारा वह अपनी गहराई में डुबकर महत्वपूर्ण विषय की बड़ी और चमकती हुई मछली पकड़ता है।"[3] डा० सरोजनी त्रिपाठी के मतानुसार – "कथावस्तु वह तन्तु विशेष है जो उपन्यास में घटना, स्थिति, चरित्र, वातावरण, भाव या विचार में, स्थूल या सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है और अन्य तत्त्वों के समानुपातिक योगदान में संतुलन एवं सामंजस्य बनाए रखता है।"[4]

उपरोक्त समस्त परिभाषाओं का सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर एक बात स्पष्ट परिलक्षित होती है कि कथा-साहित्य में वस्तु-तत्व की अनिवार्यता सभी ने स्वीकार की है। यह वस्तु वास्तव में कहानी है। घटनाओं के अभाव में कथावस्तु के अस्तित्व के लिए भाव, विचार, वातावरण या एक स्थिति विशेष भी यथेष्ट समझी जाती है। ये ही भाव, विचार या स्थिति रचना के क्षणों में बीज का कार्य करते हैं। रचनाकार पात्र, वातावरण आदि उपकरणों के समावेश से इस कथा को कथानक के साँचे में इस प्रकार ढालता है कि वह उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हो। विषय एवं शिल्प की दृष्टि से नए प्रयोगों का दावा करने वाली कहानियों एवं उपन्यासों में भी कहानी का वह सूक्ष्म तन्तु विद्यमान रहता है जो रचना में जिज्ञासा एवं प्रभाव की सृष्टि करता है। यह अवश्य है कि कहानी में जिज्ञासा जहाँ 'फिर क्या हुआ' जैसा विचार उत्पन्न करती है वहीं कथानक में 'ऐसा क्यों हुआ' जैसी जिज्ञासा उत्पन्न कर उसे कार्यकारण सम्बन्ध से जोड़ती है। इस तरह 'कथा' ही कथानक का आधार तत्व है। यह कथा उद्देश्य समन्वित होती है जो लेखक की संगठन दक्षता से पूर्णता को प्राप्त करती है। कथाकार अपनी ग्राह्य-प्रतिभा, प्रकृति, अभिव्यक्ति कौशल द्वारा

समस्त उपकरणों का सुन्दर समायोजन कर सर्वांग सुन्दर कथानक का सृजन करता है। इस तरह संगठनात्मकता कथानक का सर्वप्रमुख गुण है। इसी के द्वारा कथानक प्रभावशाली बनता है।

इसके अलावा मौलिकता, रोचकता एवं मनोरंजकता भी कथानक के आवश्यक गुण माने जाते हैं।

स्वरूप की दृष्टि से कथावस्तु तीन प्रकार की होती है (१) घटना-प्रधान (२) चरित्र-प्रधान (३) भाव-प्रधान।

घटना-प्रधान कथावस्तु में घटना अथवा कार्य-व्यापार की शृंखलाओं से कथावस्तु निर्मित होती है। दैवी संयोग एवं अति मानवीय शक्तियों की सक्रियता के कारण इस प्रकार की कथावस्तु में अस्वाभाविकता पायी जाती है। जासूसी कहानियों की कथावस्तु इसी कोटि के अन्तर्गत आती है।

चरित्र-प्रधान कथावस्तु में घटनाएँ एवं संयोग गौण होते हैं। इनमें चरित्र-चित्रण एवं विश्लेषण की प्रधानता होती है। पात्रों के चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक ऊहापोह एवं विभिन्न परिस्थितियों में उनके कार्य-व्यवहार का वर्णन होने के कारण चरित्र-प्रधान कथावस्तु में सूक्ष्मता एवं कलात्मकता के दर्शन होते हैं। मनोवैज्ञानिक कहानियों की कथावस्तु चरित्र-प्रधान होती है।

भाव-प्रधान कथावस्तु में पात्रों की अनुभूति और भाव ही मुख्य कथा-सूत्र के रूप में आते हैं। इस प्रकार की कथावस्तु का रूप सबसे सूक्ष्म और अमूर्त होता है। मनुष्य के शाश्वत भावों जैसे-प्रेम, घृणा, करुणा, निर्वेद आदि के आधार पर कथावस्तु निर्मित होती है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'कोठरी की बात' की कथावस्तु इसी श्रेणी की है।

वस्तु-विन्यास की दृष्टि से कथानक के तीन अंग होते हैं – (१) आरम्भ (२) मध्य (३) चरमसीमा अथवा अन्त।

'आरम्भ' कथानक का आदि भाग है। इसमें कहानी के बीज, मुख्य पात्र का चरित्र, लक्ष्य का संकेत तथा कहानी की मुख्य संवेदना निहित रहती है। कुशल कथाकार कथानक के इसी भाग से पाठकों के मन में जिज्ञासा एवं कौतूहल की सृष्टि कर देता है।

मध्य भाग में समस्या का विस्तार, पात्रों का चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक घात-प्रतिघात द्वारा कौतूहल चरम सीमा पर पहुँच जाता है। कहानी की वास्तविक आत्मा यहीं प्रस्फुटित होती है। लक्ष्य की पृष्ठभूमि कहानी के मध्य भाग में ही तैयार हो जाती है।

कथानक के अन्तिम भाग में चरमसीमा की स्थिति आती है। यहाँ समस्त कौतूहल एवं अभिप्राय पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है एवं कहानी का कार्य सम्पूर्ण हो जाता है।

निराला के कथा-साहित्य में कथानक को विशेष महत्व प्राप्त है। उनकी कहानियाँ, उपन्यास एवं रेखाचित्र कथा-तत्व से संपन्न दिखाई पड़ते हैं। निराला ने जिस युग में कथा-लेखन आरम्भ किया वह युग कथा-साहित्य के चरम विकास का-युग था। निराला से पूर्व प्रेमचन्द, प्रसाद जैसे कहानीकार कथा साहित्य को घटनाओं एवं चमत्कारों के काल्पनिक संसार से यथार्थोन्मुख आदर्श के धरातल पर प्रतिष्ठित कर चुके थे। प्रेमचन्द-परम्परा के विश्वम्भर नाथ

शर्मा कौशिक, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, चतुरसेन शास्त्री एवं ज्वालादत्त शर्मा जैसे कहानीकारों ने पाठकों के मन में नवीन आशा का संचार किया था। निराला ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से प्रेमचन्द-परम्परा को आगे बढ़ाया। उन्होंने समकालीन समाज की समस्याओं को अपने कथा साहित्य का विषय बनाया। इसलिए विषय वस्तु की दृष्टि से उनके कथा-साहित्य में सामाजिक जीवन के विविध संदर्भों का उद्घाटन हुआ है।

विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, वेश्या जीवन की करुण स्थिति एवं उसका उद्धार, युवक-युवतियों के स्वच्छन्द प्रेम, समाज में व्याप्त शोषण एवं संघर्ष को उन्होंने अपने कथा-साहित्य की विषय-वस्तु बनाया। निराला ने व्यक्तिगत जीवन में भी समाज में व्याप्त रूढ़ियों, आडम्बरों एवं प्रगति की राह में बाधक तत्त्वों का खुलकर विरोध किया था। कथा-साहित्य में भी सामाजिक वैषम्य के प्रति विद्रोह का यही स्वर प्रचण्ड रूप में फूट पड़ा है। समाज में शोषितों, दलितों एवं उत्पीड़ित करुण स्थिति देखकर ही उनका संवेदनशील हृदय अत्यन्त विक्षुब्ध था। 'चतुरी चमार', 'देवी', 'श्यामा' आदि कहानियों में शोषितों की इसी पीड़ा को उन्होंने वाणी दी। उनके कथा-साहित्य की विषय-वस्तु जीवन का यथार्थ ही है किन्तु समस्याओं के अंकन के साथ-साथ उन्होंने उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। यद्यपि उस युग के परिप्रेक्ष्य में वे समाधान व्यावहारिक नहीं कहे जा सकते किन्तु निराला की वे भविष्यवाणियाँ आज सत्य सिद्ध हो रही हैं। वस्तुतः निराला जैसे सजग चिन्तक हमेशा अपने युग से आगे की बात सोचते थे।

निराला का उद्देश्य 'कहानी कहना' कभी नहीं रहा बल्कि चरित्रों के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रकट करना ही उनका प्रमुख लक्ष्य था। बने-बनाये कथानक में उनका विश्वास नहीं था। इसलिए जब-जब किसी घटना अथवा पात्र ने उनका मानस उद्वेलित किया तभी उन्होंने कथा की वस्तु गढ़ ली। 'कला की रूपरेखा', 'चतुरी चमार', 'देवी', 'भक्त और भगवान', 'सफलता', 'हिरणी एवं अर्थ' जैसी कहानियाँ सत्य घटनाओं पर आधारित हैं। कहानी कहते-कहते जहाँ उन्हें अपने जीवन के भूले-बिसरे प्रसंग स्मरण हो आए उन्हें उन्होंने बड़ी कुशलतापूर्वक कथा में पिरो दिया। ऐसी संस्मरणात्मक कहानियों की विषय वस्तु में अत्यधिक रोचकता का समावेश हो गया है। उनके कथा साहित्य का अंतरंग साक्षात्कार करने के लिए उनकी कहानियों, उपन्यासों एवं रेखाचित्रों की विषय-वस्तु का विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है।

निराला की कहानियों का वस्तु-विन्यास

पद्मा और लिली

नारी की प्रेम-भावना पर आधारित 'पद्मा और लिली' कहानी के माध्यम से निराला ने अन्तर्जातीय विवाह की आवश्यकता पर बल दिया है। शहरी सभ्यता में पले-बढ़े आभिजात्य वर्ग के दो पात्रों राजेन्द्र और पद्मा की प्रेम कथा के माध्यम से जातिवाद और संकीर्ण सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार किया है। प्रेम की उदात्तता का वर्णन राजेन्द्र और पद्मा के चरित्र के माध्यम से

किया है। यहाँ प्रेम की असफलता प्रेमी में किसी निराशा अथवा कुण्ठा को जन्म नहीं देती बल्कि उन्हें कर्तव्य का बोध कराती है तथा वे समाज एवं मानवता के कल्याण के लिए एक नयी दिशा की ओर उन्मुख होते हैं। पद्मा आजीवन कौमार्य का व्रत लेकर 'अपने जाति की बालिकाओं को अपने ढंग पर शिक्षित कर, अपने आदर्श पर लाकर पिता की दुर्बलता से प्रतिशोध लेने का निश्चय' करती है वहीं दूसरी ओर राजेन्द्र भी विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद पाश्चात्य प्रभाव से अछूता रहकर 'बैरिस्टरी जैसे नीरस एवं बेदर्द व्यवसाय' का परित्याग कर देश-सेवा का व्रत लेता है। इस तरह कहानी के दोनों प्रधान चरित्र आदर्श प्रेम का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। सच्चे प्रेम की यह परिणति पाठकों को एक ओर इन चरित्रों के प्रति श्रद्धावनत करती है वहीं दूसरी ओर कठोर एवं संकीर्ण सामाजिक रूढ़ियों को ध्वस्त करने के लिए प्रेरित करती है। पद्मा के पिता आ.स.। मैजिस्ट्रेट पण्डित रामेश्वर जी शुक्ल के माध्यम से परंपरावादी पिता का चित्रण किया गया है जिनके सिर पर समाज का भूत सवार है तथा जिन्हें जाति के विचार ने दुर्बल कर दिया है। अपनी इस दुर्बलता की दीवार को लांघने में असमर्थ रामेश्वर शुक्ल अपनी अन्तिम इच्छा पूर्ति की दुहाई देकर पद्मा और राजेन्द्र के प्रेम के मध्य दीवार खड़ी कर देते हैं। मृत्यु से कुछ समय पूर्व पद्मा को लिखे गये उनके पत्र की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं– "मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएं पूरी की हैं, पर अभी तक मेरी एक भी इच्छा तुमने पूरी नहीं की। शायद मेरा शरीर न रहे, तुम मेरी सिर्फ एक बात मानकर चलो– राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना। बस।"[५] कहानी का अंत अत्यन्त मार्मिक है। पद्मा द्वारा पिता की अन्तिम इच्छा का सम्मान करते हुए समाज सेवा के लिए अपना समस्त जीवन समर्पित कर देना, राजेन्द्र द्वारा आजीवन देश-सेवा का संकल्प कहानी का आदर्शवादी समापन है।

ज्योतिर्मयी

इस कहानी में रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज में दहेज की समस्या के अतिरिक्त विधवा-जीवन की व्यथा-कथा को भी अंकित किया गया है। समाज-भीरु एवं दुर्बल चरित्र वाला युवक विजय ज्योतिर्मयी को सामाजिक बन्धनों के अनुकूल जीवन-यापन की शिक्षा देता है। वह स्वयं विधवा-विवाह करने में लज्जा का अनुभव करता है परन्तु पिता द्वारा दस हजार रुपये में बेचा जाना स्वीकार कर लेता है। इसमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के पाखण्ड तथा उनकी अर्थ-लोलुपता पर करारा व्यंग्य किया गया है। किन्तु उस युग में जब बिस्वा या कुल की दृष्टि से कान्यकुब्ज ब्राह्मण सनाढ्य ब्राह्मणों के यहाँ वैवाहिक संबंध नहीं करते थे, वहाँ विजय के पिता द्वारा धन के लोभ में विजय का विवाह संबंध तय कर देना कुछ अविश्वसनीय सा लगता है। किन्तु इससे एक यह सत्य भी उद्घाटित होता है कि यही तथाकथित उच्च कुल वाले रुपये के लोभ में अपनी समस्त सामाजिक मर्यादा को त्याग भी सकते हैं। विजय के मित्र वीरेन्द्र के चरित्र के माध्यम से निराला ने ऐसे सच्चे एवं क्रांतिकारी विचारों वाले युवकों की आवश्यकता पर बल दिया है जो समाज में व्याप्त बुराइयों को निर्मूल करने के लिए आगे आयें। सामाजिक रूढ़ियों के सम्मुख झुक

जाने वाले युवा वर्ग के प्रति निराला की कोई सहानुभूति नहीं थी। इसीलिए बीरेन्द्र अपने मित्र को "मैं विजय का ही मित्र हूँ, किसी पराजय का नहीं।"[५] कहकर तिरस्कार करता है।

इस कहानी में विधवा ज्योतिर्मयी का विवाह बड़ी नाटकीय स्थिति में विजय के साथ सम्पन्न कराकर निराला ने उस युग की ज्वलंत समस्या का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया है।

कमला

प्रस्तुत कहानी नारी को केन्द्र में रखकर ही लिखी गयी है। अपने ही जातिवालों की ईर्ष्या द्वेष का शिकार विवाहिता कमला के परित्यक्ता कमला में परिणत होने की करुण-कथा इस कहानी का वर्ण्य-विषय है। सोलहवें साल की अधखुली-धुली कलिका कमला पाणिग्रहण संस्कार हो जाने के पश्चात् भी जाति-प्रथा के कारण बारात के साथ विदा नहीं हुई थी। अतः उसके लिए अभी पति केवल ध्यान का विषय है, ज्ञान का नहीं। कमला के पति रमाशंकर बाजपेयी उसे विदा कराने आते हैं। प्रणय के मौन स्पर्श से जब दोनों के हृदय पुलकित हो रहे थे, उसी समय भैयाचार एवं नातेदारों की कूटनीति के कारण रमाशंकर पत्नी को बिना विदा कराए, चले गए। कमला के पति के दूसरे विवाह की खबर उसकी माता के लिए प्राणघातक सिद्ध होती है। असहाय एवं परित्यक्ता कमला किसी तरह से सिलाई का काम करके अपना एवं अपने भाई का पेट पालती है। अपनी पति-भक्ति, चरित्रनिष्ठा एवं आदर्श-प्रीति के कारण वह सबकी सम्मान की पात्र बन जाती है।

उधर रमाशंकर की पत्नी एवं बहन कानपुर में हिन्दु-मुस्लिम दंगे की शिकार होती हैं। एक मुसलमान के घर से कमला का भाई राजकिशोर ही उनका उद्धार करता है। रमाशंकर के पिता पं० रामचन्द्र उन्हें वापस गाँव ले जाते हैं। किन्तु उनके घर पहुँचने के पूर्व ही गाँव भर में उनकी बहू और बेटी के मुसलमान के घर रहने वाली खबर फैल जाती है। उनके भैयाचार "तुम लोग गधे बन गये हो, अब लाख धोने पर घोड़े नहीं बन सकते"[६] कहकर उनका परित्याग कर देते हैं। अपमानित बाजपेयी जी का ऐसे जटिल मौके पर कमला ही उद्धार करती है एवं अपने भाई राजकिशोर के साथ उनकी पुत्री का विवाह प्रस्ताव यह कहकर स्वीकार कर लेती है कि "आपको उठा लेना मेरा धर्म है।"[७]

यहाँ प्रसंगवश आर्य समाज के मंत्री की पुत्री वेदवती के कथन के माध्यम से निराला ने स्त्री-स्वातन्त्र्य का प्रबल समर्थन किया है। कमला पर हुए पाशविक अत्याचार की बात सुनकर वेदवती का आक्रोश इन शब्दों में फूट पड़ता है– "तुम लोग कमजोर हो। किस्मत को कोसती हो। मैं होती तो, चपत का जवाब दूने कस की चपत कसकर देती– उन्हीं की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती, ऊपर से न्योता भेजती कि आइए जनाबमन, मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइए। तुम्हीं लोगों ने अपने सिर स्त्रियों का अपमान उठा रक्खा है।"[८]

इस तरह सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का प्रबल स्वर प्रस्तुत कहानी में वर्तमान है।

श्यामा

प्रस्तुत कहानी मुख्य रूप से सामाजिक वर्ग-वैषम्य पर आधारित है। पं० रामप्रसाद जी का पुत्र बंकिम अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण किया हुआ एक प्रगतिशील युवक है। उसे कुमार्गगामी होने से बचाने के लिए पिता उसे गाँव भेजते हैं। वहाँ अपने आचरणों के कारण उसे विदेशी समझा जाता है। वहीं वह लोध जाति की एक अछूत कन्या श्यामा के प्रति आकर्षित होता है। श्यामा के पिता सुधुआ पर जमींदार के साढ़े सात रुपये लगान बाकी थे। अत: उसे कठोर शारीरिक यातना दी जाती है। सहृदय बंकिम अपनी सोने की अंगूठी बेचकर लगान के रुपये चुका देता है और घायल सुधुआ की सेवा सुश्रुषा करता है। इस तरह वह अपने पिता और गाँव वालों के कोप का भाजन बनता है। सुधुआ की मृत्यु के पश्चात वह श्यामा के साथ मिलकर उसका अंतिम संस्कार करता है और हमेशा के लिए अपना गाँव छोड़ देता है।

कानपुर जाकर वह आर्य-समाज के मन्त्री सत्यप्रकाश जी की मदद से श्यामा से विवाह करता है। सत्यप्रकाश जी उससे अत्यन्त प्रभावित है अत: उसकी शिक्षा के प्रबंध के साथ-साथ श्यामा के भी पढ़ने और दस्तकारी सीखने का प्रबंध कर देते हैं।

इधर बंकिम के पिता रामप्रसाद जी के देहान्त के बाद जमींदार पं० दयाराम उसके बागों पर अपना अधिकार कर लेते हैं। बंकिम की बहन सरला जमींदार से नाना की सम्पत्ति नाती को देने की आरजू-मिन्नत करती है किन्तु वहाँ से कोरा जवाब दे दिए जाने पर अदालत में दरख्वास्त करती है। जमीन के दावे को लेकर पं० दयाराम एवं सरला दोनों ही डिप्टी साहब के पास पहुँचते हैं। जमींदार को डिप्टी साहब की धर्मपत्नी श्रीमती श्यामकुमारी देवी अपमानित करके निकलवा देती हैं एवं बाग सरला के पुत्र को मिलता है। यह डिप्टी साहब स्वयं बंकिम अब बेद स्वरूप एवं उनकी धर्मपत्नी श्यामा हैं। इस कहानी में जमींदारों के कृषकों पर पाशविक अत्याचार, संकीर्ण जाति प्रथा, आर्य-समाज की उदार नीति आदि पर प्रकाश डाला गया है। बंकिम के माध्यम से उस प्रगतिशील युवक का चित्रण हुआ है जो सामाजिक रूढ़ियों का प्रबल विरोधी होने के साथ-साथ उन्हें निर्मूल करने को कटिबद्ध है एवं जो समस्त सामाजिक तिरस्कार सहकर भी अछूत-कन्या से विवाह करता है। पं० दयाराम के रूप में क्रूर जमींदार का वर्णन है जो कृषकों पर केवल अत्याचार ही नहीं करते बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उनमें जातिगत संकीर्ण मान्यताओं का विषैला बीज-वपन भी करते हैं एवं उनमें फूट डालकर अपनी शासकीय कुशलता का परिचय देते हैं। सुधुआ के माध्यम से दीन-हीन कृषक की करुण-कथा का प्रकाशन किया गया है। कुल मिलाकर यह कहानी जातिगत कट्टरता पर प्रहार करने वाली एवं अछूतोद्धार की समस्या पर प्रकाश डालने वाली कहानी है।

अर्थ

प्रस्तुत कहानी में आध्यात्मिकता एवं मनोवैज्ञानिकता का अनूठा संगम है। शीर्षक के अनुरूप ही कहानी में अर्थ की समस्या प्रधान है। आज के इस अर्थ-प्रधान युग में हिन्दू-धर्म और

संस्कारों में जकड़ा व्यक्ति किस प्रकार अर्थ-प्राप्ति में असमर्थ होने पर लोगों के उपहास और उपेक्षा का पात्र बनता है, यही इस कहानी का वर्ण्य-विषय है। इस कहानी का चरित्र नायक राजकुमार अपने सरल स्वभाव एवं प्रबल धार्मिक आस्था के कारण पग-पग पर ठोकर खाता है किन्तु इतने पर भी उसकी ईश्वर के प्रति आस्था डगमगाती नहीं है। उसका विश्वास है कि "ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते हैं, उसमें सूक्ष्म अर्थ बनकर रहते हैं, जिससे वह स्थूल अर्थ पैदा करता है।"[१०] डा० बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा के अनुसार – "इस संक्षिप्त कथा-ध्वनि में रामकुमार की सर्वथा निष्कलुष तथा अविचल अन्तर्निष्ठा और मानसिक संघर्ष के साथ-साथ सत्य के सनातन दिव्य रूप का जैसा सर्वसुलभ चमत्कारपूर्ण साक्षात्कार हम पाते हैं, वैसा ही युग-जीवन की मनःस्थिति का मर्म परिचय भी।"[११]

प्रेमिका-परिचय

यह कहानी कॉलेज में पढ़ने वाले उच्छृंखल एवं रंगीन मिजाज युवकों के चरित्र पर प्रकाश डालती है। आधुनिकता के रंग में रँगा प्रेम कुमार कैनिंग कॉलेज लखनऊ में बी.ए. का विद्यार्थी है। नाम के अनुरूप ही वह प्रेमी-तबियत का मालिक है। होस्टल में उसके बगल के कमरे में शंकर ब्राह्मण का लड़का है जो अंगरेजी पढ़ते हुए भी संस्कारों की रक्षा के प्रति सजग है। प्रेम कुमार शंकर को अपनी प्रेम-लीला के झूठे-सच्चे किस्से सुनाकर उसे भी अपने रंग में रंगना चाहता है, परन्तु असफल रहता है। प्रेम कुमार की नवविवाहिता साली उसे सबक सिखाने के लिए शान्ति नाम से उसके पास पत्र लिख कर उसे अलग-अलग स्थानों पर बुलाती है। प्रत्येक बार बेचारे प्रेम कुमार को निराश और अपमानित होकर लौटना पड़ता है। अन्त में गोमती के किनारे बुलाकर उसकी भर्त्सना करते हुए पत्र में लिखती है– "तुम्हें गोमती में भी चुल्लू-भर पानी नहीं मिला।"[१२] अन्त में प्रेम कुमार को पता चलता है कि यह शान्ति और कोई नहीं बल्कि उसकी ही पत्नी का शशि का नाम था। इस कहानी में लखनऊ की बादशाहत, वहाँ की नाजुक-मिजाजी, छात्रावास-जीवन, मनचले युवकों की प्रेम-लीला का वर्णन किया गया है। कहानी हास्य एवं कौतूहल की सृष्टि करने में सक्षम है।

परिवर्तन

प्रस्तुत कहानी का घटना चक्र क्षत्रिय-परिवारों के पारस्परिक वैमनस्य एवं प्रतिशोध तथा वेश्या-पुत्री के विवाह की समस्या को लेकर रचित है। कथानक का प्रथम भाग राजा महेश्वर सिंह की रक्षिता तथा एक समय कलकत्ते की सुन्दरी वेश्या की पुत्री परिमल कुमारी अर्थात् परी एवं जमादार शत्रुघ्न सिंह के पुत्र सूरज के बचपन की घटनाओं को चित्रित करता है। परी एवं सूरज में धूप-छाँह सा मेल रहने पर भी परी के स्वभाव में माता के संस्कार का चापल्य तथा पिता के रोब-दाब के कारण सम्मान्य राजकुमारी वाला गुरु-गहन भाव है। दूसरी ओर सूरज परी से पढ़ाई में ऊँचे दर्जे में होने के बावजूद ड्योढ़ी के जमादार का पुत्र होने के नाते परी का शासन मानने को बाध्य था। परी द्वारा अकारण एवं असमय अपने पुत्र को तंग किए जाने पर शत्रुघ्न

का क्षत्रियत्व उत्तेजित हो उठता है एवं वह सूरज को बुलाने आए नौकर से स्पष्ट शब्दों में कहता है– ''हम नौकर हैं, हमारा लड़का नौकर नहीं, और हम भी गेंद उठाने की नौकरी नहीं करते, तलवार बाँधने की करते हैं।''[१४] परी की माँ की बात मानकर राजा महेश्वर सिंह पिता, पुत्र दोनों को अपने गढ़ से बाहर निकलवा देते हैं। इस घटना के सात वर्ष उपरान्त परिस्थितियाँ परिवर्तित होती हैं। राजा साहब बड़े-जोरों से समाज सुधार करते हैं। किन्तु उनकी इतनी उदारता, दान-मान और समाज सुधार का फल यह न हुआ कि किसी कुँअर से परी का विवाह कर पाते। क्योंकि रूप के अन्धे कुँवर लोग उनके समाज-प्रेम से प्रभावित होने पर भी अपने पिता की असहमति के आगे विवश थे।

अन्त में चन्द्रपुर महाराज प्रताप नारायण सिंह, जो बंगाली सभ्यता के बहुत बड़े प्रशंसक हैं, परी से विवाह करने को राजी हो जाते हैं। राजा महेश्वर सिंह को उनकी सभी शर्तें स्वीकार करनी पड़ती हैं। विवाह अनुष्ठान के समय 'दासी-प्रणाम' शब्द सुनकर राजा साहब चौंकते हैं एवं वर के पिता के रूप में अपने ही जमादार शत्रुघ्न सिंह को देखकर चकित रह जाते हैं। शत्रुघ्न सिंह का प्रतिशोध पूर्ण होता है और वे राजा साहब को यह कहकर प्रताड़ित करते हैं– ''तुम और तुम्हारी यह सात रोज तक हमारे जूते उठाओ, तो तुम्हारी लड़की को लड़की समझकर, क्षमा कर, लड़के के साथ एक आसन पर बैठने का अधिकार हम देंगे। क्षत्रिय होकर क्षत्रिय के साथ वैसा नीच बर्ताव तुम देखते रहे।''[१५]

इस कहानी में राजाओं के आपसी वैमनस्य एवं प्रतिशोध, समाज-सुधार का दिल से समर्थन करने वाले युवकों की रूढ़िगत संकीर्णता, क्षत्रिय के गौरव-बोध एवं राज-घराने में रक्षिताओं का पूर्ण प्रभाव जैसी तत्कालीन घटनाएँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। निराला स्वयं भी महिषादल के राजा के यहाँ नौकरी कर चुके थे एवं सामन्ती परिवेश की संकीर्णताओं का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव था। अतः सामन्ती परिवेश पूरी जीवन्तता से यहाँ चित्रित हुआ है।

हिरनी

'हिरनी' सामंती अत्याचार में पिसती निरीह बालिका की करुण कथा है। कृष्णा की बाढ़ में अकाल-पीड़ितों की सेवा करते हुए मद्रास के पतित पावन संघ के प्रधान निरीक्षक चिदम्बर को एक अनाथ बालिका मिलती है। बालिका के माता-पिता बाढ़ की ध्वंस-लीला का शिकार हो चुके थे। चिदम्बर उसे अनाथ आश्रम में भर्ती कर देने के उद्देश्य से ले जाता है किन्तु संयोगवश उन्हीं दिनों उसकी मुलाकात सिंहपुर के राजा रामनाथ सिंह रामेश्वरजी से होती है। बालिका का प्रसंग छिड़ने पर, उसकी करुण-कथा को सुनकर राजा अत्यन्त द्रवित हो उठते हैं एवं कारुण्य-वश उसे सिंहपुर ले जाते हैं। आठ साल की लड़की रानी साहिबा की दासियों से स्नेह तथा निरादर प्राप्त करती हुई, उन्हीं में रहकर उन्हीं के संस्कारों से ढलती हुई धीरे-धीरे परिणत हो चली। काम में तेज एवं सरल होने के कारण वह शीघ्र ही रानी साहिबा की प्रिय दासी बन जाती है। उसकी सजग एवं चकित दृष्टि अरण्य की, दल से छूटी हुई हिरनी की याद दिलाती

थी। यह देखकर रानी साहिबा उसे हिरनी नाम देती है। हिरनी जब जीवन के रूपोज्ज्वल वसन्त में कली की तरह मधु सुरभि बिखेर रही थी, उसी समय इंगलैण्ड से शिक्षा प्राप्त कर लौटे रामकुमार की दृष्टि उस पर पड़ती है एवं राजकुमार उस पर आसक्त हो जाते हैं। रानी दूसरी दासियों से यह समाचार पाकर कि रामकुमार हिरनी को दो तीन बार बुला चुके हैं उसका विवाह अपने एक कहार रामगुलाम के साथ प्रासाद के आँगन में ही संपन्न करा देती है। साल भर में ही हिरनी एक कन्या की माँ बनती है। रानी-साहिबा का स्नेह, हिरनी के कन्या-स्नेह के बढ़ने के साथ-साथ उस पर से घटने लगा। लड़की की बीमारी के कारण हिरनी दो दिन की छुट्टी ले गई थी। उससे ईर्ष्या करने वाली दासियाँ रानी साहिबा के कान भरती हैं। रानी साहिबा क्रोधित हो हिरनी को उसी वक्त बुला लाने का आदेश देती हैं। बालिका की दवा दूध में घोल रही हिरनी के केश निर्दयतापूर्वक खींचता हुआ बूटा सिंह उसे रानी साहिबा के सम्मुख उपस्थित करता है। उनकी मुद्रा तथा क्रूर चितवन से सहमी हिरनी अपने निरपराध होने की क्षमा प्रार्थना करती है। परन्तु रानी साहिबा पर उसकी क्षमा-याचना का कोई असर नहीं होता। वे उसको झुकाकर मारने के लिए घूसा बांधती हैं कि हिरनी के मुँह से 'हे राम जी' निकलता है। रानी साहिबा की नाक से खून की धारा बह निकलती है और वे मूर्छित हो जाती हैं। हिरनी के बाल मुख उसी खून से रंग जाते हैं। डाक्टरों के मतानुसार गुस्से से खून सर पर चढ़ जाता है। तब से जरा भी गुस्सा करने पर रानी साहिबा को वह बीमारी हो जाती है।

यह कहानी राजा-रजवाड़ों के अन्तःपुर में दास-दासियों के आपसी ईर्ष्या-द्वेष एवं रानी साहिबा के अपनी दासियों के साथ क्रूर एवं निर्दय व्यवहार का चित्रण प्रस्तुत करती है। हिरनी का मातृत्व किस प्रकार रानी साहिबा की क्रूरता का शिकार होता है। इसका भी करुणापूर्ण चित्रण यहाँ देखने को मिलता है।

सखी

लखनऊ के आइसाबेला थाबर्न कालेज की बी.ए. की छात्रा एवं सम्पन्न घराने की ज्योतिर्मयी उर्फ जोत द्वारा एम.ए. की छात्रा अपनी निर्धन सखी लीला के लिए किए गए त्याग पर यह कहानी अवलम्बित है। ज्योतिर्मयी आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न कुल की कन्या है जिसके लिए आई.सी.एस. श्यामलाल का विवाह प्रस्ताव आता है। लीला ज्योति की अन्तरंग सखी है। ज्योति के शब्दों में वह कॉलेज की एक कैरेक्टर है जो ट्यूशन करके अपने छोटे भाइयों एवं बूढ़ी माँ का सहारा बनती है। सुन्दर, कुछ लम्बे गोरे मुख एवं बड़ी-बड़ी आँखों वाली लीला मेहनत की मारी सूखकर काँटा हो रही है। वह नित्य तअल्लुकदार रघुनाथ सिंह की पत्नी को पढ़ाने भैंसाकुण्ड जाती है। कई लफंगे कुछ रोज से उसका पीछा करते हैं। एक दिन उनकी अश्लील छींटाकशी से घबराई हुई लीला की मुलाकात देशी साहब से होती है। लीला उन्हें अपनी विपद गाथा सुनाती है। साहब को देखकर लफंगे भाग जाते हैं। साहब सामने ही स्थित अपने बंगले पर उसे ले जाते हैं एवं मोटर पर घर पहुँचवा देने का आश्वासन देते हैं। बातचीत के मध्य यह राज खुलता है कि वे सज्जन आई.सी.एस. श्याम लाल हैं जिन्होंने लीला की सखी जोत के पास पत्र

लिखकर विवाह प्रस्ताव रखा है। लीला उन्हें आश्वासन देकर कि वह जोत से पत्र लिखने को कहेगी अपने घर चली आती है। इसके बाद कहानी एक नाटकीय मोड़ लेती है जब तीन दिन बाद बाबू श्याम लाल को जोत का उत्तर मिलता है। उसके पत्र की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं – "जिस मजनू की जो लैला होती है, वह इसी तरह उसे अपने आप मिलती है। अपनी लैला की आप हमेशा रक्षा करें, आपसे सविनय मेरी प्रार्थना है।"[१५] जोत का अपनी निर्धन सखी के लिए यह त्याग कहानी में अविश्वसनीय सा प्रतीत होता है। किन्तु कहानीकार ने त्याग का यह उदाहरण दिखाकर कथा को सुखान्त बनाने के साथ-साथ उसमें आदर्शवाद की प्रतिस्थापना की है। जोत और लीला के चरित्र के माध्यम से आदर्श सखीत्व का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। किन्तु जोत द्वारा भेजा गया प्रस्ताव श्यामलाल को स्वीकार्य है या नहीं इसका कोई संकेत कहानी में नहीं मिलता। जोत अपने पत्र में श्यामलाल से अपनी सखी को वरण करने का अनुरोध ही नहीं करती, अपनी हास्य वृत्ति का भी परिचय यह लिख कर देती है कि –"तब मेरा और आपका रिश्ता और मधुर हो जायगा, क्योंकि बहन जिसे ब्याहती है, वह अगर पत्नी की बहन को साली कह सकते हैं, तो पत्नी की बहन भी उन्हें वही पुरुष सम्बोधन कर सकती है। आशा है, मेरा आपका यह सम्बन्ध स्थायी होगा।"[१६] प्रसंगवश इसमें कॉलेज जीवन की झलकियाँ, छात्राओं के मध्य होने वाले शुद्ध निर्मल हास्य की छटा भी देखने को मिलती है। किन्तु अपनी अन्य कहानियों की भांति ही निराला ने इसमें भी एक गंभीर समस्या उठाई है और वह यह है कि आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर नारी को भी पुरुषों की कुदृष्टि से बचने के लिए श्यामलाल जैसे पुरुषों की अपेक्षा है।

न्याय

न्याय का रक्षक ही जब भक्षक बनकर अन्याय पर उतारू हो जाता है तो कर्त्तव्य-परायण युवक किस चतुराई से अपने आपको उनके चंगुल में फँसने से बचाता है, यही इस कहानी का वर्ण्य-विषय है। राजीव नामक युवक कर्तव्य-परायण होने के साथ-साथ बलिष्ठ शरीर का स्वामी भी था। प्रातः भ्रमण के लिए वकील लाला महेश्वरी प्रसाद को गोमती तट पर घायल अवस्था में एक युवक दिखाई पड़ता है जो उनसे निकाल लेने का अनुरोध करता है। किन्तु आसन्न विपत्ति की आशंका से भीरु हृदय वकील साहब उसे उसी अवस्था में छोड़कर अपने बंगले की ओर लौट पड़ते हैं एवं पास के बंगले से युवक राजीव को बुलाकर उसे गोमतीतट पर जाने को कहते हैं। युवक घायल की दशा देखकर सहानुभूति से भर उठता है एवं उसे अपने डेरे पर लाकर उसके बयान लेता है। उसे अस्पताल ले जाने का निर्णय कर वह अपने पड़ोस के रईस के यहाँ जाकर उनकी मोटर माँगता है। किन्तु वे डिप्टी साहब से मिलने जाने का बहाना बना कर निगाह फेर लेते हैं। यहाँ तक कि एक तांगेवाला बुलाने पर वह भी घायल की अवस्था देखकर "आप हमें फँसाना चाहते हैं? यह रास्ते भर को भी तो न होगा।"[१७] कहकर उसे ले जाने से इनकार कर देता है। इस बीच घायल का खेल खत्म हो जाता है। हताश युवक थाने में जाकर रिपोर्ट लिखाता है। दारोगा तहकीकात के लिए आते हैं और अधूरे तथा अस्पष्ट बयान एवं बलिष्ठ शरीर वाले राजीव को देखकर उसी पर हत्या का आरोप लगा उसे गिरफ्तार कर थाने ले जाते हैं। उसी समय इक्कीस

बाईस साल की सुन्दरी थाने पहुँचती है और राजीव को निरपराध बताते हुए अपने तर्क जाल में दारोगा जी को ही फँसा देती है। दारोगा जी अपने पर ही आँच आती देखकर युवक को छोड़ देते हैं एवं अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं "जान पड़ता है, यह कोई क्रान्तिकारी था, बम लिये जा रहा था, एकाएक बम के धड़ाके से काम आ गया है।"[14] यही नहीं वरन् डाक्टर की परीक्षा में भी जख्मों के भीतर से सीसे के कुछ नुकीले टुकड़े मिलते हैं।

यह कहानी पुलिस विभाग के हथकंडों का पर्दाफाश करती है। अपने आपको पाक-साफ दिखाने के लिए पुलिस वाले किस प्रकार बेगुनाह को गुनहगार ठहराकर दिन-रात न्याय का गला घोंटते हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस कहानी में देखने को मिलता है। राजीव के रूप में उस युवा वर्ग का चित्रण किया गया है जो "कर्त्तव्य की ओर देखता है, काल्पनिक भविष्य विपत्ति की ओर नहीं।"[15] पुलिस विभाग की ज्यादतियों के कारण आम नागरिक अन्याय एवं अत्याचार देखकर भी मौन रहता है यहाँ तक कि किसी मरणासन्न व्यक्ति की सहायता से भी मुँह मोड़ लेता है इसका चित्रण भी कहानी में व्यंग्य रूप में किया गया है।

राजा साहब को ठेंगा दिखाया

प्रस्तुत कहानी एक सत्य घटना को आधार बनाकर लिखी गयी है जो बंगाल और उड़ीसा को जोड़ने वाली रूपनारायण नदी से काटकर निकाली गयी एक नहर के किनारे स्थित पद्मदल राजधानी से सम्बन्धित है। नहर घाट से डेढ़ मील के फासले पर शक्तिपुर नामक गाँव में विश्वम्भर भट्टाचार्य नामक एक गरीब ब्राह्मण रहता है। शक्तिपुर से तीन कोस दूर रंगनगर में राज्य की विशालाक्षी देवी के मन्दिर का वह पुजारी है। तीन रुपया महीना, रोज पूजा के लिए तीन पाव चावल और चार केले प्राप्त करने वाले गरीब विश्वम्भर का पाँच आदमियों का परिवार घोर आर्थिक कष्ट में अपना निर्वाह कर रहा है। गरीब ब्राह्मण को इधर बीस महीने से वेतन भी नहीं मिला। राजा के पास दो दर्जन से ज्यादा दरख्वास्त भेजने पर भी प्रत्युत्तर में सहायता न मिलने पर विवश हो एक दिन स्वयं ही राजा को सांकेतिक भाषा में अपनी स्थिति बयान करने चला। राजा उस समय किश्ती पर हवाखोरी करने निकले थे। विश्वम्भर प्रतीक्षा में खड़ा रहा। नजदीक पहुँचने पर उसने एक अद्भुत ध्वनि से राजा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और "राजा साहब को अपनी तरफ देखते हुए देखकर उसने हवा में उँगली से लिखकर राजा साहब की ओर कोंचा, फिर पेट खलाकर दोनों हाथों को मरोड़ा, फिर दाहिने हाथ से मुँह थपथपाया, फिर दोनों हाथों के ठेंगे हिलाकर राजा साहब को दिखाया।"[16] राजा साहब ने इन संकेतों से अपने को अपमानित अनुभव किया एवं उनके सिपाहियों ने इस बेअदबी के लिए उस पर पाशविक अत्याचार किए। राजा साहब के जासूसों ने भी उनके मन में यह बात बिठा दी कि "शक्तिपुर के बागी विश्वम्भर से मिले हैं, उन्होंने उसे बेवकूफ जानकर महाराज का उससे अपमान कराया।"[17] प्राणों की भाषा में विश्वम्भर ने अपने भाव प्रकट किये थे– "हवा में लिखकर, कोंचकर बताया था, तुम्हें लिख चुका हूँ, पेट मलकर कहा था, भूखों मर रहा हूँ, मुँह थप-थपाकर और ठेंगे हिलाकर बतलाया

था, खाने को कुछ नहीं है।" इतनी स्पष्ट भाषा में समझाने का पुरस्कार उसे यह मिला कि घाव पुरने पर स्टेट की तरफ से "अब तुम्हारी नौकरी की सरकार को आवश्यकता नहीं रही" का आज्ञा पत्र मिला।

इस कहानी में एक ओर राजाओं के वैभव-विलास एवं ऐश्वर्य का भव्य चित्र तो दूसरी ओर गरीब ब्राह्मण की करुण स्थिति का चित्रण करके कथाकार ने शोषक एवं शोषित वर्ग के मध्य के सुदीर्घ अन्तराल को प्रस्तुत किया है। राजाओं के अमानुषिक पाशविक अत्याचार में पिसती निरीह जनता का दयनीय चित्र प्रस्तुत कर कथाकार ने सामन्ती परिवेश के प्रति घृणा एवं गरीबों के प्रति पाठकों की सहानुभूति का भाव जगाने का सफल प्रयास किया है।

देवी

'देवी' निराला की अति यथार्थवादी कहानी है। इसमें निराला की लोक-संवेदना ने युग के विद्रूप को उसके यथार्थ रूप में उद्घाटित कर समाज के कालुष्य को प्रकट किया है। अपनी अन्य कहानियों एवं उपन्यासों की भाँति निराला ने इसमें किसी छायावादी नायिका की अवतारणा नहीं की है बल्कि फुटपाथ पर रहने वाली एक गूँगी भिखारिन का करुण एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। प्रकृति की मारों से लड़ती हुई उस अनाथ पगली में संसार की स्त्रियों की एक भी भावना नहीं। उसका डेढ़ साल का लड़का रास्ते के किसी ख्वाहिशमन्द का सबूत है। निराला की बड़प्पन वाली भावना को इस स्त्री के भाव ने पूरा-पूरा परास्त कर दिया क्योंकि उन्हें लगता है कि "मैं बड़ा हो भी जाऊँ, मगर इस स्त्री के लिए कोई उम्मीद नहीं। इसकी किस्मत पलट नहीं सकती।" अनगिनत ग्रीष्म, वर्षा को झेलने वाली इस पगली को देखकर कथाकार को लगता है कि "लोग नेपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते हैं। पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोचता।" निराला ने उसमें उस रूप के दर्शन किए जिसे "मैं कल्पना में लाकर साहित्य में लिखता हूँ, केवल वह रूप नहीं, भाव भी।" यहाँ तक कि उसे देखकर उन्हें महाशक्ति की बार-बार याद आने लगी और 'पगली का ध्यान ही मेरा ज्ञान हो गया।' वे उसके बच्चे में भारत का सच्चा रूप देखने लगे। उनकी आत्मा से यही ध्वनि निकलती है– "संसार ने उसे जगह नहीं दी है - उसे नहीं समझा, पर संसारियों की तरह वह भी है– उसके भी बच्चा है।" एक बार जब नेता का जुलूस निकलने पर भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया तो पगली का मातृ-हृदय जाग उठता है और वह ज्वालामयी दृष्टि से जनता को देखती है। निराला की सहानुभूति पाकर पगली उन्हें अपना परम हितकारी समझने लगती है। वे जब तब पगली को पैसे देकर उसकी मदद करने लगे। जाड़े की सर्द रातों में हाड़ तक छिद जाने वाले जाड़े से काँपकर करुण स्वर से रोती हुई पगली की पीड़ा निराला के संवेदनशील हृदय को छू जाती है क्योंकि "ईश्वर ने मुझे केवल देखने के लिए पैदा किया है।" अपनी असमर्थता कहानीकार के इन शब्दों में फूट पड़ती है। डबल निमोनिया हो जाने के कारण पगली का देहावसान हो जाता है एवं उसका बच्चा श्री दयानन्द अनाथालय भेज दिया जाता है।

इस तरह देवी कहानी आज की सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है। कहानी में रेखाचित्र- धर्मिता विद्यमान है। इसमें लेखक ने अनेक जगहों पर आत्म-साक्ष्य प्रस्तुत किया है। कहानी के आरम्भिक अंश में लेखक ने अपने साहित्यिक जीवन की असफलता का उल्लेख किया है— "बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा। मुझे यह ख्याल था कि मैं साहित्य की रक्षा के लिए चक्रव्यूह तैयार कर रहा हूँ। इससे उसका निवेश भी सुन्दर होगा और उसकी शक्ति का संचालन भी ठीक-ठीक। पर लोगों को अपने फँस जाने का डर होता था, इसलिए इसका फल उल्टा हुआ। जब मैं उन्हें साहित्य के स्वर्ग ले चलने की बातें कहता था, तब वे अपने मरने की बातें सोचते थे, यह भ्रम था। इसलिए मेरी कद्र नहीं हुई। मुझे बराबर पेट के लाले रहे। पर फाकेमस्ती में भी मैं परियों के ख्वाब देखता रहा।"[8]

डा० रामविलास शर्मा के अनुसार— "देवी में निराला व्यंग्य का ऐसा प्रबन्ध-संगीत रचते हैं जिसमें अनेक भावों के तार झंकृत होते हैं।"[9]

"देवी का व्यंग्य इतना प्रभावपूर्ण इसलिए है कि उसका लक्ष्य व्यक्ति विशेष नहीं है वरन् वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें मुफ्तखोर पूजे जाते हैं— और जिन्हें पूजना चाहिए, वे ठोकरें खाते हैं। यहाँ पर निराला जी ने भारतीयता के नाम पर जो अन्याय लीला होती है, उसकी हकीकत बयान कर दी है।"[10]

चतुरी चमार

'चतुरी चमार' वर्ण-व्यवस्था पर कुठाराघात करते हुए समाज के उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति जगाने वाली सशक्त कहानी है। स्वयं निराला ने चतुरी चमार को अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानी स्वीकार किया है। अन्य समीक्षकों की दृष्टि में भी चतुरी चमार कहानी "अपनी मार्मिकता और संवेदना के सहारे मानव मन के विश्लेषण और सर्वांगीण अध्ययन में सफल हुई है।"[11]

चतुरी चमार इस कहानी का नायक है जो गाँव के रिश्ते में निराला का भतीजा लगता है और जिसके लिए निराला 'गौरवे बहुवचनम्' लिखना चाहते हैं क्योंकि वह अपने 'उपानह-साहित्य में आजकल के अधिकांश साहित्यिकों की तरह अपरिवर्तनवादी है। उसके जूते अपरिवर्तनवाद के चुस्त रूपक जैसे टस-से-मस नहीं होते।' यही नहीं बल्कि चतुरी चतुर्वेदी आदिकों से सन्त-साहित्य का कहीं अधिक मर्मज्ञ एवं कबीर पदावली का विशेषज्ञ है। क्रमशः उसका मानसिक विकास होता है लेकिन कहानीकार के अनुसार "वह एक ऐसे जाल में फँसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका, पूरा जोर उभड़ रहा है, पर एक कमजोरी है जिसमें बार-बार उलझकर रह जाता है।"[12] चतुरी के पुत्र अर्जुन को पढ़ाने के प्रसंग में कहानीकार ने उच्चवर्गीय अहंकार की व्यंजना की है। इस स्थल पर निराला के चिर जीव उस पर प्रकृति-विरुद्ध दबाव डालते हैं क्योंकि चमार दबेंगे, ब्राह्मण दबायेंगे। समाज का यह शोषित वर्ग अपने संस्कारों से ग्रस्त है। चतुरी-पुत्र को शिक्षा देने के अपराध में गुरुमुख ब्राह्मणों द्वारा निराला के घड़े का जल-त्याग तथाकथित उच्च कुलीन ब्राह्मणों की संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है।

कहानी में स्वदेशी-आन्दोलन, स्वतन्त्रता-संग्राम, झण्डा-गीत, दरोगा की तहकीकात, मंदिर का झण्डा और फिर थानेदार द्वारा तहकीकात के दौरान पूछे जाने पर निराला द्वारा 'युधिष्ठिर की तरह सत्य रक्षा' आदि प्रसंग तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिदृश्यों का सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं। शोषक जमींदार के आतंक के खिलाफ नव-जीवित किसान वर्ग का प्रतिनिधि चतुरी टूटता है, पर झुकता नहीं है, अन्त तक संघर्ष करता है। शोषक वर्ग की नैतिक पराजय और अपनी नैतिक विजय से प्रसन्न चतुरी अपनी हार में भी संतोष का अनुभव करता है।

इस कहानी में रेखाचित्र-धर्मिता पायी जाती है। इस तरह रेखाचित्र, संस्मरण एवं कथा के तत्त्व मिश्रित होकर चलते हैं जो निराला की कहानियों की विशिष्ट तकनीक है। डा० नरपत सिंघवी इस कहानी को प्रगतिवादी साहित्य का घोषणा पत्र मानते हैं। उनके अनुसार– ''निराला द्वारा यथार्थवादी कहानियों में जीवन के जिस यथार्थ सत्य की अभिव्यंजना प्रस्तुत की गई, उसने आगे चलकर प्रगतिशील कहानीकारों के लिए नये क्षितिज खोल दिये हैं, नये आयाम प्रस्तुत कर दिये हैं। 'देवी' तथा 'चतुरी चमार' इसके साक्षी हैं।''[१०]

स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं

प्रस्तुत कहानी वस्तुतः संस्मरण और रेखाचित्र विधा का समन्वित रूप है जिसमें निराला ने अपने जीवन के एक विशेष काल-खण्ड का स्मृति-चित्र प्रस्तुत किया है। सन् १९२१ निराला के जीवन का वह समय था जब घोर आर्थिक-संकट एवं प्रकाशकों की उपेक्षा के बावजूद वे साहित्य-साधना में तल्लीन थे। आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी से वे इतने प्रभावित थे कि उनके दर्शन करने के लिए दस-दस कोस पैदल चलकर जाते थे। आचार्य द्विवेदी निराला की आर्थिक परतन्त्रता, उच्च-शिक्षा के प्रमाण-पत्र के अभाव, उनके प्रबल मर्यादा-ज्ञान एवं उनकी प्रतिभा से परिचित थे। उन्हीं के आशीर्वाद से निराला 'समन्वय' से जुड़े एवं 'उद्बोधन' कार्यालय, बागबाजार में रहने के दौरान सन् १९२२ में पहले-पहले स्वामी सारदानन्द के उन्होंने दर्शन किए। स्वामी जी के सम्मोहन में बंधे निराला ने अपनी प्रबल विरोधी शक्ति के बावजूद उनमें ईश्वरतत्व के दर्शन कर लिए थे। इसीलिए किसी के सामने सिर न झुकाने वाले निराला की स्वल्पता स्वामी जी ने अपनी पूर्णता देकर ले ली। यही नहीं बल्कि उनके गले में उँगली से बीजमन्त्र भी लिखा। इसका प्रभाव निराला पर इतना गहरा पड़ा कि उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनका निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरवाला नीचे हो गया है। आध्यात्मिक शक्तियों पर विश्वास न रखने वाले लोगों को यह बात भले ही अविश्वसनीय लगे परन्तु बंगाल के सरस और भावुक वातावरण में श्रद्धालु संन्यासियों के बीच रहने वाले निराला का यह स्वप्न ''ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की बाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ–''[११] पूर्ण संभव हो सकता है। निराला समन्वय-सम्पादन-काल में जिन विचित्र आध्यात्मिक अनुभवों से गुजरे थे, तथा उनके साहित्य पर रामकृष्ण मिशन का जो प्रभाव पड़ा था उसका संकेत यह रेखाचित्र देता है। डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के अनुसार– ''यह संस्मरण वैसा मर्मस्पर्शी नहीं, जैसा कि 'देवी' या 'चतुरी चमार' है किन्तु इससे कवि के

जीवन के विकास का पता चलता है, किस प्रकार वह अंधविश्वासों के विरुद्ध लड़ा और यह भी कि उसकी इच्छा-शक्ति कितनी प्रबल है।''[५]

इस कहानी में निराला के आरम्भिक संघर्षशील जीवन की झलक मिलती है।

सफलता

प्रस्तुत कहानी भारतीय समाज में अभिशप्त विधवा आभा एवं प्रकाशकों की उपेक्षा का शिकार साहित्यकार नरेन्द्र की दृढ़ता एवं संकल्प शक्ति के सहारे जीवन में सफलता अर्जित करने की घटना पर प्रकाश डालती है। युवती आभा साल भर पूर्व अपना सुहाग खो चुकी है। गाँव के किनारे धुले धवल शिवालय में देवता पर पुष्प-अर्पित करना उसका नित्य का कर्म बन चुका है। यहीं उसकी मुलाकात यशस्वी साहित्यिक नरेन्द्र से होती है। दोनों एक दूसरे की तरफ आकर्षित होते हैं। एक दिन एकान्त में आभा सम्पूर्ण साहस बटोर कर उससे संसार-दुःख से मुक्ति पाने का मार्ग पूछ बैठती है। नरेन्द्र उसे धैर्य रखने का उपदेश देता है। नरेन्द्र साहित्य का बाजार भाव लेता हुआ, कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी, पटना, गया होता हुआ कलकत्ता पहुँचता है एवं अन्त में और कोई उपाय न देखकर उसे विवश होकर अनुवाद कार्य स्वीकार करना पड़ता है। उसे अपने साहित्यिक मित्र स्नेह शरण की याद आती है जो एक सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक होते हुए भी बड़ा दरिद्र एवं उपेक्षित था। नरेन्द्र बड़ा बनने का निश्चय कर पुनः अपने गाँव लौटता है। इस बार वह आभा से स्पष्ट शब्दों में कहता है– ''मेरे घर में बहुत दिनों से अंधेरा है, उसमें प्रकाश भर दो। मैंने तुम्हारी शिक्षा के लिए जायदाद बेची है।''[६] नरेन्द्र की दृढ़ता को सर्वस्व सौंपकर आभा उसका वरण कर लेती है। कुछ दिनों तक दोनों गाँव में ही रहते हैं क्योंकि पाखंडों में जकड़े गाँव वालों को नरेन्द्र बता जाना चाहता है कि ''हम भागने वाले नहीं थे, तुम्हें, भगाने वाला रास्ता बतलाने वाले थे।''[७] इन सारी अड़चनों को पार कर नरेन्द्र आभा को लेकर दिल्ली पहुँचता है। अपनी और आभा की एक तस्वीर ब्याह के सुखद स्वतन्त्र ब्यौरे के साथ मासिक तथा साप्ताहिकों के सम्पादकों के पास भेज देता है। सम्पादकों की लिखी ओजस्विनी टिप्पणियों के साथ दोनों का सुन्दर चित्र प्रकाशित होता है। इस तरह नरेन्द्र और आभा लोगों की प्रशंसा के पात्र बन बैठते हैं। नरेन्द्र आभा को नृत्य और संगीत तथा अक्षर-विज्ञान की शिक्षा दिलवाता है। दोनों नाट्य-कला के क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। लोग उनकी तारीफों के पुल बाँधने लगते हैं। जिस विधवा की छाया तक उस समय के भारतीय समाज में अस्पृश्य समझी जाती थी वही विधवा आभा नरेन्द्र जैसे साहित्यकार की परिणीता बनकर लोगों के आदर्श का पात्र बन जाती है। स्त्रियों की पत्रिका 'पतिव्रता' उसके बारे में लिखती है– 'हमारी देवियों को इससे बढ़कर दूसरा आदर्श नहीं मिल सकता कि पति और पत्नी सम्मिलित रूप से कला की सेवा में लगें।''[८] अपने नये नाटक सुभद्रा-जुर्न का शहर-शहर में प्रदर्शन करते हुए दोनों काशी पहुँचते हैं। यहाँ 'पवित्रा' रंगशाला के मालिक एवं 'आरती' के प्रकाशक स्वयं नरेन्द्र से मिलते हैं एवं उससे रंगशाला के भाड़े के लिए चालीस सैकड़ा का प्रस्ताव रखते हैं। नरेन्द्र पन्द्रह सैकड़ा देने को तैयार है एवं उन्हें यह कहकर अपमानित करता है– ''मैं ६

महीने में एक किताब लिखता था, पर उसके लिए आपने मुझे १५ सैकड़ा भी नहीं दिया।'' कहानी का अन्त अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। सफलता के उच्चतम सोपान पर पहुँचकर मनुष्य किस तरह व्यक्तिगत सुख के एक क्षण को अमूल्य समझता है इसका उदाहरण आभा का वह वाक्य है जब वह नरेन्द्र से कहती है– ''दुःख बहुत थे जरूर, पर मन्दिर का वह दीप जलाने वाला जीवन मुझे बड़ा सुखमय लग रहा है।''

भक्त और भगवान

'भक्त और भगवान' निराला की उत्कृष्टतम कहानियों में से एक है। इसमें कहानीकार ने भक्त निरंजन के माध्यम से अपने ही व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिक विकास का एक शृंखलाबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया है। भक्त निरंजन की ही भाँति निराला का सम्पूर्ण जीवन भी आसक्ति और विरक्ति के भावों से पूर्ण था।

भक्त निरंजन के पिता ने उसे समस्त सांसारिक तापों से मुक्त रखा। महावीर जी की सिन्दूर-सजी मूर्ति और घर पर सिन्दूर का सुहाग धारण किये नवीन पत्नी के साम्य को वह नहीं समझ पाता क्योंकि 'भक्ति बुद्धि नहीं, पूजा चाहती है।' इसी तरह स्वप्न में पत्नी का कथन कि – ''प्रिय महावीर को मैं मस्तक पर धारण करती हूँ।'' एवं 'अर्थ सब मैं हूँ - मुझे समझो' - भी भक्त की समझ से परे है क्योंकि वह जाग्रत लोक से ज्यादा बंधा था। उसकी मुक्ति जाग्रत की मुक्ति थी। इसी तरह एक अन्य अवसर पर महावीर की मूर्ति को जब गुलाब से सजाकर वह घर लौटता है तो पत्नी को गुलाबी साड़ी में देखकर वह प्रफुल्लित हो उठता है।

इन तीन चित्रों में भक्त की मनः स्थिति का मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण है, भक्त के भावुक हृदय की भक्तिपरक कल्पना प्रस्तुत है। भक्त के जीवन में जिस आवर्त की चर्चा कहानीकार ने की है वस्तुतः वैसा आवर्त स्वयं उसके जीवन में आया था जब प्रिय पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्य ईश्वर को प्यारे हो गए थे। कहानी में भक्त का स्वामी प्रेमानन्द के सम्पर्क में आना, उन्हें तुलसीकृत रामायण सुनाना जैसे अंश भी निराला के जीवन चरित्र से मेल खाते हैं।

'तुलसीदास' एवं 'राम की शक्ति पूजा' की भाँति ही इसमें भी निराला ने विराट दृश्यों की कल्पना की है। इस कहानी में आध्यात्मिकता की जो भावना विद्यमान है, वही अपने परिवर्तित रूप में 'राम की शक्ति पूजा' में प्रकट हुई है। 'भक्त और भगवान' में निराला स्वप्न में अपनी प्रिया को माता अंजना के रूप में देखते हैं, उसी प्रकार 'तुलसीदास' काव्य में तुलसीदास रत्नावली को जगत् जननी सीता के रूप में देखते हैं।

मन के ऊर्ध्वगमन की प्रक्रिया में भक्त महावीर जी की वीर-मूर्ति में सम्पूर्ण भारत के दर्शन करता है। इस विराट कल्पना को कहानीकार ने इस दृश्य में संजोया है– ''मन इतने दूर आकाश पर था कि नीचे समस्त भारत देखा, पर वह भारत न था- साक्षात् महावीर थे, पंजाब की ओर मुँह, दाहिने हाथ में गदा - मौन शब्द-शास्त्र, बंगाल के ऊपर दायें-बायें पर हिमालय पर्वत की श्रेणी, बगल के नीचे बंगोपसागर, एक घुटना वीर-वेश-सूचक-टूटकर गुजरात की ओर बढ़ा

हुआ, एक पैर प्रलम्ब – अँगूठा कुमारी - अन्तरीप, नीचे राक्षस-रूप लंका-कमल – समुद्र पर लिखा हुआ।"

डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के अनुसार – "कहानी मध्यकालीन भक्ति के स्थान पर राष्ट्रभक्ति और उसके भी ऊपर प्रेम की महत्ता को स्थापित करती है। भक्त को प्रिया महावीर की माता के रूप में दिखाई पड़ती है ..... प्रेम का यह महान् आदर्श निराला जी ही समझते हैं।"

कहानी में प्रसंगवश राजाओं द्वारा प्रजा का शोषण, गरीबों की दीन-हीन अवस्था की भी चर्चा की गयी है। डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार – "कहानी में गद्य-गीत का-सा वाग्वैदग्ध्य, भावुक हृदय की भक्तिपरक कल्पना, मन का ऊर्ध्व संचरण, सशक्त सामाजिक संवेदना और आसक्ति-विरक्ति के द्वन्द्व विविध रूपों में उपस्थित हुए हैं।" प्रभावान्विति और उद्देश्य की दृष्टि से भी यह एक उत्कृष्ट कहानी है। डॉ० रामविलास शर्मा मानते हैं – "भक्त और भगवान निराला की और हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में है। इस कहानी में निराला को छायालोक दिखाई देता है, किन्तु छायालोक से भिन्न वास्तविक स्थूल-संसार का बोध कहीं लुप्त नहीं होता।"

सुकुल की बीवी

प्रस्तुत कहानी कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के जातीय दम्भ, हिन्दुओं की कट्टर संकीर्णता एवं हिन्दू-मुस्लिम-विवाह समस्या पर आधारित है। कहानी संस्मरणात्मक है साथ ही इसमें रेखाचित्र-धर्मिता भी पायी जाती है। पुखराज की माता सभ्य हिन्दू घराने की महिला है किन्तु वाजपेयी घराने के अतिचार के कारण अपने पति द्वारा उसे लांछित कर घर से निकाल दिया जाता है। उस समय एक मुसलमान के घर उसे आश्रय मिलता है और यहीं वह पुखराज को जन्म देती है। निराला ने हिन्दू नारी की विवशता का कारुणिक चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है। कुलीन वर्ग के अत्याचार के कारण एक सभ्य घराने की हिन्दू महिला मुसलमान बनने पर मजबूर कर दी जाती है। इस तरह एक ओर हिन्दुओं की संकीर्णता तो दूसरी ओर मुसलमानों की विधर्मी को भी अपना बना लेने की सहज उदारता का वर्णन यहाँ कहानीकार ने किया है। इसके पश्चात् पुखराज के सुकुल की ओर आकर्षित होने तथा एक दिन सुकुल का किला तोड़कर हमेशा के लिए उसके घर जा बैठने का बड़ा रोचक वर्णन है। इसी पुखराज के अनुरोध पर निराला उसे अपनी बहन पुष्कर कुमारी बनाकर सुकुल के साथ उसका विवाह रचाते हैं। इस विवाह की सबसे महत्वपूर्ण बात यह होती है कि इसमें हिन्दी-भाषी विभिन्न प्रांतों के साहित्यिकों के साथ-साथ अनेक 'कनवजिए' भी शामिल होते हैं।

कथा के आरम्भ में निराला ने अपने साहित्य-समुद्र-मंथन के दिनों का मार्मिक वर्णन किया है एवं किस प्रकार महान साहित्यकार प्रकाशकों की उपेक्षा का शिकार होता है इसका मर्मस्पर्शी वर्णन है। निराला ऐसे प्रथम कहानीकार हैं जो स्वयं पर भी व्यंग्य करने से नहीं चूकते। इसका उदाहरण कहानी में तब देखने को मिलता है जब किसी महिला के अपने से मिलने आने की बात उन्हें ज्ञात होती है। उस समय का बड़ा रोचक वर्णन इन पंक्तियों में मिलता है – 'अपना

नंगा बदन याद आया। ढकता, कोई कपड़ा न था। कल्पना में सजने के तरह-तरह के सूट याद आये, पर वास्तव में, दो मैले कुर्ते थे। बड़ा गुस्सा लगा, प्रकाशकों पर। कहा, नीच हैं, लेखकों की कद्र नहीं करते। उठकर मुंशी जी के कमरे में गया, उनकी रेशमी चादर उठा लाया। कायदे से गले में डालकर देखा, फबती है या नहीं। जीने से आहट नहीं मिल रही थी, देर तक कान लगाये बैठा रहा। बालों की याद आयी– उकस न गये हों। जल्द-जल्द आईना उठाया। एक बार मुंह देखा, कई बार आँखें सामने रख-रखकर। फिर शीशा बिस्तरे के नीचे दबा दिया। शॉ की 'गेटिंग मैरेड' सामने करके रख दी। डिक्शनरी की सहायता से पढ़ रहा था, डिक्शनरी किताबों के अन्दर छिपा दी। फिर तनकर गम्भीर मुद्रा से बैठा।'' इस वर्णन में पूर्ण मनोवैज्ञानिकता निहित है।

अपने छात्र-जीवन के वर्णन के प्रसंग में सुकुल की धार्मिक कट्टरता का हास्य-मधुर चित्र खींचा गया है। सगर्व लम्बी शिखा रखने वाले सुकुल का सिद्धान्त कि 'सिर कट जाय, चोटी न कटे' कभी निराला की समझ में नहीं आया। ऐसे कट्टरपंथी सुकुल आगे चलकर प्रगतिशील सिद्ध होते हैं जब वे समस्त सामाजिक कट्टरताओं की उपेक्षा करके पुष्करकुमारी से विवाह करते हैं। यहाँ कहानीकार हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को मिटाने का प्रयास करते नज़र आते हैं।

सुकुल की बीबी का निराला ने बड़ा भव्य चित्र खींचा है। उनकी बौद्धिकता तथा दृढ़ता से सिर्फ सुकुल ही उनके सहधर्मी नहीं बनते बल्कि निराला भी अत्यन्त प्रभावित होते हैं। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि निराला के पुरुष पात्र नहीं, अपितु नारी पात्र ही सामाजिक विद्रोह एवं रूढ़ियों के प्रति क्रांति करने को अग्रसर हुए हैं।

कहानी आत्म-व्यंजक शैली में लिखी गयी है एवं यहाँ समाज-विद्रोह अधिक तीक्ष्ण एवं सजग है। कहानीकार ने साम्प्रदायिक सद्भाव के साथ-साथ अपने प्रगतिशील व्यवहार का भी परिचय दिया है। यह कहानी उनके अपने अनुभवों पर आश्रित है जिसका संकेत 'कला की रूपरेखा' और 'कुल्लीभाट' में मिलता है।

हास्य एवं व्यंग्य निराला की शैली के प्राण-तत्त्व हैं एवं इसकी सुमधुर छटा वे अनेक प्रसंगों में दिखाते हैं।

उच्च-शिक्षा द्वारा ही हमारे सामाजिक जीवन की घृणामूलक साम्प्रदायिक स्पर्द्धा दूर हो सकती है, यह संदेश इस कहानी द्वारा ध्वनित होता है।

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी व्यंग्य प्रधान कहानी है। इसमें धार्मिक रूढ़ियों, विवाह के साथ जुड़ी तमाम कुप्रथाओं एवं छद्म राजनीतिज्ञों पर कटु प्रहार किए गए हैं। कहानी का आरम्भ ही व्यंग्यात्मक शैली में धार्मिक प्रहार से होता है। कहानीकार ने प्रथम अनुच्छेद में ही कहानी लिखने का उद्देश्य भी स्पष्ट किया है– ''श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं० गजानन्द शास्त्री की धर्म पत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्री जी ने आपके साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस साल का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ शास्त्रिणी

का साइन-बोर्ड टाँगा, धर्म की रक्षा के लिए। शारिणी जी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चलीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है, धर्म की रक्षा के लिए।"[८]

इस तरह कहानी के आरम्भ में ही कहानीकार ने ढलती उम्र वाले पुरुषों के वैवाहिक आकर्षण एवं युवती पत्नी की लालसा रखने वाले अधेड़ उम्र के पुरुषों द्वारा धर्म की रक्षा के नाम पर तीन-तीन चार-चार विवाह किए जाने के औचित्य पर कटु व्यंग्य किया है। कहानी में अनमेल विवाह, प्रेम के नाम पर होने वाले व्यभिचार, विवाह तय कराने वाले दलालों की धूर्तता एवं सौदेबाजी, नवविवाहिता षोडशी पत्नी का वृद्ध पति के प्रति दृष्टिकोण, प्रेम में असफल नारी की प्रतिहिंसा, राजनीति के दाँव-पेच आदि समस्याओं का सफल चित्रण किया गया है। पं० रामखेलावन सामाजिक मर्यादा के भय से अपनी षोडशी गर्भवती कन्या का विवाह पैंतालीस वर्षीय पं० गजानन्द शास्त्री से कर देते हैं। उनकी विद्वान किन्तु चपल कन्या सुपर्णा भी प्रेम में असफल होने पर बिना विरोध किये विवाह के बहाव में अपने को बहा देती है। वृद्ध पति की एकान्त भक्ति सुपर्णा के भाग्य का द्वार खोल देती है और फिर उसके नाम से स्त्रियों के लिए बिना फीस वाला रोग परीक्षणालय खोल दिया जाता है। अचानक एक दिन सुपर्णा के हाथ 'तारा' पत्रिका लगती है जिसमें उसके पूर्व प्रेमी मोहन की 'व्यर्थ प्रणय' शीर्षक कविता छपी थी। कविता उसी को लक्ष्य कर लिखी गयी थी और प्रेमिका का उसमें वही प्रेम दर्शाया गया था जो कवि को स्वर्ग से मिला जाता है। मोहन से बदला लेने की भावना से सुपर्णा का हाड़-हाड़ जलने लगता है। यहाँ सुपर्णा के चरित्र के माध्यम से कहानीकार ने उस नारी की मनः स्थिति का यथातथ्य चित्रण किया है जो प्रेम में असफल होने पर प्रेमी के प्रति क्रूर प्रतिहिंसा की भावना से सुलगने लगती है एवं प्रतिक्षण बदला लेने की ताक में रहती है। शादी के पूर्व ही गर्भवती हो जाने वाली यही सुपर्णा अब प्राचीन पतिव्रत धर्म की दुहाई देते हुए लेख लिखती है। यही नहीं बल्कि आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर एम.एल.ए. तक हो जाती है। "उसके चरित्र से समाज में प्रगति करने वाली ऐसी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व होता है जो अपनी चारित्रिक दुर्बलता के बावजूद भी समाज में आगे बढ़ती चली जाती हैं।"[९]

कला की रूपरेखा

वस्तुतः यह कहानी न होकर एक प्रकार से आत्म-संस्मरण है जिसमें लेखक ने अपने जीवन के एक विशेष काल-खण्ड में घटित होने वाली घटनाओं पर प्रकाश डाला है। इसमें निराला के व्यक्तिगत जीवन के कुछ प्रसंगों का उल्लेख है। कहानी के आरम्भिक अंश में प्रयाग में पं० वाचस्पति पाठक के यहाँ निराला के रहने का उल्लेख है। एक दिन पाठक जी द्वारा प्रश्न किए जाने पर कि कला क्या है? निराला ने अपने कला सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किए हैं – "अनादि काल से अब तक सृष्टि को गिनने की कोशिश जारी है, पर अभी तक वह गिनी नहीं जा सकी, अधिकांश में बाकी है। वह एक-एक सृष्टि एक-एक कला है। फलतः कला क्या है, यह बतलाना कठिन है। अद्वैतवाद में, सृष्टि के गिनने की असमर्थता के कारण, सृष्टि का अस्तित्व ही उड़ा दिया

गया है। इसलिए कहा, कला कुछ नहीं है। कला के दो-चार सौ, दो-चार हजार, दो-चार लाख, दो-चार करोड़ रूप ही बतलाये जा सकते हैं। पर इससे कला पूरी-पूरी न बतलायी गयी। पर एक बोध है, उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है, जैसे ब्रह्म के अलग-अलग रूपों की बात नहीं कही गयी, केवल सच्चिदानन्द कह दिया गया है। इसी को साहित्यिकों ने सत्य, शिव और सुन्दर कहकर अपनाया है।''[५] इसके पश्चात् हिन्दी-भाषियों के दुर्बल मस्तिष्क एवं रुग्णग्रस्तता की चर्चा है एवं एक मुसलमान सज्जन द्वारा निराला का परिचय पूछे जाने पर अपनी प्रत्युत्पन्नमति द्वारा निराला ने अपना जो अनूठा परिचय दिया, उसका वर्णन है। इस प्रसंग में उनकी विनोद-प्रियता के दर्शन तब होते हैं जब उन सज्जन द्वारा 'इस्मशरीफ' पूछे जाने पर और कोई नाम न सूझने पर निराला अपना नाम 'बकुफ हुसेन' बतलाते हैं। इस कहानी में निराला ने अपने औघड़-दानी स्वभाव का परिचय भी दिया है जब ठंड में ठिठुरते एक मदरासी को वे अपना मोटा-खद्दर का चादर उतार कर दे देते हैं एवं पाठक जी के शब्दों में आखिर अपना बतलाया नाम सार्थक कर देते हैं। दो महीने पश्चात् लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन में उसी सज्जन को कांग्रेसी स्वयं सेवक के रूप में देखकर निराला को जैसे कला का जीवित रूप मिल जाता है। परन्तु इस बार जब वह उनसे गरमी के असहनीय ताप से बचने के लिए एक जोड़ी चप्पल दिलाने का अनुरोध करता है तो निराला लज्जा से गड़ जाते हैं क्योंकि उनके पास तब केवल छः पैसे थे। इस प्रकार इस पूरी कहानी में निराला के व्यक्तित्व के कतिपय अंश देखने को मिलते हैं। महाकवि को जिस आर्थिक विपन्नता का सामना करना पड़ा था उसका जिक्र भी कहानी में तब आया है जब धनाभाव के कारण कांग्रेस कमेटी की बैठक में जाने का विचार प्रबल इच्छा के बावजूद उन्हें त्यागना पड़ता है। प्रसंगवश कांग्रेस-कर्मियों की स्वार्थी मनोवृत्ति का परिचय भी कहानी में मिलता है। मदरासी व्यक्ति एवं बाद में कांग्रेसी स्वयं सेवक के रूप में समाज के उपेक्षित, दीन-हीन परन्तु ईमानदार व्यक्तियों का चरित्र भी कहानी में प्रस्तुत हुआ है।

क्या देखा

'क्या देखा' निराला की प्रथम कहानी है जिसमें वेश्या समस्या को प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी का रचनाकाल संभवतः १९२२ है। सर्वप्रथम यह कहानी 'मतवाला' के अंकों में पाँच किस्तों में प्रकाशित हुई थी। बाद में कहानीकार ने इसमें काट-छाँट एवं कुछ परिवर्तन कर दिए। इस कहानी में समाज के एक उपेक्षित वर्ग वेश्या की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। रूप के बाजार में बैठने वाली और अपने हाव-भाव से ग्राहकों को रिझाने वाली वेश्या भी सम्पूर्ण हृदय से किसी को प्रेम कर सकती है, प्रेम का उच्च आदर्श स्थापित कर सकती है, यही इस कहानी का वर्ण्य विषय है। कहानी की नायिका वेश्या हीरा शुद्ध हृदय से प्यारे लाल से प्रेम करती है किन्तु प्यारे लाल के विचार से– ''अगर वह वेश्या है तो वह उसी की क्यों न हुई जिसके पास धन है? परन्तु यह किसी दुश्मन की कारस्तानी भी हो सकती है कि मुझे फँसाने के लिए उसने सधकर यह जाल रचा हो?''[६] मन में यह शंका होने पर भी प्यारे लाल हीरा के प्रति कहीं-न-कहीं आसक्त है।

इस बात का पता होंग की छोटी बहन शान्ता को चल जाता है जो बेथुन कॉलेज की छात्रा है तथा अमरसिंह के रूप में बीमार प्यारे लाल की सेवा-सुश्रुषा करती है। बहन के प्रेम को सार्थक बनाने के लिए वह अपना बलिदान कर देती है। शान्ता के चरित्र के माध्यम से निराला ने त्याग एवं तपस्यामयी भारतीय नारी की छवि को प्रस्तुत किया है। इस कहानी में घटनाओं की प्रधानता है। कहानी के आरम्भ में व्यंग्य पूर्ण शैली में हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात उठायी गयी है और 'शान्ति के ठेकेदार' जैसा व्यंग्यपूर्ण सम्बोधन पुलिस वालों को दिया है। कहानी के आरम्भ में दी गयी निराला की यह व्यंग्योक्ति द्रष्टव्य है– ''हिन्दू मुसलमानों की एकता के दृश्य कोई आँखे खोलकर देखना चाहे तो जब चाहे, हमारे पच्छिम वाले झरोखे से झाँक कर देख ले। यह अनन्य प्रेम हम सुबह-शाम हमेशा देखा करते हैं। हिन्दुओं के पालतू कुत्ते और मुसलमानों की मुर्गियाँ भी प्रेम करती हैं। उनका द्वेष-भाव बिल्कुल दूर हो गया है।''[4] इसी तरह शिवजी पर चार चावल चढ़ाकर चक्रवर्ती बनने की कामना रखने वाले हिन्दुओं पर भी व्यंग्य किया गया है। कहानी उत्तम पुरुष शैली से प्रारम्भ होती है एवं पर्याप्त कौतूहल जगाती हुई पत्रात्मक शैली में समाप्त होती है। मध्य में एक साहित्यिक के सौन्दर्योपासना और ब्रह्मचर्य-पालन दोनों को एक साथ निभाने के अन्तर्द्वन्द्व का भी कहानी में बखूबी वर्णन किया गया है। नायक प्यारेलाल के रूप में संभवत: निराला स्वयं कहानी में उपस्थित हैं।

सम्पूर्ण कहानी के अवलोकन के पश्चात् कहा जा सकता है कि इस प्रथम कहानी में ही निराला के सशक्त कथाकार होने के बीज विद्यमान थे।

देवर का इन्द्रजाल

'देवर का इन्द्रजाल' निराला के हरफनमौला व्यक्तित्व का परिचय देती एक कौतुक प्रधान कहानी है। निराला अपने साहित्य में ही नहीं बल्कि अपने जीवन में भी प्रयोगधर्मी रहे हैं। उनकी इसी प्रवृत्ति का परिचय इस कहानी में मिलता है। कहानी के आरम्भ में पाँच वर्ष की आयु वाले निराला का अठारह साल की अपनी भाभी से प्रेम का वर्णन है। अपने जीवन के इस प्रसंग की चर्चा वे 'मिठाई के साथ कुछ खटाई भी चलती है'– कहकर करते हैं। ढाई वर्ष की अत्यन्त अल्पायु में मातृ-सुख से वंचित निराला का मदरसे जाना और भाभी का आना लगभग साथ-साथ हुआ। उन्हीं दिनों इन्द्रजाल की एक पुस्तक किशोर निराला के हाथ लगी और उसके मारन-मोहन, वशीकरण-उच्चाटन जैसे विषयों को पढ़कर वे अपने को सिद्ध मानने लगे। यही नहीं बल्कि एक मंगलवार को नंग-धड़ंग अवस्था में उलटे जूते से एक छछूँदर को मार कर भाभी को भी यह विश्वास दिला दिया कि वे सिद्ध हैं। धीरे-धीरे उनकी इस अद्भुत सिद्धि लाभ की कथा अड़ोस-पड़ोस में फैल गयी और विभिन्न प्रकार के रोगों के निवारण के लिए जगह-जगह से उनके बुलावे भी आने लगे। कुछ में वे सफल भी हुए। तभी पड़ोस में रहने वाली और रिश्ते में निराला की बहन लगने वाली युवा सुकलाइन को उनके ढोंगी होने का सन्देह हुआ। भाभी की चुनौती को कबूल कर निराला ने वशीकरण मन्त्र का प्रयोग करना चाहा परन्तु उनकी दृढ़ता देखकर

सुकलाइन भीतर से हिल गयी और यह जानने पर कि मन्त्र के जोर से हमेशा उनके पीछे लगे रहना होगा जहाँ-जहाँ वे जाएँगे, वहाँ-वहाँ जाना होगा – बहन का विश्वास हिल गया और उन्होंने यह कहकर कि मैं बहिन हूँ, फूल लेने से इनकार कर दिया। इस तरह निराला ने भाभी पर अपने सिद्ध होने का विश्वास और दृढ़ कर दिया। प्रस्तुत कहानी यों तो निराला के जीवन की एक विशेष घटना पर प्रकाश डालती है परन्तु तत्कालीन समाज में किशोर वय बालकों पर इन ऐन्द्रजालिक पुस्तकों का कितना प्रभाव पड़ता था इसका भी उद्घाटन करती है। निराला अपने इन गुणों के कारण भी अल्पायु से ही अपने निरालेपन का परिचय देने लगे थे इसका आभास यह कहानी कराती है।

जान की

इस कहानी का रचना काल १९४१ ई० है। यह कहानी भी एक प्रकार का संस्मरण कही जा सकती है। इस कहानी की रचना के समय निराला कम्यूनिज्म से प्रभावित थे। कहानी में स्वयं उन्होंने स्वीकारा है– "मैं रूसी साहित्य का प्राचीन सहोदर हूँ।"[५] इतना ही नहीं बल्कि कम्यूनिज्म के सिद्धान्तों के प्रचारक एवं सक्रिय कार्यकर्ता भी थे। इसी प्रचार के सिलसिले में वे एक बार कर्वी में अपने अंतरंग मित्र शंकर के यहाँ ठहरे हुए थे। वहीं शंकर की पुत्री माया की शिक्षिका के रूप में जिस महिला को निराला ने देखा, उसे देख वे चकित रह गए क्योंकि उसकी आकृति उनकी स्वर्गवासी पत्नी से बहुत मिलती थी। फर्क सिर्फ इतना ही था कि इसमें एक दृढ़ता थी किन्तु उनकी पत्नी में ऐसी दृढ़ता नहीं थी। उसे देखकर कहानीकार को लगा जैसे उनका कुल स्वत्व इसने खींच लिया। मित्र की पत्नी उनकी यह व्याकुलता भाँप गयी। उसका परिचय कुछ अधिक जानने की आतुरता से निराला ने जब अपने मित्र शंकर से पूछताछ की तो उनके मित्र की प्रतिक्रिया ठीक उनकी मनोदशा के विपरीत रही– "पक्की छिनाल है। कानपुर के किसी गाँव की रहने वाली है। कहते हैं पति बदमाश था, उसे सजा हो गयी, यह इधर-उधर फिरने लगी। किसी तरह यहाँ आयी, पैर जम गये। जानते तो हो इन लोगों को।"[६]

प्रस्तुत कहानी में एक ओर निराला ने स्वयं को कम्यूनिस्ट घोषित किया है वहीं दूसरी ओर यह भी उद्घाटित होता है कि निराला पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता भी थे। सबसे प्रमुख समस्या का उल्लेख कहानी के अन्तिम अंश में किया गया है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र, आत्म-निर्भर तथा पढ़ी लिखी नारी उस समय के रूढ़िग्रस्त लोगों की मानसिकता के अनुसार हेय मानी जाती थी। उसका स्वतंत्र भाव से रहना लोगों की नजरों में उसकी दुश्चरित्रता का प्रमाण था – यह यहाँ शंकर के कथन के माध्यम से स्पष्ट हुआ है।

विद्या

निराला के समस्त कथा-साहित्य में केवल मात्र यही एक कहानी ऐसी है, जो उद्देश्य की दृष्टि से शून्य है। इस कहानी की नायिका विद्या अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. कर रही है एवं अंग्रेजी भाषा के प्रति उसकी गहरी रुचि उसके संवादों से परिलक्षित होती है। श्याम इस कहानी का

नायक संस्कृत भाषा का ज्ञाता एवं प्राचीन विचारों का पोषक है। विवाह के पश्चात् बातचीत की समझौते वाली भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने के प्रश्न पर दोनों ही एकमत हैं। इस कहानी की सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यही है कि नायिका विद्या अंग्रेजी एवं नायक श्याम संस्कृत में अपने संवाद बोलते हैं। सम्भवतः भाषिक दृष्टि से कहानीकार ने एक नवीन प्रयोग के विचार से ही इस कहानी की रचना की है। हिन्दी-साहित्य के प्रकांड विद्वान होते हुए भी अंग्रेजी जैसी आधुनिक एवं संस्कृत जैसी प्राचीन भाषाओं में भी निराला निष्णात थे, यह इस कहानी से स्पष्ट है।

दो दाने

प्रस्तुत कहानी बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है। इसमें बाढ़ की विभीषिका से उत्पन्न भुखमरी की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। पेट की ज्वाला शांत करने के लिए अपनी युवा पुत्री को शरीर व्यापार के लिए तैयार करने वाली विधवा कमला की करुण कथा इस कहानी का वर्ण्य विषय है। 'दो दाने' कहानी समाज के शोषण एवं अनाचार का पर्दाफाश करती है। चम्पा के रूप में उस अबोध बालिका का चित्रण किया गया है जिसके "हृदय में कम्प है, लेकिन पुलक नहीं, आत्मा में कर्तव्य निष्ठा है, लेकिन स्त्री भाव वाला सम्प्रदान नहीं।"[13] कमला उस विवश विधवा का प्रतिनिधित्व करती है जिसे दो दाने जुटाने की खातिर अपनी युवा पुत्री के शरीर का सौदा करना पड़ता है। उसकी मर्मान्तक अवस्था का चित्रण निराला ने इन शब्दों में किया है– "हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। पुरानी मर्यादा का बाँध टूट रहा था। दुख के आँसू उमड़कर सारा घर डुबा देना चाहते थे। बच्चे सहम न जायँ, चम्पा घबरा न जाय कि आता हुआ दाना तूफान और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से दिल को बाँध रही थी।"[14] कहानी में बिहारी, सेठ झाबरमल एवं फौज के अफसर तरुण साहित्यिक इन तीन पुरुष पात्रों की अवतारणा कमला की व्यथा-कथा के उद्दीपन के रूप में की गयी है। बिहारी के रूप में उस दलाल का चित्रण किया गया है जो गृहस्थ नारी की विवशता का नाजायज फायदा उठाते हैं और उन्हें रूप के बाजार में बैठाने में अहम् भूमिका निभाते हैं। सेठ झाबरमल व्यवसायी वर्ग का प्रतिनिधि है। उसकी आँखों से कामुकता का दरिया उमड़ता है। दूसरे का गला नापने फिरने वाले, अन्नचोर सेठ झाबरमल चम्पा पर अपना एकाधिकार चाहते हैं इसीलिए बिहारी से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं – "हम पहले हैं तो दूसरे की आशा नहीं रखते।"[15] तरुण साहित्यिक अफसर के रूप में एक ऐसे चरित्र की अवतारणा हुई है जिसके देश-प्रेम के अन्दर से वासना की घोर बदबू निकल रही थी। कुल मिलाकर यह कहानी दुर्भिक्ष की विभीषिका के चित्रण के साथ पाठक के मन में करुणा जगाने में सफल होती है।

कहानियों का वस्तु-विन्यास कौशल

निराला की कहानियाँ वर्ण्य-विषय की दृष्टि से सामाजिक, संस्मरणात्मक एवं दार्शनिक-धार्मिक की कोटि में रखी जा सकती हैं। इनमें सामाजिक जीवन के विभिन्न संदर्भ बड़ी कुशलता

से घिरोए गए हैं। सामाजिक कहानियों की कथावस्तु पर्याप्त सुसंगठित है। लेखक कहीं वातावरण चित्रण द्वारा तो कहीं नायिका के रूप-सौन्दर्य के चित्रण द्वारा कथा का आरम्भ करते हैं। तत्पश्चात् उसे मुख्य समस्या से जोड़ते हुए चरम तक पहुँचाते हैं। 'पद्मा और लिली', 'कमला', 'हिरनी', 'न्याय', 'सफलता' आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

कथा को गतिशील बनाने के लिए कथाकार नाटकीय घटनाओं की संयोजना करते हैं जो औत्सुक्य एवं कौतूहल में वृद्धि तो करते ही हैं, कथा-विकास में भी सहायक होते हैं। 'प्रेमपूर्ण तरंग', 'क्या देखा' एवं 'हिरनी' जैसी कहानियों में ऐसे कई स्थल देखे जा सकते हैं।

निराला की कहानियों की कथा वस्तु में कहीं शुद्ध हास्य तो कहीं व्यंग्य के छींटे लक्षित किए जा सकते हैं। 'प्रेमपूर्ण तरंग', 'क्या देखा', 'सुकुल की बीवी', 'चतुरी चमार' में हास्य-मिश्रित व्यंग्य की मधुर छटा ने कहानी को रोचकता प्रदान की है।

कल्पना और यथार्थ के बीच का अन्तर्विरोध कहानियों में पूरी तीव्रता से प्रकट होता है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण 'श्यामा' कहानी है। इसमें पहली बार निराला की सामन्त-विरोधी चेतना को प्रकट करने वाला किसान उपस्थित हुआ है। धर्म की आड़ लेकर पापकर्म करने वालों पर एक ओर निराला प्रहार करते हैं वहीं दूसरी ओर जमींदार द्वारा किसानों पर अमानुषिक अत्याचार का मर्मस्पर्शी वर्णन भी करते हैं। साथ ही साथ एक शूद्र-कन्या का ब्राह्मण युवक के साथ विवाह कराकर सामाजिक रूढ़ियों एवं जातिगत वैषम्य मिटाने का क्रांतिकारी कदम भी उठाते हैं।

निराला की आरम्भिक कहानियों की विषय-वस्तु में कल्पना की प्रधानता है किन्तु शनैः-शनैः कथाकार यथार्थ की ओर उन्मुख होता है। उनकी कथा-यात्रा की चरम परिणति यथार्थ की ठोस भूमि पर होती है। जहाँ पूर्णतः मोहभंग की स्थिति में पहुँचकर निराला 'देवी', 'चतुरी चमार', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' एवं 'दो दाने' जैसी कहानियाँ लिखते हैं। विषय वस्तु के अनुरूप ही इनमें कथाकार ने कहानियों का नया रूप आविष्कृत किया है। 'देवी' एवं 'चतुरी चमार' कहानी में लेखक निराला की उपस्थिति संस्मरण का आभास देती है तो पगली एवं चतुरी का वर्णन रेखाचित्र जैसा लगता है। किन्तु अपनी तूलिका के एक ही संस्पर्श से निराला सम्पूर्ण संस्मरण को कहानी में परिवर्तित कर देते हैं। इन कहानियों के कई प्रसंग अपने अंदर गहरा अर्थ समेटे हुए हैं।

निराला की दार्शनिक कहानियाँ उद्देश्य प्रधान हैं। इनमें कथानक गौण रूप से आया है। संयोगाश्रित घटनाओं की बहुलता के कारण इन कहानियों के कथानक में कुछ अस्वाभाविकता भी आ गयी है। 'अर्थ' एवं 'भक्त और भगवान' कहानियाँ इसी कोटि की हैं। इन कहानियों के कथानक में अध्यात्मतत्व तथा सामान्य जीवन-दर्शन में समन्वय स्थापित करने का प्रयास कथाकार ने किया है। पात्रों को आत्मज्ञान की अनुभूति कराने के लिए स्वप्न-पद्धति का आश्रय लिया गया है। विश्लेषण की प्रधानता होने के कारण इनमें कई स्थलों पर रहस्यात्मकता की सृष्टि हुई है।

वस्तुतः निराला का उद्देश्य केवल कहानी कहना न होकर चरित्रों के माध्यम से अपनी

दृष्टि को प्रकट करना ही था। इसलिए उन्होंने कथानक के बने बनाये साँचे से अलग हटकर अपने उद्देश्य के अनुरूप पात्रों की कल्पना की है। इनकी कहानियों में कसाव और घनापन है।

निराला के उपन्यासों का वस्तु-विन्यास

अप्सरा

'अप्सरा' १९३१ ई० में प्रकाशित निराला का प्रथम उपन्यास है। इसमें छायावादी भावुकता, कल्पना की रंगीनी, इन्द्रधनुषी सौन्दर्य के साथ-साथ राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी भावनाओं का अत्यन्त कलात्मकता के साथ चित्रण किया गया है। उपन्यास का नामकरण कृति की नायिका कनक के अनिन्द्य रूप-सौन्दर्य की ओर ध्वन्यात्मक संकेत करता है। उपन्यास का सम्पूर्ण कथा-कलेवर वेश्या-पुत्री कनक एवं हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर राजकुमार वर्मा के प्रेम एवं विवाह की घटनाओं को लेकर निर्मित किया गया है।

कलकत्ता के इडेन-गार्डेन में सायंकालीन भ्रमण के लिए गई अप्सरा-सी सुन्दर वेश्या-पुत्री कनक पर पुलिस सुपरिंटेंडेंट हैमिल्टन साहब की कुदृष्टि पड़ती है एवं वह बलात्कार का प्रयत्न करता है। उसी समय नवयुवक राजकुमार कनक के शील एवं कौमार्य की रक्षा करता है। उसके शौर्य एवं साहस पर अनुरक्त कनक कोहनूर थियेटर में शकुन्तला नाटक के अभिनय के समय दुष्यन्त बने राजकुमार से गान्धर्व रीति से हुए विवाह को अपने जीवन का सच मान लेती है एवं अपनी अंग्रेजी-शिक्षिका कैथरिन की मदद से हैमिल्टन साहब एवं दारोगा के चंगुल से राजकुमार को छुड़ाती है। जीवन में भोग-विलास को स्पर्श न करने को प्रतिश्रुत राजकुमार कनक के प्रेम-पाश में इस तरह आबद्ध हो जाता है कि उसे 'मेरी सुबह की पलकों पर उषा की किरण, मेरे साहित्यिक जीवन-संग्राम की विजय, मेरी आँखों की ज्योति' आदि कहकर अभिहित करता है। इसी समय संवाद-पत्र में अपने मित्र चन्दन सिंह के लखनऊ - षड्यंत्र में गिरफ्तारी का समाचार पढ़कर पुनः उसकी क्रांतिकारी विचारधारा सक्रिय हो उठती है एवं वह कनक का प्रेम ठुकराकर अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होता है। राजकुमार की रुक्षता से खिन्न कनक विजयपुर के राजकुमार के अभिषेक-समारोह में जाना स्वीकार कर लेती है। इधर चन्दन सिंह की क्रांतिकारी पुस्तकों को अपने घर में छिपाकर उसकी भाभी तारा को उसके मायके में पहुँचाने गए राजकुमार के वस्त्रों में सिंदूर का दाग देखकर तारा सारा रहस्य जानकर राजकुमार को प्रेरित कर कनक को लाने के लिए भेजती है। विजयपुर के चरित्रहीन, कामुक राजकुमार के चंगुल से कनक को अत्यन्त चतुराई से मुक्त करा कर चन्दन, तारा, कनक और राजकुमार कलकत्ता पहुँचते हैं। वहीं राजकुमार और कनक का विवाह सम्पन्न होता है और चन्दन सिंह राजकुमार के धोखे में गिरफ्तार कर लिया जाता है।

इस सम्पूर्ण कथा-वृत्त में वेश्या-समस्या को उठाकर निराला ने जहाँ एक ओर वेश्या की करुण स्थिति से लोगों को अवगत कराया है वहीं दूसरी ओर उसमें कृतज्ञता, उदारता,

प्रत्युत्पन्नमतित्व, शालीनता जैसे गुण दिखाकर नारी समाज के सम्मुख एक आदर्श रखने की कोशिश की है। यह उपन्यास वेश्या के सम्बन्ध में हमारे पूर्वाग्रहों को तोड़ता है। यही नहीं बल्कि एक क्रांतिकारी समाज-सुधारक की भूमिका निभाते हुए निराला ने वेश्या-पुत्री का विवाह कराके उसे सामाजिक प्रतिष्ठा एवं पत्नीत्व की मर्यादा भी प्रदान की है तथा इस समस्या का एक व्यावहारिक हल भी प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त परोक्ष रूप में राजनीति की चर्चा भी कृति में की गयी है। ताल्लुकेदार एवं पुलिस कर्मचारियों के विलासमय जीवन की झांकी भी प्रस्तुत की गयी है। विजयपुर के राजकुमार तथा उनके साथियों का कुत्सित आचरण तत्कालीन सामन्ती विलासिता का नग्न दृश्य उपस्थित करता है। चन्दन सिंह एवं उसकी क्रांतिकारी गतिविधियाँ तत्कालीन राजनीतिक जीवन का सच्चा चित्र उपस्थित करती हैं साथ ही स्वदेशी-आन्दोलन एवं देशोन्नति को समर्पित युवावर्ग की मानसिकता का दिग्दर्शन भी उपन्यासकार ने कराया है।

उपन्यास के आरम्भ में कथाकार ने एक काल्पनिक, रंगीन, वायवीय वातावरण की सृष्टि की है लेकिन धीरे-धीरे वह यथार्थ की ठोस भूमि पर उतरता है और तब देश, समाज एवं राजनीति के दृश्य-फलक उपन्यास में उभरते हैं।

कथा में काल्पनिक अतिरंजना एवं संयोगों का बाहुल्य है किन्तु वे भी सोद्देश्य नियोजित किए गए हैं। कुछ घटनाएँ तिलस्मी एवं ऐय्यारी उपन्यासों की काल्पनिक अस्वाभाविक घटनाओं का आभास कराती हैं। कनक का दारोगा और हैमिल्टन साहब को शराब पिलाकर राजकुमार के पकड़े जाने का रहस्य मालूम करना, उन्हें जज के सम्मुख जलील करके राजकुमार को छुड़ाना, चन्दनसिंह का अत्यन्त नाटकीय ढंग से विजयपुर के राजकुमार के चंगुल से कनक को मुक्त कराना आदि ऐसी ही घटनाएँ हैं।

उपन्यास में कथानक का विन्यास व्यवधान-सृष्टि एवं निराकरण नियोजन द्वारा हुआ है। उपन्यास के आरम्भ में ही नायक राजकुमार द्वारा नायिका की रक्षा करते देखकर कथानक में उत्सुकता उत्पन्न होती है। उनकी सीधी सरल प्रणय कथा को वक्रता प्रदान करने के लिए चन्दन और तारा की प्रासंगिक कथा का समावेश किया गया है। यह प्रासंगिक कथा मुख्य-कथा को चरम स्थिति तक पहुँचाने और मुख्य पात्रों के सुखद मिलन में सहायक होती है। कथानक में विशेष परिस्थितियों की सर्जना द्वारा नायक-नायिका का अनेक बार मिलन और वियोग होता है जो कथानक को नाटकीयता प्रदान करता है किन्तु अन्ततः इसकी चरम परिणति दोनों के विवाह-सूत्र में बंधने से होती है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक इस अर्थ में युगान्तरकारी है कि इसने प्रेमचन्द के 'सेवासदन' को चुनौती दी है। प्रेमचन्द एक गृहस्थ रमणी को वेश्या के रूप में पतित होते दिखाते हैं किन्तु उसका समाधान अत्यन्त निराशाजनक है क्योंकि उसे समाज में कोई स्थान न दिला पाने की स्थिति में वे 'सेवासदन' की स्थापना करा देते हैं। यहाँ निराला प्रेमचन्द से एक कदम आगे हैं

क्योंकि वे वेश्या-पुत्री का न केवल विवाह कराते हैं बल्कि उनके विवाह को सामाजिक स्वीकृति दिलाकर हिन्दू समाज के रूढ़िगत संस्कारों से मुक्ति का उद्घोष भी करते दिखाई देते हैं।

उपन्यास के सम्पूर्ण कथा-वृत्त को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी उपन्यासों की परम्परा में 'अप्सरा' एक क्रांतिकारी कदम है जो एक साथ ही प्रेम, रोमांस, कल्पना, भावुकता, देशभक्ति एवं वैचारिक क्रांति के सूत्रों से संग्रथित है।

अलका

'अलका' निराला का दूसरा उपन्यास है जो इनके प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' के प्रकाशन के दो वर्ष पश्चात् १९३३ में प्रकाशित हुआ। इस कृति का नामकरण उपन्यास की नायिका अलका के नाम के आधार पर हुआ है। यों तो उपन्यास की सम्पूर्ण कथा-वस्तु इसके केन्द्रीय चरित्र अलका के ही इर्द-गिर्द घूमती है किन्तु फिर भी इसमें जमींदारों की स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, मध्यम वर्ग की अवसरवादिता के साथ-साथ उपेक्षित, शोषित ग्रामीणों की दीनता तथा परवशता का भी यथार्थ चित्रण हुआ है। उपन्यास में अनेकानेक सामाजिक समस्याओं का वर्णन भी यथा-प्रसंग किया गया है।

उपन्यास के आरम्भ में ही महासमर के पश्चात् देश में फैली महाव्याधि का कारुणिक चित्र उपस्थित किया गया है। साथ ही देश में फैली बीमारी, भुखमरी, बेकारी का चित्रण किया गया है। अवध में फैली इसी महामारी में शोभा के माता-पिता को देहांत हो गया। जिलेदार महादेव प्रसाद बेसहारा शोभा की मदद करता है किन्तु उसकी नीयत रूपसी शोभा को इलाके के जमींदार मुरलीधर के हरम में पहुँचा देने की है। अपनी सखी गाथा के पति के माध्यम से सम्पूर्ण षडयन्त्र की जानकारी होने पर शोभा किसी तरह गाँव छोड़कर भाग खड़ी होती है एवं पंडित स्नेहशंकर जैसे आदर्श जमींदार के गृह में आश्रय पाती है। वहीं उसकी सघन केश-राशि देखकर स्नेहशंकर जी उसका 'अलका' नामकरण करते हैं।

कथावस्तु के इस भाग में एक ओर जमींदार-रिआया का संघर्ष दिखाया गया है वहीं दूसरी ओर रक्षक के भक्षक बनने पर प्रजा की बहू-बेटियों के सतीत्व पर मँडराते संकट को कथाकार ने चित्रित किया है।

पंडित स्नेहशंकर जी के वात्सल्य एवं उनकी पुत्र वधू सावित्री की स्नेहछाया में अलका का सर्वांगीण विकास होता है एवं वह सुशिक्षिता, प्रतिभाशालिनी प्रगल्भ आधुनिका बन जाती है।

उधर शोभा का पत्र पाने पर उसका पति विजय जब गाँव पहुँचता है तो वहाँ शोभा के किसी के साथ भाग जाने का समाचार पाकर सन्यासी बनकर अपने मित्र अजित के साथ देश-सेवा का व्रत लेकर ग्रामवासियों के उत्थान में लग जाता है। यहाँ वह जमींदारों के कुचक्रों का शिकार होता है। कथावस्तु के इस भाग में कृषकों के जमींदारों से भय, आपसी असहयोग, जमींदार तथा शोषक वर्ग की दमन-नीति, उनकी प्रतिशोध भावना तथा उनके कु-कृत्यों का खुलकर वर्णन किया गया है।

जमींदारों की कूटनीति का शिकार होने पर विजय को भी जेल जाना पड़ता है किन्तु वहाँ से छूटने पर वह प्रभाकर नाम से लखनऊ में पुनः देश-सेवा का कार्य करने लगता है। यहीं स्नेहशंकर के मित्र डिप्टी कमिश्नर के यहाँ अलका से प्रभाकर की मुलाकात होती है। अलका के वैदुष्य एवं उसकी वैचारिक दृढ़ता से प्रभावित होकर प्रभाकर उससे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करता है। एक दिन रात्रि समय कन्या पाठशाला से घर लौटती अलका को पहचान कर राजा मुरलीधर अपने कुछ सहायकों के साथ उसका बलपूर्वक अपहरण करने की कोशिश करते हैं किन्तु उन्हीं की पिस्तौल से अलका उनकी हत्या कर देती है। मुरलीधर की हत्या को आत्मघात मानकर अदालत से अलका को बरी कर दिया जाता है। अत्यन्त नाटकीय ढंग से यह रहस्य खुलता है कि अलका विजय की परिणीता शोभा ही है एवं प्रभाकर और कोई नहीं बल्कि उसका पति विजय ही है। इस तरह कथा का सुखद समापन किया गया है।

'अलका' उपन्यास की सम्पूर्ण कथा-वस्तु यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़ी है। अपने प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' में जहाँ निराला छायावादी कल्पनाशीलता से अधिक प्रभावित रहे हैं वहीं अलका में उनकी दृष्टि जीवन की यथार्थता की ओर अधिक रही है। अतः जन साधारण के दुःख-दर्द का मार्मिक चित्रण इसमें किया गया है। 'अलका' वास्तव में 'अप्सरा' पर कसी गई आवाजों की प्रतिक्रिया है- जैसा कि भूमिका में स्वयं लेखक ने लिखा है। इसीलिए इसमें नायक-नायिका के व्यक्तिगत जीवन का अधिक चित्रण न करके सैद्धान्तिक संघर्ष को ही प्रमुखता दी गयी है।

कथानक में संयोगाश्रित घटनाओं का बाहुल्य है। समापन भी अत्यन्त नाटकीय ढंग से किया गया है। इन दोषों के कारण ही कहीं-कहीं कथानक अविश्वसनीय-सा प्रतीत होता है। कतिपय घटनाएँ स्वानुभूत हैं।

अलका वस्तु-विन्यास की दृष्टि से प्रयोगवादी उपन्यास है। मूल कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। कथा का विकास ग्रामीण जीवन के दुःख-दर्द, यातना और अत्याचार के चित्रण से होता है। कल्पना और यथार्थ का अद्भुत समन्वय इस उपन्यास में परिलक्षित होता है। शोभा और विजय की कथा काल्पनिक है जबकि किसानों का चित्रण यथार्थपरक है। साधु वेशधारी अजय के नाटकीय आचरणों से कथानक में रोचकता का समावेश किया गया है। अजित और वीणा की कथा प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के पात्रों के मिलन में सहायक भूमिका निभाती है।

कथा नायक विजय के मित्र अजित एवं वीणा का वैवाहिक सम्बन्ध दिखाकर निराला ने तद्युगीन विधवा-विवाह की समस्या का क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत किया है। इसी तरह किसानों के नव जागरण के लिए उनकी निरक्षरता को दूर करने की आवश्यकता पर भी उन्होंने बल दिया है। अलका के आश्रयदाता स्नेहशंकर के राजनीति विषयक क्रांतिकारी विचार स्वयं निराला की ही वैचारिक क्रांति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

'अलका' में निराला नारी-जागरण का उद्घोष करते दिखाई देते हैं। गाँव की परम्परागत अशिक्षिता शोभा से आधुनिक भारत की प्रबुद्ध एवं सजग अलका का रूपान्तरण कथाकार के इसी मनोभाव को प्रकट करता है।

यह कृति निराला की औपन्यासिक संभावनाओं के नये क्षितिज का उद्घाटन करती है। मानव-संवेदना तथा क्रांति-चेतना की दृष्टि से 'अलका' उपन्यास-कला के क्षेत्र में निराला की विकास यात्रा की परिचायक है।

प्रभावती

'प्रभावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित रोमांटिक उपन्यास है। इसमें बारहवीं शताब्दी के स्वतंत्र हिन्दू-भारत का चित्रण किया गया है। कान्यकुब्जेश्वर सम्राट जयचन्द के शासन-काल के माध्यम से मध्यकालीन इतिहास, समाज, संस्कृति एवं धर्म के सम्बन्ध में कथाकार ने अपने विचार तो प्रस्तुत किए ही हैं साथ ही उस काल में कनिष्ठ सामन्तों के परस्पर द्वेष, कलह, विग्रह, षड्यंत्र आदि का सजीव चित्रण किया है। तत्कालीन सामन्ती वैभव की हासोन्मुखी प्रवृत्ति इस उपन्यास में जीवन्त हो उठी है। अपने अन्य पूर्ववर्ती उपन्यासों की ही भाँति उसका नामकरण भी उपन्यास की नायिका प्रभावती के नाम के आधार पर हुआ है।

उपन्यास के आरंभ में अवध की लवणा नदी से संबंधित दंत-कथा तथा बैसवाड़े की उत्पत्ति की कथा दी गयी है। बैसवाड़े के वन-उपवन, नदी-नाले, आचार-विचार, रीति-रिवाज का सजीव चित्रोपम वर्णन आंचलिकता का आभास कराता है। वस्तुतः यह वर्णन सम्पूर्ण कथानक में पृष्ठभूमि का कार्य करता है साथ ही कथाकार के बैसवाड़ा अंचल के रज-कणों से आत्मीय संबंध को भी उजागर करता है।

उपन्यास का कथानक कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द की अधीनस्थ रियासत दलमऊ की राजकुमारी प्रभावती और लालगढ़ के युवराज कुमार देव के प्रेम एवं विवाह को केन्द्र में रखकर रचा गया है। शिकार खेलते हुए कुमार देव के सौन्दर्य एवं पौरुष पर मुग्ध प्रभावती एवं कुमार का गन्धर्व विवाह प्रभावती की अभिन्न सखी यमुना के उद्योग से सम्पन्न होता है क्योंकि लालगढ़ और दलमऊ रियासतों में परस्पर शत्रुता होने के कारण माता-पिता की अनुमति से यह विवाह होना संभव नहीं था। यमुना का भाई मनवा का सरदार बलवन्त इस विवाह के सख्त विरुद्ध था क्योंकि वह स्वयं प्रभावती से विवाह करना चाहता था। अतः नौका-विहार कर रहे देव एवं प्रभावती पर उसने आक्रमण किया। पिता महेश्वर के भय से प्रभावती एवं यमुना ने तो नदी में कूद कर प्राण-रक्षा की किन्तु देव बलवन्त सिंह द्वारा बन्दी बना लिए गए। यमुना बलवन्त सिंह की बहन होकर भी प्रभावती की दासी के रूप में ही रहा करती थी क्योंकि बलवन्त को अपनी बहन का लालगढ़ के सेनापति वीर सिंह से विवाह करना पसन्द नहीं था। वीर सिंह एक सच्चे देशभक्त थे जो देश-रक्षा के लिए साधुवेश में रामसिंह नामक व्यक्ति के साथ जासूसी करते थे। उन्होंने कान्यकुब्ज जाते हुए एक हरकारे से महेश्वर और बलवन्त के वे पत्र छीन लिए जिसमें लालगढ़ के सरदार महेन्द्र पाल पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने दलमऊ और मनवा को नीचा दिखाने के लिए ही अपने लड़के देव को प्रभावती से बलपूर्वक विवाह रचाने का परामर्श दिया था। महेश्वर से सम्पूर्ण वृतांत ज्ञात होने पर जयचन्द ने महेन्द्र पाल को कैद करने की आज्ञा दी किन्तु उस समय महेन्द्र पाल द्वारा पालित नर्तकी सिन्धु ने अपने प्रेमी रामसिंह को रागी महेन्द्रपाल

के नाम से कैद कराकर राजा महेन्द्रपाल को मुक्त करा दिया। इस तरह महेन्द्रपाल अज्ञातवास करने लगे एवं रामसिंह को निर्दोष जानकर बाद में छोड़ दिया गया। इधर कर लेकर कान्यकुब्ज जाते हुए बलवन्त सिंह को यमुना का दल लूट लेता है। इस घटना से क्षुब्ध होकर जयचन्द महेन्द्रपाल का वध करने, देव को देश-निकाला देने तथा लालगढ़ को लूटने का आदेश देते हैं किन्तु यमुना और बलवन्त सिंह की छोटी बहन रत्नावली जो स्वयं देव से प्रेम करने लगी थी दुर्ग के समस्त सरदारों को अपने ही भाई के विरुद्ध विद्रोह के लिए उकसाती है। प्रभावती तथा राजराजेश्वरी के नाम से प्रसिद्ध सिन्धु भी दुर्ग की रक्षा के लिए लालगढ़ में एकत्र होते हैं। सारी वास्तविकता ज्ञात होने पर प्रभावती के पिता महेश्वर भी उनकी सहायता का वचन देते हैं। मनवा और दलमऊ के पक्ष में हो जाने पर रत्नावली ने राजराजेश्वरी के नाम से जयचन्द को पत्र लिखकर कुमारी प्रभावती के साथ कुमारदेव के विवाह का प्रमाण पेश किया साथ ही राजा महेन्द्रपाल और कुमारदेव को निर्दोष बताते हुए उनके साथ समुचित न्याय की प्रार्थना की तथा न्याय न होने की स्थिति में अपने विरोध की धमकी भी लिख भेजी। इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए कान्यकुब्जेश्वर ने लालगढ़ के विरुद्ध अपनी पहले की आज्ञा वापस ले ली एवं महेन्द्रपाल को क्षमादान देकर उनके समस्त अधिकार भी उन्हें वापस दे दिए। उधर प्रभावती जो नैमिषारण्य में रहने लगी थी - की मुलाकात संयोगिता से हुई। संयोगिता के अनुरोध पर प्रभावती ने स्वयंवर में उसकी सहायता का वचन दिया। वचन रक्षा करते हुए प्रभावती भीषण रूप से घायल हो गयी। इस अवसर पर पुनः देव से उसकी मुलाकात हुई। देव को रत्नावली से विवाह करने का संकेत करते हुए प्रभावती की मृत्यु हो गई।

इस तरह सम्पूर्ण कथ्य को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि प्रेम और शौर्य का कुछ कल्पित एवं कुछ यथार्थ चित्रण ही इस उपन्यास की आधार भूमि रहा है। उपन्यास के कथानक में संयोगाश्रित घटनाओं का जाल-सा बिछा हुआ है जिसके कारण उपन्यास की गतिशीलता कहीं-कहीं प्रभावित हुई है। तिलस्मी उपन्यासों के समान अतिरंजित प्रसंग और घटनाएँ भी अनुस्यूत हैं किन्तु इनसे उपन्यास में रोचकता की ही सृष्टि हुई है।

प्रभावती कथानक की केन्द्र-बिन्दु है। उसी के चारों ओर कथा घूमती है। अन्य पात्र कथा को विकसित करने में सहयोग प्रदान करते हैं। प्रभावती का देवकुमार के प्रति आकर्षण, गन्धर्व-विवाह, विछोह, मिलन और अन्त में मृत्यु के क्षणों में क्षणिक मिलन तथा रत्ना के लिए त्याग आदि घटनाओं के सम्यक् संयोजन से कथानक गढ़ा गया है।

उपन्यास को दुःखान्त बनाने के लिए ही उसके अन्त में संयोगिता एवं पृथ्वीराज की कथा की सृष्टि की गई है किन्तु वह मुख्य कथा से असम्बद्ध प्रतीत होती है।

उपन्यास में इतिहास के कलात्मक चित्रण की अपेक्षा तत्कालीन सांस्कृतिक चित्र उभारना ही लेखक का मुख्य उद्देश्य रहा है अतः इतिहास का स्वर वहाँ कुंठित एवं प्रेम का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। जनपदीय चित्रण में लेखक को महारत हासिल है।

यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों में एक नयी दिशा की ओर संकेत करता है।

निरुपमा

'निरुपमा' निराला का चतुर्थ उपन्यास है। इसमें उन्होंने बंगला भाषी एवं हिन्दी भाषी समाजों को एक सूत्र में बाँधने का साहसिक एवं सराहनीय प्रयास किया है। इस उपन्यास का नामकरण उपन्यास की नायिका निरुपमा के नाम के आधार पर हुआ है जो कथाकार की कलात्मकता एवं छायावादी सौन्दर्य-प्रियता की ओर संकेत करता है। किन्तु इस उपन्यास में गम्भीर मुक्त प्रेम का समर्थन करते हुए भी कथाकार की दृष्टि यथार्थ की ओर रही है अतः समाज एवं जीवन की समस्याओं का जीवन्त चित्रण भी उपन्यास में किया गया है।

उपन्यास के आरम्भ में ही लेखक ने शिक्षा-जगत में व्याप्त प्रान्तवाद, जातिवाद तथा भाई-भतीजावाद के आधार पर चरित्र-हीन तथा अयोग्य व्यक्तियों की विश्व-विद्यालय में नियुक्ति दिखाकर राष्ट्र के शैक्षणिक स्तर की दुर्बलता का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है। इसी धाँधली के कारण लन्दन के डी. लिट् कृष्णकुमार की विश्वविद्यालय में नियुक्ति नहीं होती जबकि प्रान्तीयता के प्रभाव के कारण कलकत्ता के डी. फिल यामिनीहरण मुखर्जी जैसे अयोग्य व्यक्ति ऐसा सम्मानित पद प्राप्त कर लेते हैं। स्वाभिमानी कुमार जूतों पर पालिश करके अपने पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करता है। पुत्र की शिक्षा-दीक्षा का व्यय-भार उठाने में कुमार की माँ सावित्री को अपने मकान गिरवी रखने पड़े थे यही नहीं बल्कि कुमार के विलायत जाने के कारण उन्हें जाति से बहिष्कृत भी कर दिया गया था। इस सम्पूर्ण प्रसंग में एक ओर हिन्दू-जाति की संकीर्ण मानसिकता तथा दूसरी ओर शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार का निराला ने यथार्थ चित्रण किया है।

उपन्यास की नायिका निरुपमा जो पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी विशाल जमींदारी की अकेली स्वामिनी है अपने मामा योगेश एवं उसके पुत्र सुरेश द्वारा छली जा रही है क्योंकि उनकी कुदृष्टि उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पर थी एवं वे किसी-न-किसी बहाने उसे हड़पना चाहते थे। मामा की इच्छानुसार निरुपमा का विवाह उन्हीं के सम्बन्धी यामिनी बाबू से तय कर दिया जाता है जबकि निरुपमा कुमार की ओर आकृष्ट है। उनके परिचय को प्रगाढ़ता में बदलने में निरुपमा की बहन नीलिमा सहायक होती है। इसी समय निरुपमा को यह भी ज्ञात होता है कि कुमार के दोनों घर उसकी जमींदारी में थे एवं उन्हें यामिनी बाबू ने गिरवी रखा है। अपनी जमींदारी में जाने पर कुमार की माँ सावित्री देवी से निरुपमा की मुलाकात होती है। उनकी दृढ़ता से प्रभावित निरुपमा उनके प्रति गाँव वालों के निकृष्ट व्यवहार से अत्यन्त खिन्न है। अपनी अभिन्न सखी कमल द्वारा निरुपमा को जमींदारी के संबंध में मामा की नीयत का भी पता चला। शिक्षित होने पर भी हिन्दू संस्कारों में पली-बढ़ी निरुपमा विवाह के विषय में मामा के निश्चय को ही वरीयता देती है।

इधर गाँव से बहिष्कृत कुमार सपरिवार लखनऊ चला आया जहाँ उसका परिचय निरुपमा की सखी कमल से हुआ। कमल के आग्रह पर कुमार ने उसे दो सौ रुपये मासिक पर प्रति दिन दो घंटे अंग्रेजी पढ़ाना स्वीकार कर लिया। उधर लखनऊ में कुमार की माँ से मिलकर निरुपमा ने उनके दोनों मकान और बाग न केवल उन्हें लौटा दिए बल्कि कुमार के छोटे भाई रामचन्द्र की

शिक्षा-दीक्षा का भी उचित प्रबन्ध कर दिया। कमल एवं कुमार की घनिष्ठता का गलत अर्थ लगाकर खिन्न मन से निरुपमा ने यामिनी के साथ अपने विवाह की स्वीकृति दे दी। किन्तु इसी बीच कमल एवं कुमार की माता साबित्री देवी की सूझ-बूझ एवं समझदारी से अत्यन्त नाटकीय ढंग से यामिनी बाबू का विवाह कमल की ही सखी सुशीला दुबे जो उनके चारित्रिक पतन के कारण गर्भवती थी, से करा दिया गया एवं निरुपमा का विवाह कुमार के साथ सम्पन्न हुआ।

'निरुपमा' के इस छोटे से कथानक में मुख्य कथा निरुपमा एवं कुमार की है। गौण कथा के रूप में कमल, यामिनी तथा योगेश बाबू की कथाएँ अवश्य आई हैं किन्तु वे मुख्य कथा के विकास में सहायक ही सिद्ध हुई हैं। कथा का प्रत्येक सूत्र अपने आप में सुलझा हुआ है जो कथाकार के अनुभव की परिपक्वता का दिग्दर्शन कराता है। यह अवश्य है कि अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की ही भाँति इसमें भी निराला ने संयोगों एवं आकस्मिकता का आश्रय ग्रहण किया है किन्तु इनसे कहीं भी रसाभास नहीं होता। वस्तुतः इसे तत्कालीन उपन्यासों की शिल्प-प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

कुमार और नीरू का प्रेम कथानक का आधार है। उनके प्रेम-निरूपण में काल्पनिक घटनाओं का सहारा लिया गया है। घटना वैचित्र्य के कारण उनसे औत्सुक्य एवं रोचकता की सृष्टि होती है। घटनाएँ परस्पर संबद्ध हैं। इसीलिए कथानक में घनत्व और सुनियोजन है।

तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर यहाँ भी मुखरित हुआ है जो निराला के क्रांतिकारी एवं निराले तेवर के अनुकूल ही है।

ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण एवं सामन्त-वर्ग की निर्दयता का वर्णन लेखक ने किया अवश्य है किन्तु वह इतना मर्मस्पर्शी नहीं हो पाया है। ग्रामीण जीवन की अपेक्षा शहरी जीवन का चित्रण अधिक व्यापक रूप में किया गया है एवं नगर में रूढ़िवादी तथा प्रगतिशील दोनों प्रकार के वर्गों की मानसिकता का अंकन किया गया है।

डा० शिवनारायण श्रीवास्तव के मतानुसार – "कथा-सौष्ठव, भावानुभूति, सामाजिक यथार्थ तथा रमणीयता की दृष्टि से निराला जी का 'निरुपमा' नामक उपन्यास श्रेष्ठ है। इसे पढ़कर बंगला के श्रेष्ठ उपन्यासों का सा रस मिलता है। वही प्रेम की गम्भीरता, भावप्रवणता एवं नाटकीय स्थितियाँ इस उपन्यास में भी परिलक्षित होती हैं।"[५]

डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित का विचार है – "निरुपमा में लेखक की तन्मयकारिणी वृत्ति प्रकट हुई है। यहाँ लेखक बंगाली आचार-विचार और वातावरण से विशेष प्रभावित ज्ञात होता है। इस उपन्यास की मूलभूत घटना में वास्तविक यथार्थ भी है और चामत्कारिक कल्पना भी। प्रणय-परिणय की यह लीला बड़ी विनोदपूर्ण और कुतूहलपूर्ण है। कुतूहल की वृद्धि निरन्तर कथा-विकास के साथ-साथ होती रहती है। आलोच्य कृति की कला का यह सौष्ठव, उसकी घटनाओं का सुविन्यास और पात्रों का चारित्रिक निखार लेखक के प्रौढ़ कर्तृत्व का प्रमाण उपस्थित करता है।"[६]

चमेली

'चमेली' निराला का अधूरा उपन्यास है। इसमें ग्रामीण जीवन अपने यथार्थ एवं नग्न रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस उपन्यास में ग्रामीण नारी के विद्रोह एवं प्रतिशोध का स्वर मुखरित हुआ है।

उपन्यास के आरम्भिक अंश में गाँव का वातावरण जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। गाँव का पटवारी आर्थिक लोभ में घर बैठे लोगों के जीवनाधिकार के चित्र बनाता है। निराला ने इस तथ्य का उद्घाटन इस पंक्ति में किया है – "पलंग पर पटवारी लाला शहनाईलाल श्रीवास्तव, खेतों की पैदावार लिख रहे हैं, बहुत कुछ अन्दाजन।"[६] लेखक ने अपनी यथार्थ दृष्टि से सामाजिक छल में लिप्त इन दलालों पर व्यंग्य किया है। ठाकुर बख्तावरसिंह द्वारा चमेली के सामने लालच के पासे फेंकना समाज के उस वर्ग के चरित्र का पर्दाफाश करता है जो धन के मद में इन निरीह अबलाओं के सतीत्व पर घात लगाए बैठे रहते हैं। किन्तु चमेली एवं उसकी माँ में आत्म-सम्मान की पूर्ण प्रबुद्धता दिखाई गई है जो झूठे दोषारोपण को मौन भाव से सहना नहीं जानतीं बल्कि खुलकर इस अन्याय और शोषण का विरोध करती हैं। चमेली का पिता ग्रामीण जीवन के छल-कपट, जमींदार की बेईमानी एवं उसके हथकण्डों से त्रस्त होकर अन्याय के समक्ष माथा टेक देता है और अपनी 'जुबंटा' बिटिया को ही जो 'ब्याह होते ही भतार को चबा गई' – दोषी समझता है। इसी अवसर पर गाँव वालों की नपुंसकता पर भी निराला ने तीव्र प्रहार किया है जो जमींदार की तरफदारी करते हैं और ठाकुर की ठकुरसुहाती करते हैं तथा उत्साह में कसमें खाकर "जैसा देखा है वैसा न कहें तो अपने बाप के नहीं"[७] घोषित करते हैं।

'चमेली' में निराला ने ग्रामीण जीवन की कुत्साओं का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास के दूसरे परिच्छेद में पंडित शिवदत्तराम त्रिपाठी के चरित्र के माध्यम से स्वार्थी, ढोंगी, बगुला भक्त एवं समाज के कोढ़ उस वर्ग का चित्रण है जो मस्तक पर चन्दन पर मन में न जाने कितने पाप छिपाए है। वह अपनी भैहू और अपनी बहन को हमल गिराने की दवा देता है जिससे कि 'घर की बात घर में ही रहे, कोई कुछ करे, दोष नहीं, धर्म न छोड़े।' ऐसे व्यभिचारी और चरित्र भ्रष्ट पं० शिवदत्तराम त्रिपाठी की बेवा भैहू को दोबारा ब्याह करने की जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि विधुर शिवदत्तराम जो हैं।

'चमेली' निराला का घोर यथार्थवादी प्रयोग कहा जा सकता है। यदि यह उपन्यास पूर्ण हो गया होता तो निश्चय ही यह निराला के कथा साहित्य की एक विशिष्ट कृति होती। जमींदारी अत्याचार और व्यभिचार से सिक्त कुत्सा, बेशर्मी और निन्दा-द्वेष के वातावरण में संभवतः निराला का मन डूबा नहीं। डा० रामरतन भटनागर के अनुसार "केवल चित्रण के लिए मनुष्य की गिरावट में रस लेना निराला ने कला-धर्म नहीं माना।"[८] संभवतः इस उपन्यास के अधूरे रह जाने का एक कारण यह भी रहा हो।

जो हो, 'चमेली' अपूर्ण होने के बावजूद नई संभावनाओं के द्वार खोलती है और कथा-साहित्य को नया मार्ग दिखलाती है।

चोटी की पकड़

'चोटी की पकड़' १९४६ में प्रकाशित दूसरा यथार्थवादी उपन्यास है। बंग-भंग एवं स्वदेशी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर रचित इस उपन्यास में देश की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का सजीव चित्रण किया गया है। ह्रासोन्मुखी सामन्ती समाज की तड़क-भड़क, राजा-रजवाड़ों में चलने वाले षड्यन्त्र एवं कुचक्र तथा दैशिक राजनीति में बढ़ती हुई साम्प्रदायिक स्वार्थ-लोलुपता के यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर लेखक ने उन कारणों पर प्रकाश डाला है जिनके कारण सामन्ती सभ्यता का विघटन हो रहा था। उपन्यास का कथानक बंगाल से सम्बन्धित है।

कथानक का आरम्भ लार्ड कर्जन की बंग-भंग की घटना से हुआ है। बंगाल के विभाजन की आग छोटे-बड़े सभी के दिलों में जल चुकी थी। अतः अंग्रेजों को अपमानित करने के लिए विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं स्वदेशी आन्दोलन सक्रिय हुआ। प्रत्येक गाँव एवं नगरों में स्वदेशी के केन्द्र खुले। इस उपन्यास का एक प्रमुख चरित्र प्रभाकर भी स्वदेशी आन्दोलन का प्रबल समर्थक एवं प्रचारक है।

उपन्यास की मुख्य कथा राजा राजेन्द्र प्रताप की है जो सामन्ती विलासिता में पूर्णतः डूबे हुए हैं एवं एजाज नामक एक वेश्या से उनका स्वच्छन्द प्रेम व्यापार चलता है। उन्होंने एक निर्धन किशोर को अपने व्यय से शिक्षा दिलायी एवं बाद में उसका विवाह अपनी पुत्री से कर उसे अपने यहाँ ही रख लिया। उसकी बुआ एवं मौसी भी उनके साथ आकर रहने लगी। अपनी प्रमुख दासी मुन्ना बाँदी के द्वारा यह ज्ञात होने पर कि बिरवा बुआ बलात्कार का शिकार हो चुकी हैं - रानी साहिबा उन्हें अपमानित करती हैं। यही नहीं बल्कि राजा साहब के वेश्या प्रेम से क्रुद्ध होकर बदला चुकाने के लिए वे भी नित-नये प्रेमी बनाने लगती हैं। उनके इस कार्य में मुन्ना दासी उनकी सहायिका है जो समस्त राजकर्मचारियों पर अपना प्रभुत्व जमाये हुए है। रानी साहिबा की शह पर मुन्ना बाँदी बुआ का सतीत्व भंग करने के लिए कुचक्र रचकर मुस्लिम सिपाही रुस्तम को तैयार करती है किन्तु प्रभाकर के सहयोग से बुआ बच जाती है एवं बेलपुर पहुँचा दी जाती है। बुआ प्रभाकर के विचारों एवं उसके कार्यों से प्रभावित हो स्वयं भी स्वदेशी आन्दोलन से जुड़ जाती हैं। इधर रानी साहिबा एवं मुन्ना दोनों ही प्रभाकर के सम्पर्क में आती हैं। रानी साहिबा प्रभाकर से अत्यन्त प्रभावित हो उसकी मदद करने का वचन देती हैं। मुन्ना के द्वारा सारा रहस्य ज्ञात होने पर प्रभाकर राजा साहब एवं रानी साहिबा के मध्य समझौता कराने का वचन देकर रानी साहिबा को भी स्वदेशी आन्दोलन के प्रचार के लिए राजी कर लेता है।

'चोटी की पकड़' का कथानक वातावरण प्रधान है। "अति संक्षिप्त कथानक के निर्माण में जिन घटनाओं ने योगदान किया है, वे भी परस्पर असंबद्ध और अपूर्ण हैं। कथानक की अपूर्णता अभीप्सित प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम है। कथा में कौतूहलता तो विद्यमान है, किन्तु कभी-कभी निरर्थक घटनाओं की दृष्टि से उपन्यास की कलेवर-वृद्धि अखरने लगती है। कथा-सूत्रों का

बिखराव घटना नियोजन के औचित्य को प्रमाणित नहीं कर पाता है। ....वस्तु-विन्यास की दृष्टि से 'चोटी की पकड़' अत्यन्त शिथिल कृति है।"[५]

इस उपन्यास का कुल कथानक इतना ही है जो अपने आप में अपूर्ण है। वस्तुतः निराला इसे चार खण्डों में निकालना चाहते थे एवं उपन्यास के अगले खण्डों में कथा को पूर्ण करने का उनका विचार था। इस उपन्यास में मुन्ना बाँदी का चरित्र उभारना ही उनका प्रमुख उद्देश्य था जैसा कि 'निवेदन' में उन्होंने लिखा है। अतः यह किस रूप में 'चोटी की पकड़' है – यह कहना मुश्किल है।

कथानक में राजप्रासादों में होने वाले षड्यन्त्रों का जैसा सूक्ष्म वर्णन किया गया है यह स्वयं लेखक के अपने अनुभवों का निचोड़ है क्योंकि निराला का आरम्भिक जीवन महिषादल में बीता था एवं यहाँ के राजसी वैभव का उन्हें कटु अनुभव था। अतः ये वर्णन स्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

तत्कालीन राजनीति में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का जो विष घुला हुआ था उसके लिए ये सामन्त, जागीरदार ही जिम्मेदार थे इसका संकेत इस उपन्यास में दिया गया है। इन दोनों सम्प्रदायों के बीच मनोमालिन्य का कारण धार्मिक न होकर राजनीतिक था। इस प्रकार की निर्भ्रान्त धारणा का प्रतिपादन निराला जैसे सजग विचारक ही कर सकते थे।

समग्रतः कहा जा सकता है कि आजादी पूर्व सन् १९४० के आस-पास के भारत की प्रामाणिक तस्वीर पेश करने में लेखक को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। यह उपन्यास लेखक की प्रखर सामाजिक चेतना का भी परिचायक है।

काले कारनामे

'काले कारनामे' १९५० में प्रकाशित अन्तिम अधूरा उपन्यास है। संभवतः निराला के दीर्घकालीन मानसिक असंतुलन एवं शारीरिक अस्वस्थता के कारण यह कृति पूर्ण नहीं हो सकी। किन्तु इस अपूर्ण उपन्यास में भी उन्होंने ग्रामीण जीवन का यथार्थ अंकन किया है। ग्राम्य जीवन एवं जमींदारों में व्याप्त अनीति, व्यभिचार, आतंक तथा अवैध शोषण जैसी काली करतूतों का पर्दाफाश होने के साथ-साथ पुलिस विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार, घूसखोरी, शोषण एवं अधिकारी वर्ग की स्वार्थ-लिप्सा का भी अत्यन्त सजीव चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

राजपुर गाँव का निवासी मनोहर प्रतिदिन रामसिंह के अखाड़े में कुश्ती लड़ने के लिए पास ही के गाँव सरायन जाता है एवं रात्रि समय उसी गाँव के जमींदार रामरखन जो रिश्ते में उसके फूफा लगते थे - के यहाँ ठहर जाता है। गाँव के अन्य जमींदारों को मनोहर का आना पसन्द नहीं कारण अन्य गाँव का होने के कारण वे किसी भी रूप में उसे दण्डित नहीं कर सकते थे। इधर जमींदार रामरखन को भी रामसिंह द्वारा मनोहर को नीची दृष्टि से देखा जाना पसन्द नहीं। अतः वे मनोहर को उसके पिता के पास बम्बई भेज देते हैं। रामसिंह को किसी मामले में फँसाकर नीचा दिखाने का षड्यन्त्र रामरखन एवं एक अन्य जमींदार यमुनाप्रसाद रचते हैं एवं गाँव के ही एक

पंडित माधव मिश्र के यहाँ चोरी करने का झूठा आरोप रामसिंह पर लगाते हैं। किन्तु थानेदार के सम्मुख मिश्र जी के रामसिंह के विरुद्ध आरोप स्वीकार न किए जाने की स्थिति में रामसिंह छूट जाता है। थानेदार एवं जमींदार अब रामसिंह एवं मिश्र जी दोनों को ही फँसाने की फिराक में रहते हैं। रामसिंह को विद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर पुनः दो सौ रुपये के मुचलके पर छोड़कर जहाँ एक ओर उसे अपने अधीन बना लिया जाता है वहीं दूसरी ओर मिश्र जी को चोरी की झूठी रिपोर्ट लिखवाने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाता है। उधर मनोहर काशी जाकर समाज के निम्न वर्ग शूद्रों में जागृति लाने के लिए उन्हें शिक्षित करने का कार्य करने लगा। गाँव लौटने पर किसानों के मुख से मनोहर की तारीफ सुनकर उसके पिता गर्व से भर जाते हैं।

इस अपूर्ण कथानक में मनोहर की कथा ही आधिकारिक कथा मानी जा सकती है। इसीलिए उपन्यास का आरम्भ एवं अन्त उसी की कथा से हुआ है। किन्तु इस कथा के माध्यम से भी निर्दोष ग्रामीण जनता पर जमींदारों एवं पुलिस के अत्याचार की घटनाओं को प्रस्तुत करना ही उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है। गाँव के साथ-साथ शहरी जीवन की विसंगतियों को भी उपन्यास में उभारा गया है एवं इसके माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति-पाँति का भेद-भाव तथा प्रान्तीयता की भावना का भी प्रत्यक्षीकरण उपन्यास में कराया गया है। कथानायक मनोहर निराला के विद्रोही व्यक्तित्व का मुखर रूप है।

उपन्यास का प्रतिपाद्य विषय अपूर्ण होते हुए भी लेखक की प्रौढ़ व्यंजना के कारण कृति प्रभावकारी है एवं जमींदारों तथा उनके कारिन्दों के काले कारनामे का दिग्दर्शन कराने में पूर्ण सक्षम है।

प्रस्तुत उपन्यास के वस्तु-विन्यास के सम्बन्ध में डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित के विचार द्रष्टव्य हैं – "कथानक अपने अन्तर्संगठन के कारण अधिक उलझा हुआ एवं विषम है। अपूर्णता के कारण उसका रहस्य अनुद्घाटित है। घटनाओं में चामत्कारिकता का प्रभाव स्पष्ट है। ....वस्तु-विन्यास रुचिकर न होते हुए भी एक विशिष्ट उद्देश्य से प्रतिबद्ध प्रतीत होता है। ....कृति बहुत उत्कृष्ट कोटि की न होकर भी लेखक की क्रान्तिकारी धारणा एवं उसके सामाजिक दृष्टिकोण के एक रोचक पक्ष की विधायिका होने के कारण पठनीय है।"[५]

इन्दुलेखा

निराला का दूसरा अधूरा उपन्यास 'इन्दुलेखा' है। इसका प्रारम्भिक अंश पटना से प्रकाशित 'ज्योत्स्ना' मासिक के दीपावली अंक में सन् १९६० में छपा। कुल चार पृष्ठों में सीमित इस अधूरे उपन्यास की कथा-वस्तु अपने-आप में अस्पष्ट है। उपन्यास का नामकरण कृति की नायिका इन्दुलेखा के नाम पर किया गया है। इन्दु और समर इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं और अपने प्रारम्भिक पृष्ठों से उपन्यास यह आभास कराता है कि इन दोनों पात्रों के प्रेम-प्रसंग को केन्द्र में रखकर ही उपन्यासकार ने कथा-कलेवर को निर्मित करने का प्रयास किया होगा।

अपनी अन्य कहानियों या उपन्यासों की भाँति ही उपन्यास का आरंभ काव्यात्मक शैली

में छायावादी पद्धति पर प्रकृति के माध्यम से किया गया है। उपलब्ध चार पृष्ठों में सूर्योदय की छटा है, धान के खेत का वैभव है, ग्रामीण परिवेश में तालाब पर नहाते युवकों की भीड़ है, किशोर एवं बच्चों के चुहल भरे वार्तालाप हैं और कॉलेज के परिवेश में युवक-युवती का प्रेमालाप है।

उपन्यास चूँकि अधूरा है और उसका आरम्भिक अंश भी इस कदर अस्पष्ट है कि उपन्यासकार की सम्पूर्ण योजना का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। उपन्यास का पाठक या निराला के अन्य उपन्यासों और कहानियों का परिचित पाठक भी इस उपन्यास की कथावस्तु से बहुत प्रभावित नहीं होगा।

निराला के रेखाचित्रों का वस्तु-विन्यास

कुल्लीभाट

'कुल्लीभाट' १९३९ ई० में प्रकाशित निराला का प्रथम रेखाचित्र है जो एक साथ ही जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण एवं कहानी जैसी विधाओं के तत्वों से समाविष्ट है। इसमें लेखक ने अपने मित्र पं० पथवारी दीन भट्ट कुल्लीभाट के सम्पूर्ण जीवन वृत्त को प्रस्तुत किया है। उनके परिचय के साथ ही निराला का अपना चरित्र भी आया है और कदाचित अधिक विस्तार पा गया है। लेखक ने स्वीकार किया है कि – "रूढ़िवादियों के लिए यह दोष है, पर साहित्यिकों के लिए, विशेषता मिलने पर, गुण होगा। मैं केवल गुण-ग्राहकों का भक्त हूँ।"[६६]

कुल्ली से निराला का प्रथम परिचय तब हुआ जब अपना सोलहवाँ साल पार होने पर पिता के आदेश से गौना लेने वे अपनी ससुराल पहुँचे। वहीं डलमऊ स्टेशन के बाहर इक्के के मालिक के रूप में कुल्ली से उनकी मुलाकात हुई। कुल्ली के इक्के पर आने के कारण जिस तरह से ससुराल में सबने उन्हें सशंक दृष्टि से देखा उससे कुल्ली के सम्पर्क में आने, उनके बारे में अधिक जानने के लिए निराला लालायित हो उठे। अगले ही दिन उन्होंने कुल्ली के साथ अनेक ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण किया। व्यभिचारी होने के कारण कुल्ली के सम्बन्ध में लोगों की धारणा अच्छी नहीं थी किन्तु बचपन से ही आजादी पसंद निराला मित्र के रूप में निस्संकोच भाव से उनसे मिले। निराला के सम्पर्क में आने के पश्चात् कुल्ली के चरित्र में आकस्मिक परिवर्तन होता है एवं वे जीवन की दूषित वृत्तियों से अपना उन्नयन करते हुए मानवता के शिखर पर प्रतिष्ठित होते हैं। अछूतों के लिए पाठशाला खोलकर, मरणासन्न बिन्दा खटिक की पत्नी की सेवा कर, अछूतोद्धार आन्दोलन का नेतृत्व कर, कांग्रेस के स्वयं सेवक बनकर एवं स्वदेशी आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेकर कुल्ली अपनी मानवता और जागरूकता का परिचय देते हैं। यही नहीं बल्कि निराला की अनुमति से एक मुसलमानिन से प्रेम-विवाह रचाकर वे समाज के सम्मुख एक उच्च आदर्श रखते हैं। जीवन के अन्तिम दिनों में कुल्ली की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। शरीर का अधोभाग सड़ जाने एवं चिकित्सकीय सहायता न मिलने के कारण कुल्ली का देहावसान हो जाता है। जिस कुल्ली की छाया-मात्र से गाँव के लोग अपने बच्चों को बचाकर

रखते थे, वही कुल्ली मरणोपरान्त लोगों की श्रद्धा का पात्र बन जाता है। उसकी शवयात्रा में उमड़ी जनता एवं लोगों की श्रद्धा कुल्ली के सुधारक एवं जननायक रूप को स्पष्ट करती है। निराला स्वयं कुल्ली का एकादशाह कराते हैं।

प्रस्तुत रेखाचित्र का वस्तु-विन्यास अत्यन्त नवीन पद्धति पर हुआ है। लेखक स्मृति-संचारी द्वारा समस्त घटनाओं का वृत्तान्त प्रस्तुत करते हैं। अतः घटना-क्रम में असंबद्धता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। किन्तु घटनाओं में रोचकता एवं कौतूहल विद्यमान है। रेखाचित्र की दृष्टि से कुछ घटनाएँ अप्रासंगिक भी हैं। घटनाओं के बीच के अन्तराल बड़े दीर्घ एवं अनावश्यक रूप से व्यापक बन गए हैं।

'कुल्लीभाट' में कुल्ली के अतिरिक्त निराला के जीवन की भी अनेक घटनाओं के सूत्र यत्र-तत्र मिलते हैं। निराला के गौने की घटना, उनकी ससुराल का वर्णन, पत्नी मनोहरा देवी के सौन्दर्य और गुणों का बखान, उनके परिवार के व्यक्तियों की मृत्यु, पत्नी की मृत्यु, उनका जीवन-संघर्ष, उनके साहित्यिक जीवन का उल्लेख आदि महत्वपूर्ण प्रसंग सम्पूर्ण कृति के साथ इस प्रकार संग्रंथित हैं कि उन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। वस्तुतः कृति में विषय वस्तु को लेखक ने अपनी अनुभूति में रंगकर प्रस्तुत किया है। कुल्ली की जीवन-कथा के स्पष्टीकरण में निराला के जीवन की घटनाएँ पृष्ठभूमि के रूप में महत्वपूर्ण कार्य करती रही हैं। अतः उनका औचित्य स्वयं सिद्ध है।

'कुल्लीभाट' में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक चित्र मूर्त हो उठा है। अछूत पाठशाला में जाने पर एवं वहाँ चमार, पासी, धोबी, कोरी आदि समाज के अंत्यज वर्ग की दीनता को देखकर निराला की आत्मग्लानि, सहृदयता एवं आक्रोश इन शब्दों में उमड़ पड़ता है– "मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है, व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है, इतने जन्तुओं में वह सिंह है। वह अधिक पढ़ा लिखा नहीं, लेकिन अधिक पढ़ा-लिखा कोई उससे बड़ा नहीं।"[७]

'कुल्लीभाट' में प्रसंगवश हिन्दू-धर्म एवं उसकी रूढ़ियों पर कुठाराघात किया गया है। साथ ही राजनीतिक नेताओं के सेवा-भाव एवं अछूतोद्धार के सम्बन्ध में उनके वादों के खोखलेपन पर तीखा व्यंग्य किया है। निराला के व्यंग्य की तलवार गाँधी एवं नेहरू जैसे बड़े नेताओं को भी नहीं बख्शती। बीमार कुल्ली की सहायता के लिए निराला कुछ धन-राशि एकत्र करने का दायित्व लेते हैं पर उसमें पूर्णतः असफल होते हैं। उस समय कांग्रेस के सिद्धान्तों पर करारी चोट निराला इस पंक्ति में करते हैं – "कांग्रेस का यह नियम नहीं, वह आपसे रुपए ले तो सकती है, पर दे नहीं सकती।"[८]

कुल्ली के एक मुसलमानिन से विवाह कर लेने पर जिस तरह हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके विरोधी हो जाते हैं उससे हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है।

रेखाचित्र में जिन स्थलों पर निराला ने अपने-जीवन-प्रसंग का उल्लेख किया है वहाँ उनकी हठधर्मिता, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना, जाति भेद के प्रति विरक्ति, सहनशीलता,

दृढ़ता एवं स्वाभिमान मुखर हो उठे हैं। ससुराल के लिए प्रस्थान करते हुए निराला को जिस तरह उनके पिता वहाँ रोज रूह की मालिश कराने की हिदायतें देते हैं उससे उनके सामन्ती स्वभाव का पता चलता है। इसी तरह गाँव में निराला के आदर्श पं० भगवान दीन द्वारा पतुरिया को घर में बैठा लेना, पिता के मना करने के बावजूद निराला का वहाँ आना जाना तथा खाना-पीना तथा गाँव में घटने वाली हर छोटी-बड़ी घटना के प्रसंग तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में फैले भ्रष्टाचार की ओर संकेत करते हैं।

सम्पूर्णतः कहा जा सकता है कि इस रेखाचित्र में निराला ने मानव-हृदय की विकसनशील सनातन-वृत्ति का दिग्दर्शन कराया है। एक साधारण से व्यक्ति को असाधारण बनाकर, उसके चरित्र के श्याम-श्वेत पक्ष को दिखाकर निराला ने मानव में देवत्व की प्रतिष्ठा करने का सफल प्रयास किया है।

बिल्लेसुर बकरिहा

'बिल्लेसुर बकरिहा' जीवन के कटु अनुभवों एवं विरोधों को अपने में समेटे हुए हास्य, विनोद एवं व्यंग्य से परिपूर्ण रेखाचित्र है। इसमें बिल्लेसुर के चरित्र के माध्यम से एक ऐसे ग्रामीण पात्र का चित्रण किया गया है जो जीवन में पग-पग पर ठोकर खाकर भी तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों का डटकर मुकाबला करता है एवं "कनौजिया ब्राह्मणत्व" के झूठे आभिजात्य को तिलांजलि देकर अत्यन्त जीवट के साथ जीविका उपार्जन हेतु आजीवन अनवरत संघर्ष करता है। इस संघर्ष में वह उस भारतीय कृषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसका अपराजेय व्यक्तित्व सामान्य व्यक्ति में भी अद्वितीयता के दर्शन करा देता है। जीवन संग्राम में एक जुझारू योद्धा के समान धैर्यपूर्वक डटे रहने वाले बिल्लेसुर का संघर्ष भारतीय ग्रामीण का जीवन संघर्ष है।

रेखाचित्र के आरम्भ में निराला ने कथानायक बिल्लेसुर के पारिवारिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। "बिल्लेसुर जाति के ब्राह्मण, तरी के सुकुल हैं। लेकिन तरी के सुकुल को संसार पार करने की तरी नहीं मिली तब बकरी पालने का कारोबार किया।"[५८] बाल्यावस्था में ही पिता की मृत्यु हो जाने पर आधुनिक साहित्य के चार चरण पूरे करने वाले बिल्लेसुर के चार भाई अपनी-अपनी तरह से अपनी जीवन-नौका खेते हैं। कट्टर सनातन धर्मी मन्त्री उर्फ गप्पू एक विधवा की दूध छोड़ी बालिका से छल-छद्मपूर्वक विवाह कर एवं दस-बारह वर्षों के पालन-पोषण के पश्चात् बीस साल की अकेली पत्नी को छोड़कर स्वर्ग सिधारते हैं।

ललई अपने स्वर्गवासी गुजराती ब्राह्मण मित्र की स्त्री, बच्चों और सम्पत्ति पर अधिकार कर अपने भौतिक विकास से असहयोग पर उतारू गाँव वालों को अपने सामने झुकने पर विवश कर देते हैं।

तीसरे भाई दुलारे जो पक्के आर्य समाजी थे गाँव के ही बस्तीदीन सुकुल की मृत्यु हो जाने पर उनकी बेवा को अपनी पत्नी बनाकर साल भर के अंदर स्वयं परलोक सिधार गए।

अपनी आर्थिक विपन्नता को दूर करने के लिए बिल्लेसुर ने परदेश में जाकर धन कमाने

का निश्चय किया। लोगों से यह जानकर कि बंगाल का पैसा टिकता है, बम्बई का नहीं – वे बर्दमान के महाराज के जमादार पं० सतीदीन के यहाँ चले आए। अपने आश्रयदाता सतीदीन के यहाँ गायों की सेवा-सुश्रुषा करने के साथ-साथ उन्होंने चिट्ठियाँ लगाने का काम भी किया। सतीदीन के साथ जगन्नाथ जी जाने पर उनकी कृपा पाने के लिए उन्होंने कंठी-माला लेकर उनसे गुरु-मंत्र भी लिया, किन्तु साल भर तक स्थिति में कोई सुधार न होने पर पुनः अपने गाँव लौट आए। वहाँ आकर गाँव-वालों की ईर्ष्या के समस्त जालों को काटते हुए बिल्लेसुर बकरी-पालन का व्यवसाय करने लगे। गाँव वालों ने जब उन्हें 'बकरिहा' कहकर अपने दिल का गुबार निकालना शुरू किया तो बिल्लेसुर ने प्रतिशोध का एक नया ढंग अपनाया और बदले में वे बकरियों के वही नाम रखने लगे जो गाँव वालों के थे। इसी बीच उन्होंने कुछ किसानी का काम भी किया। इस तरह गाँव के व्यवसाय में कई तरह के प्रयोग करते रहने वाले बिल्लेसुर के मन में विवाहेच्छा जागृत हुई। अपने आतिथ्य-सत्कार से अपने भाई मन्नी की सास को प्रभावित कर अन्ततः उनके द्वारा तय की गई लड़की से धूमधाम से विवाह किया लेकिन अन्त तक गाँववालों पर अपने अदृश्य वैभव का राज न खुलने दिया।

बिल्लेसुर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपनी सहानुभूति के रंग से रँगकर निराला ने प्रस्तुत किया है। अतः उनके व्यक्तित्व की अदृश्य छाप कृति में देखी जा सकती है।

धर्मभीरु बिल्लेसुर जो अपनी बकरियों की रक्षा का भार मंदिर के महादेव जी पर डालकर निश्चिन्त रहा करते थे, एक दिन अपनी बकरी चुरा लिए जाने पर जिस तरह कुपित होकर महादेव की मूर्ति पर प्रहार करते हैं - यह सम्पूर्ण प्रसंग धार्मिक अंधविश्वासों पर निराला द्वारा किया गया प्रहार है जो दिव्य शक्ति पर मानव शक्ति की महत्ता को प्रतिस्थापित करता है।

यह रेखाचित्र विशुद्ध यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित है। बैसवाड़ा अंचल का सम्पूर्ण परिवेश, उसकी सामाजिक रूढ़ियाँ, धार्मिक ढोंग एवं अंध-विश्वास, आर्थिक विपन्नता, संकीर्ण वैचारिकता आदि मूर्त रूप में यहाँ चित्रित किए गए हैं। 'कुल्ली भाट' की भाँति बिल्लेसुर के चरित्र में कोई उदात्त परिवर्तन निराला ने नहीं दिखाया है बल्कि एक निर्धन व्यक्ति के संस्कारों, विश्वासों, चेष्टाओं और जीवन-संघर्ष-विधि का यथातथ्य चित्रण किया है। इस दृष्टि से यह रेखाचित्र एक प्रौढ़ प्रगतिशील रचना है।

सम्पूर्ण कथा का केन्द्रबिन्दु बिल्लेसुर एवं उसकी विविध गतिविधियाँ हैं। निराला ने कृति के 'निवेदन' में स्वयं ही स्वीकार किया है – "कला ऐसी है जैसे तीन छोटी-बड़ी कहानियाँ एक जोड़ के साथ रख दी गयी हैं।"[७]

बिल्लेसुर का गाँव से नगर जाकर सतीदीन शुक्ल के यहाँ आजीविका जुटाना, बिल्लेसुर के तीनों भाइयों की कहानी और बिल्लेसुर की अपनी बकरिहा जीवन की कहानी – यह तीनों कहानियाँ परस्पर संबंधित हैं जो बिल्लेसुर के चरित्र विकास में सहायक सिद्ध होती हैं। इसमें परम्परागत कथावस्तु का अभाव है। कौतूहलपूर्ण प्रसंगों की अवतारणा द्वारा रोचकता की सृष्टि करने का प्रयास भी कथाकार ने नहीं किया है। बिल्लेसुर का सतत संघर्ष दिखाना ही लेखक का अभीष्ट था।

आंचलिक वातावरण की सृष्टि करने में लेखक को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। "बिल्लेसुर के जीवन से संबंधित जो भी घटनाएँ हैं, उनका विन्यास स्वाभाविक और परस्पर संबद्ध है। तीनों कहानियों को एक सूत्र में इस प्रकार गूँथा गया है कि एक सुसंगठित और प्रभावपूर्ण कथानक की सृष्टि हुए बिना नहीं रही है। लेखक ने उपन्यास के अन्त में विवाह आदि की सूचना मात्र देकर उपन्यास का अन्त कर दिया है जिससे व्यंग्यात्मक प्रभाव जीवंत हो उठा है।"[१०]

सम्पूर्ण रेखाचित्र में हास्य एवं व्यंग्य के छींटे यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। अपनी गतिविधियों, मुद्राओं और वार्तालाप से हास्य की सृष्टि करने वाले बिल्लेसुर कहीं भी हास्यास्पद नहीं बनते - यह लेखकीय कुशलता एवं परिपक्वता का प्रमाण है।

इस प्रकार कथाकार निराला अपने कथा-साहित्य के वस्तु-विन्यास में दक्षता एवं नैपुण्य का परिचय देते हैं। यथार्थता, रोचकता, काव्यात्मकता, कल्पनाशीलता, आंचलिकता, आकस्मिकता, विद्रोहात्मकता एवं नाटकीयता उनके कथानक के गुण हैं। जिन कृतियों में उन्होंने वस्तु-विन्यास संबंधी नवीन प्रयोग किए हैं, वे कृतियाँ भी हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इस दृष्टि से 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसे रेखाचित्र एवं 'देवी' तथा 'चतुरी चमार' जैसी कहानियाँ हिन्दी कथा-साहित्य में 'मील का पत्थर' प्रमाणित होती हैं। हिन्दी कथा साहित्य को आंचलिकता का स्वर प्रदान करने में निराला ने अग्रणी भूमिका निभाई। कवि निराला ने कथा-साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर उसे एक नयी गति और दिशा प्रदान की। श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में – "साहित्य के नवीन युग-पथ पर निराला की अंक-संसृति गहरी और स्पष्ट, उज्ज्वल और लक्ष्यनिष्ठ रहेगी। इस मार्ग के हर फूल पर उनके चरण का चिह्न और हर शूल पर उनके रक्त का रंग है।"[११]

संदर्भ :

१. Dictionary of world Literature- J.T. Shiplay, Page 310
२. Aspects of Novel – E.M. Forster, Page 32
३. The playwrites by Green wood - Page 9
४. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु-विन्यास – डा० सरोजनी त्रिपाठी, पृष्ठ ७१
५. पद्मा और लिली, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८८
६. ज्योतिर्मयी, पृष्ठ २९३, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
७. कमला, पृष्ठ ३०३, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
८. वही, पृष्ठ ३०३, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
९. वही, पृष्ठ ३०१, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
१०. अर्थ, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३४१
११. कथाशिल्पी निराला – डा० बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा, पृष्ठ ९१
१२. प्रेमिका परिचय, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३२४
१३. परिवर्तन, पृष्ठ ३२९, , निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड

१४. वही, पृष्ठ ३३१, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
१५. सखी, पृष्ठ ३५५, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
१६. वही, पृष्ठ ३५५, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
१७. न्याय, पृष्ठ ३४३, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
१८. वही, पृष्ठ ३४६, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
१९. वही, पृष्ठ ३४२, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२०. राजा साहब को ठेंगा दिखाया, पृष्ठ ३७१, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२१. वही, पृष्ठ ३७२, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२२. वही, पृष्ठ ३७२, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२३. वही, पृष्ठ ३७२, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२४. देवी, पृष्ठ ३५७, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२५. राजा साहब को ठेंगा दिखाया, पृष्ठ ३७७, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२६. वही, पृष्ठ ३५७, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२७. वही, पृष्ठ ३५८, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२८. वही, पृष्ठ ३६१, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
२९. वही, पृष्ठ ३५६, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
३०. निराला की साहित्य-साधना, डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ ४७२
३१. कथाशिल्पी निराला – डा० बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा, पृष्ठ १२३
३२. निराला का गद्य – डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ ४६
३३. चतुरी-चमार, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३६५
३४. महाकवि निराला का कथा-साहित्य – डा० नरपत चन्द सिंघवी, पृष्ठ १६८
३५. स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं – निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३५१
३६. निराला का साहित्य और साधना – डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ २८२
३७. सफलता, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३७७
३८. वही, पृष्ठ ३७७, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
३९. वही, पृष्ठ ३७८, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
४०. वही, पृष्ठ ३७९, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
४१. वही, पृष्ठ ३७९, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
४२. भक्त और भगवान, पृष्ठ ३८१, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
४३. वही, पृष्ठ ३८३
४४. निराला का साहित्य और साधना – डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ २८२
४५. निराला का गद्य – डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ ५२
४६. निराला की साहित्य-साधना – डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ ४६७
४७. सुकुल की बीवी, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३९०
४८. श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, पृष्ठ ४०१, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
४९. कथाशिल्पी निराला – डा० बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा, पृष्ठ १५१
५०. कला की रूप-रेखा – निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३८५
५१. क्या देखा, पृष्ठ २७२, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
५२. क्या देखा, पृष्ठ २७१, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड

५३. जान की, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ४११
५४. वही, पृष्ठ ४१३, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
५५. दो दाने, पृष्ठ ४१७, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
५६. वही, पृष्ठ ४१६, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
५७. वही, पृष्ठ ४१८, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
५८. अप्सरा, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ५६
५९. हिन्दी उपन्यास – डा० शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ २५५
६०. निराला का गद्य – डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ १९
६१. चमेली, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २५१
६२. वही, पृष्ठ २५५
६३. निराला और नव जागरण, डॉ० रामरतन भटनागर, पृष्ठ ११४
६४. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु-विन्यास – डा० सरोजनी त्रिपाठी, पृष्ठ १७६
६५. निराला का गद्य – डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ ५५
६६. कुल्लीभाट, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २२
६७. वही, पृष्ठ ६३, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
६८. वही, पृष्ठ ७४, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड
६९. बिल्लेसुर बकरिहा, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ८५
७०. वही, पृष्ठ ८४
७१. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु-विन्यास, डा० सरोजनी त्रिपाठी, पृष्ठ १७८
७२. पथ के साथी – महादेवी वर्मा, पृष्ठ ७०

पंचम अध्याय

निराला के कथा साहित्य में शिल्प

सर्जक अपने मन में उठने वाले भावों एवं अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त माध्यम की तलाश करता है। उसकी इसी तलाश ने अनेक प्रकार के कला-रूपों को जन्म दिया है। साहित्यकार को भी अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए इसी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। सामान्यत: कथा-साहित्य के प्रणयन में निम्नलिखित तत्त्वों का सहारा लिया गया है – कथानक, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली, कथोपकथन, देशकाल निरूपण एवं उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन। विद्वानों ने इन तत्त्वों को वस्तु एवं शिल्प इन दो शीर्षकों के अन्तर्गत रखा है। इनमें से वस्तु के अन्तर्गत कथानक एवं शिल्प के अन्तर्गत अन्य तत्त्व समाहित हो जाते हैं।

निराला के कथा-साहित्य में वस्तु की विस्तृत चर्चा हमने पिछले अध्याय में की है। इस अध्याय में उनके कथा-साहित्य के शिल्प पक्ष के अन्तर्गत चरित्र-चित्रण भाषा-शैली, कथोपकथन, देशकाल-निरूपण एवं उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन पर विचार किया जायेगा।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण

कथा-साहित्य में मानव-चरित्र के विभिन्न रूपों की झाँकी देखने को मिलती है। मानव चरित्र की तमाम दुर्बलताओं एवं सबलताओं का जैसा जीवन्त एवं सहज चित्रण उपन्यास, कहानी एवं रेखाचित्रों में मिलता है, वैसा अन्य किसी साहित्यिक विधा में दुर्लभ है। पात्रों एवं चरित्रों के सजीव चित्रण द्वारा ही कथाकार अपने महान उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होता है। इस दृष्टि से चरित्र चित्रण कथा साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यासों में चरित्र यद्यपि लेखक द्वारा निर्मित होते हैं किन्तु उनका अपना व्यक्तित्व भी होता है। वे "अपने मानव होने और ईश्वरीय सृष्टि होने का आभास देते हैं। .....उपन्यासकार अपने कौशल से उनमें ऐसे गुण भर देता है कि उनसे हमारा निकटतम तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उनके सुख-दु:ख हमारे अपने से प्रतीत होते हैं।"[1] अत: पात्रों के मनोविज्ञान का ध्यान रखते हुए कथाकार को इस रूप में पात्र-निर्माण करना चाहिए कि वे मात्र हममें यथार्थ का भ्रम पैदा न करें एवं कथा की समाप्ति के पश्चात् भी हमारी स्मृति में टिके रहें।

चरित्र मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले एवं विशिष्ट व्यक्तित्व वाले। इनकी भी दो कोटियाँ हैं – प्रमुख पात्र, सहायक पात्र। प्रमुख-पात्रों के कार्य-व्यापार में ही उपन्यास का वास्तविक उद्देश्य छिपा होता है एवं ये कथा को गतिशील बनाते हैं।

सहायक पात्र परिस्थिति-निर्माण में सहायक तो होते ही हैं साथ ही मुख्य पात्र के चरित्र विकास एवं कथा को गति प्रदान करने में भी सहायता देते हैं। चूँकि इन चरित्रों का गहराई से चित्रण कथाकार का अभिप्रेत नहीं होता, अतः इन्हें सपाट चरित्र भी कहा जाता है।

डॉ० त्रिभुवन सिंह के मतानुसार – ''उपन्यासकार के लिए किसी भी चरित्र का निर्माण करना तब तक संभव नहीं है जब तक कि वह अपनी कल्पना के सम्मुख किसी जीवित व्यक्ति को लाकर खड़ा नहीं कर लेता। बिना किसी एक निश्चित व्यक्ति को मस्तिष्क में लाये, यह कभी संभव नहीं है कि चरित्रों में जीवनदायिनी शक्ति का संचार किया जा सके।'' लेखक अपने इर्द-गिर्द के व्यक्तियों से चरित्र का चयन करता है। कभी-कभी किसी पात्र के निर्माण हेतु अपने चरित्र का प्रक्षेपण भी करता है। किन्तु वह अपनी कृति में चरित्रों को यथावत् उपस्थित नहीं करता बल्कि उन्हें अपनी दृष्टि से जाँचता परखता है। अतः एक ही चरित्र अलग-अलग लेखकों की कलम से भिन्न-भिन्न रूपों में चित्रित होता है। चरित्र-निर्माण का प्रधान स्रोत कथाकार का अपना जीवन होता है। अतः उसके व्यक्तित्व की झलक कथा-साहित्य में मिल ही जाती है। कथाकार चरित्रों के अवचेतन मन में प्रविष्ट होकर उनके माध्यम से अपनी बात कहता है। इस तरह वह कथानक एवं चरित्रों में एक सामंजस्य बैठाता है। कथानक गठन में जिस प्रकार चरित्रों का महत्व है उसी प्रकार संवाद-योजना, भाषा-शैली एवं उद्देश्य प्रतिपादन में भी चरित्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निराला के सम्पूर्ण कथा-साहित्य के गहन-अध्ययन-मनन के पश्चात् हम पाते हैं कि उनका कथाकार रूप चरित्रों की अवतारणा में अधिक रमा है और तन्मयता के क्षणों में निराला ने अविस्मरणीय चरित्रों की सृष्टि की है। निराला के ये चरित्र कथा-साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं क्योंकि वास्तव में इन्होंने कवि निराला को कथाकार निराला के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनके पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण निराला को प्रेमचन्द परम्परा का कथाकार सिद्ध करता है।

निराला के चरित्र गठन की विशेषता को समझने के लिए उनके कथा-साहित्य के प्रमुख पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण आवश्यक है। इसके लिए उनकी कहानियों, उपन्यासों एवं रेखाचित्रों के कुछ प्रमुख पात्रों का चयन किया है। वे इस प्रकार हैं।

कहानियों के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

पद्मा

'पद्मा और लिली' कहानी की नायिका पद्मा के चरित्र के माध्यम से निराला ने उस सुशिक्षिता, स्वतन्त्र एवं प्रगतिशील वर्ग की नारी को चित्रित किया है जो रूढ़िवादी माता-पिता की संतान है। ब्राह्मण कुल की कन्या पद्मा क्षत्रिय घराने के लड़के राजेन्द्र से प्रेम करती है। माता-पिता द्वारा अपने चरित्र पर अनैतिक एवं असत्य लांछन लगाए जाने पर वह निर्भीकता-पूर्वक उनका विरोध करती है किन्तु वह विवाह और प्रेम को एक नहीं मानती। अपनी प्रतिज्ञा पर

हिमालय की तरह अटल रहने वाली पद्मा का चरित्र अत्यन्त संतुलित है। उसमें किसी प्रकार की भावुकता नहीं है। वह जहाँ एक ओर अपने स्वर्गवासी पिता की अन्तिम इच्छा "राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना"[1] का पालन करने के लिए आजीवन कौमार्य का कठिन व्रत लेती है तथा अपने को आदर्श पुत्री साबित करती है वहीं दूसरी ओर अपने प्रेम की गरिमा को भी बनाए रखती है। पद्मा के रूप में निराला जी ने एक ऐसी नारी का चरित्र हमारे सम्मुख रखा है जो अक्षय प्रेम में विश्वास रखती है। यहाँ प्रेम की परिणति विवाह के रूप में दिखाना कथाकार का अभीष्ट नहीं था बल्कि त्यागपूर्ण प्रेम किस प्रकार जीवन में उत्कर्ष को प्राप्त करता है इसका सुन्दर उदाहरण पद्मा के चरित्र के माध्यम से पाठकों के सम्मुख रखा है। पद्मा का आजीवन अविवाहित रहकर देश सेवा का व्रत लेना तथा विजातीय बालिकाओं को शिक्षित करने का संकल्प संभवत: निराला के इस विश्वास के सूचक हैं कि शिक्षा के प्रचार-प्रसार के माध्यम से ही नारी जाति को अंध विश्वास, रूढ़िवादिता एवं जाति-भेद के दुर्गुणों से बचाया जा सकता है। पद्मा के विचारों एवं चरित्र में यह क्रांतिकारी परिवर्तन लेखक की वैचारिक सजगता का परिचायक है। डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित का विचार है कि – 'युवावर्ग के स्वच्छंद प्रणय को संयत आचरण और वैचारिक गम्भीरता की ओर मोड़कर लेखक ने लोकपक्ष का प्रबल समर्थन किया है।'[2] पद्मा का आभामंडित चरित्र निराला की सामाजिक युगान्तर की निर्भीक-कल्पना का साकार चित्र है।

ज्योतिर्मयी

'ज्योतिर्मयी' कहानी की नायिका ज्योतिर्मयी के चरित्र के माध्यम से सामाजिक उत्पीड़न की शिकार बाल-विधवा का करुण चित्र निराला ने उपस्थित किया है। ज्योति का वैधव्य अत्यन्त विडम्बनात्मक है क्योंकि स्वयं उसी के शब्दों में – "मैं बारह साल की थी, ससुराल नहीं गयी, जानती भी नहीं, पति कैसे थे, और विधवा हो गयी।"[3] विधवा ज्योति पुरुष-शासित समाज की रूढ़ियों को मानने को विवश है। उसका आक्रोश इन पंक्तियों में फूट पड़ा है – "मानती रहें, चूँकि आप ही लोगों ने, आप ही के बनाये हुए शास्त्रों ने, जो हमारे प्रतिकूल हैं, हमें जबरन गुलाम बना रक्खा है, कोई चारा भी तो नहीं है।"[4] उसके विचारों में विद्रोह की जो अग्नि प्रज्ज्वलित दिखायी देती है, वह प्रकारान्तर से विधवा नारी के प्रति रूढ़िवादी समाज के रवैये से खिन्न निराला के मन का ही विद्रोह है। पातिव्रत धर्म के नाम पर तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलने का जो प्रलोभन विधवा को दिया जाता है उसका परिहास पूर्ण एवं व्यंगात्मक ढंग से खण्डन निराला ने ज्योतिर्मयी द्वारा कराया है – "यदि पहले ब्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पुण्यपाद पति-देवता की प्रतीक्षा करती हो, और पतिदेव क्रमश: दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियों को मार-मारकर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें, तो खुद मरकर किसके पास पहुँचेंगे?"[5] वाक्पटु ज्योतिर्मयी के इस कथन द्वारा कथाकार ने एक ओर बाल-विधवा द्वारा पातिव्रत धर्म के नाम पर सम्पूर्ण जीवन अभिशप्त वैधव्य को ढोने जैसे सामाजिक शोषण का विरोध किया है तो वहीं दूसरी ओर पुरुष की बहु-विवाह प्रथा पर तीखा प्रहार किया है।

कहानी के नायक विजय और उसके मित्र वीरेन्द्र के वार्तालाप से ज्योतिर्मयी के जीवन की करुणा तब और भी उभर कर आती है जब उससे सहानुभूति होते हुए भी विजय "दुर्बल समाज की सरिता से एक बहते हुए निष्पाप पुष्प का उद्धार"[10] करने में अपने आप को इसलिए असमर्थ पाता है क्योंकि उसे "तैरना नहीं सिखलाया गया है।"[11] ऐसे समाज-भीरु पुरुष के साथ किसी तरह विवाह हो जाने पर भी ज्योतिर्मयी का यह सोचना कि "इससे मेरा वैधव्य शतगुण, सहस्र-गुण अच्छा था।"[12] इस सत्य को रेखांकित करता है कि एक कायर पुरुष की पत्नी बनने की अपेक्षा, विवाह जैसे सामाजिक संस्कार का बहिष्कार ही निराला श्रेष्ठ मानते थे।

कमला

'कमला' कहानी की नायिका कमला के चरित्र के रूप में निराला जी ने आदर्श पतिव्रता, संयम एवं सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति तथा प्राचीन परम्पराओं और मान्यताओं को स्वीकार करने वाली एक ऐसी आदर्श भारतीय नारी का चित्र हमारे सम्मुख रखा है जो सामाजिक उत्पीड़न का शिकार होने के बावजूद टूटती या बिखरती नहीं है बल्कि अपने दृढ़-चरित्र-बल एवं उदारता से पथ-भ्रष्ट पति का भी उद्धार करती है। भैयाचारों की कूटनीति का शिकार कमला पति द्वारा अकारण लांछन लगाकर त्याग दिए जाने पर भी तपस्या का पथ अपना लेती है एवं एक हिन्दू महिला की भाँति विश्वास की डोर पकड़े अपना समस्त जीवन न्योछावर कर देती है। माँ की मृत्यु के पश्चात "बाहरी लक्ष्य भाई एवं भीतरी पति-धर्म का निर्वाह"[13] करते हुए स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करती है। कमला का चारित्रिक उत्कर्ष तब और निखर कर सामने आता है जब वह अपने छोटे भाई से अपने नामधारी पति की बहन का पाणिग्रहण स्वीकार कर लेती है और वह भी उस समय जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे का शिकार हो जाने के कारण एवं दो दिनों तक मुसलमानों के घर में आश्रय लेने के कारण कमला के पति एवं उसकी बहन भैयाचारों द्वारा जाति-बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। ऐसे दारुण समय में अत्यन्त निर्भीकता एवं उदारता का परिचय देते हुए "आपको उठा लेना ही मेरा धर्म है"[14] कहकर कमला पति की बहन का उद्धार कर लेती है। कमला के समान आदर्श-चरित्र-सम्पन्न युवती के रूप में निराला ने आदर्श भारतीय नारी की कल्पना का साकार चित्र उकेरा है। निराला के ये नारी-पात्र परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के सम्मुख परास्त नहीं होते। उनका चरित्र स्वयं तो विकास के सोपानों पर चढ़ता ही है साथ ही पतित पुरुष समाज को भी अत्यन्त उदारतापूर्वक ऊपर उठाता है।

वेदवती

'कमला' कहानी में एक अन्य नारी चरित्र जो बरबस पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है वह है आर्य-समाज के मन्त्री जी की कन्या वेदवती का। यद्यपि कहानी में वेदवती के चरित्र की व्याप्ति अत्यल्प है किन्तु सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का जो स्वर उसने बुलन्द किया है उसमें निराला के विचारों की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। कमला के शोषण की करुण-गाथा सुनकर नारी-स्वातन्त्र्य की प्रबल पक्षधर वेदवती का आक्रोश इन स्वरों में फूट पड़ता है—"मैं होती तो, चपत का जवाब दूने कस की चपत कसकर देती—उन्हीं की तरह अपना

भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती, ऊपर से न्योता भेजती कि आइए जनाबमन मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइए। तुम्हीं लोगों ने अपने सिर स्त्रियों का अपमान उठा रक्खा है।''[11] वेदवती के ये उद्‌गार इस तथ्य के स्पष्ट परिचायक हैं कि निराला का सैद्धान्तिक आक्रोश एवं उनकी वैचारिक असहिष्णुता उन सभी व्यक्तियों के प्रति निर्मम है जो समाज-भीरु और मानसिक रूप से नपुंसक हैं। वेदवती का चरित्र अत्यन्त उल्लेखनीय है एवं उसके आक्रोश पूर्ण उद्‌गार स्वयं क्रान्तिकारी निराला के विचारों के संवाहक हैं।

बंकिमचन्द्र

'श्यामा' कहानी के नायक बंकिम के रूप में कथाकार ने एक ऐसे प्रगतिशील विचारों वाले युवक का चित्रण किया है, जो ब्राह्मण होते हुए भी लोध जाति की विधवा कन्या से विवाह कर सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ बगावत करता है। अपने यौवनकाल के प्रारम्भिक दिनों में साधारण युवकों की भाँति सिगरेट, अण्डे कबाब का सेवन कर नाम के अनुरूप वाम मार्ग ग्रहण करने वाले बंकिम में शोषितों एवं दलितों के प्रति सहानुभूति का भाव है। गाँव में जहाँ एक ओर सुधुआ लोध की करुण-कथा उसे द्रवित कर देती है वहीं दूसरी ओर उसकी कन्या श्यामा के चपल लावण्य पर वह अनुरक्त है। सुधुआ का लगान चुकाने के लिए अपनी सोने की अँगूठी को रेहन पर रखने वाला बंकिम गाँव वालों की व्यंग्य-निगाहों की परवाह नहीं करता एवं सुधुआ की मृत्यु पर श्यामा की सहायता से उसका शव दफना कर अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करता है। उसके वीरोचित कार्य से आर्य-समाज के मन्त्री सत्यप्रकाश जी भी उससे प्रभावित होते हैं। उनकी मदद से विधवा श्यामा से विवाह कर बंकिम स्वयं अपना एवं श्यामा का विकास करता है। इस तरह एक स्वच्छन्द विचारों वाले युवक से डिप्टी साहब बनकर बंकिम अपने दृढ़-संकल्प, बौद्धिक सजगता एवं कर्मठता का परिचय देता है। यही नहीं बल्कि अपने पिता की तमाम सम्पत्ति अपनी बहन सरला के पुत्र को देकर वह अपनी त्यागशीलता का भी परिचय देता है। इस तरह सम्पूर्ण कहानी में बंकिम की छवि निस्वार्थ सेवा भाव वाले आदर्श युवा की उभरती है।

श्यामा

'श्यामा' कहानी की नायिका श्यामा लोध जाति की विधवा युवती है। वह एवं उसका पिता सुधुआ गाँव के जमींदार की क्रूरता का शिकार हैं। श्यामा का निर्भय व्यवहार, अनुपम स्वास्थ्य एवं चपल लावण्य ब्राह्मण कुमार बंकिम को मुग्ध कर लेता है। पिता की मृत्यु पर जब समस्त जाति वाले उसका तिरस्कार करते हुए क्रियाकर्म के लिए नहीं आते तो निराश श्यामा बंकिम की मदद से स्वयं गड्ढा खोदकर पिता का मृत शरीर दफनाती है। उसके चरित्र में परिवर्तन तब आता है जब कानपुर आकर वह बंकिम से विवाह करती है। यहाँ पढ़ने के साथ-साथ दस्तकारी आदि सीखकर श्यामा गाँव की भोली-भाली अशिक्षिता युवती से डिप्टी साहब की धर्मपत्नी श्रीमती श्यामकुमारी देवी बनती है। समाज में अत्यन्त निम्न माने जाने वाले लोध जाति की विधवा युवती का यह रूपान्तरण सचमुच प्रशंसनीय है।

स्वामी सारदानन्द जी महाराज

'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' शीर्षक आत्म संस्मरण-परक कहानी के केन्द्रीय चरित्र स्वामी सारदानन्द जी महाराज के रूप में निराला ने "महादार्शनिक महाकवि, स्वयंभू, मनस्वी, चिरब्रह्मचारी, सन्यासी, महापंडित सर्वस्वत्यागी"[१४] एक ऐसी दिव्य आत्मा का वर्णन किया है जिनसे स्वयं निराला बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। इनसे निराला का साक्षात्कार सन् १९२२ ई० में उद्बोधन कार्यालय, बागबाजार में हुआ था। उनकी स्थूल काया देखकर श्मशानों की सैर करने वाले निराला भी कुछ दिनों तक भयभीत रहे। निराला को अध्यात्म की ओर उन्मुख करने में स्वामी जी के आध्यात्मिक व्यक्तित्व ने प्रेरक का कार्य किया। उनके दिव्य प्रभाव ने निराला की विरोधी शक्ति को परास्त कर दिया और निराला ने स्वीकार किया कि "उन्होंने अपनी पूर्णता देकर मेरी स्वल्पता ले ली।"[१५] यह स्वामी जी के सम्मोहक व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि तंत्र-मंत्र पर विश्वास न करने वाले निराला को भी कहना पड़ा – "मुझे कुछ ही दिनों में जान पड़ने लगा, मेरा निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरवाला नीचे हो गया है और रामकृष्ण मिशन के साधु खींच रहे हैं।"[१६]

निराला के विद्रोही एवं विरोधी व्यक्तित्व को अध्यात्म के शान्त एवं सहज पथ पर लाने में जिन लोगों का व्यक्तित्व प्रेरणा का कार्य करता रहा है उनमें से स्वामी सारदानन्द जी महाराज भी एक थे और इस दृष्टि से उनके चरित्र का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

पगली

'देवी' कहानी की नायिका पगली के चरित्र के माध्यम से निराला ने समाज के निम्न वर्ग की स्त्री की पीड़ा एवं विवशता का साकार चित्र उपस्थित किया है। फुटपाथ पर रहने वाली एवं होटल की जूठन पर पलने वाली गूंगी भिखारिन को देवी के आसन पर प्रतिष्ठित कर कथाकार ने समाज के दलित वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति एवं संवेदना प्रकट की है। पगली पर प्रथम दृष्टि पड़ते ही निराला की बड़प्पन वाली भावना पूरी तरह परास्त हो जाती है। प्रकृति की मारों से लड़ती हुई पगली में "संसार की स्त्रियों की एक भी भावना नहीं"[१७] है। रास्ते के किसी ख्वाहिशमन्द का सबूत उसका बच्चा जैसे इस बात का गवाह है कि वह भी अन्य संसारियों की तरह ही है। पगली के रूप का भावात्मक वर्णन कहानीकार ने इन पंक्तियों में किया है – "वह साँवली थी, दुनिया की आँखों को लुभाने वाला उसमें कुछ न था, दूसरे लोग उसकी रुखाई की ओर रुख न कर सकते थे, पर मेरी आँखों को उसमें वह रूप देख पड़ा, जिसे मैं कल्पना में लाकर साहित्य में लिखता हूँ, केवल वह रूप नहीं, भाव भी।"[१८] अपने बच्चे को जिस तरह से वह गूंगी भिखारिन मूक-भाषा सिखा रही थी उससे उसकी भाव-व्यंजना की अद्भुत क्षमता प्रकट होती है। पगली में महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप कहानीकार को दिखाई देने लगा। पगली में मातृत्व की भावना अत्यन्त प्रबल है। नेता के जुलूस के अवसर पर उमड़ी भीड़ में बच्चे के कुचल जाने पर जिस तरह वह ज्वालामयी दृष्टि से भीड़ को देखती है उससे उसकी ममता की गहराई का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

गरमी की तेज लू और बरसात की तीव्र धार को समान रूप से झेलने वाली पगली को जैसे तपस्या करने की आदत थी किन्तु जब उसे दुनिया का, अपने अस्तित्व का ज्ञान होता है, तब हाड़ तक छिद जाने वाले जाड़े से काँपकर वह करुण स्वर से रो भी उठती थी। संसार के प्रति उपेक्षा-भाव होते हुए भी उसमें मनुष्य को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता थी इसीलिए कहानीकार की अपने प्रति सहानुभूति एवं करुणा को उसने पहचान लिया था।

पगली का रेखाचित्र जिस रूप में निराला ने प्रस्तुत किया है उससे वह सहज ही हमारी करुणा की पात्रा बन जाती है। उसका चरित्र तथाकथित सभ्य एवं शिष्ट कहे जाने वाले सम्पूर्ण समाज पर एक व्यंग्य है।

चतुरी चमार

'चतुरी चमार' शीर्षक कहानी में चतुरी के रूप में निराला ने अछूत वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले एक ऐसे पात्र का जीवन-चरित्र वर्णित किया है जो अपनी साधारणता में भी असाधारण है। चतुरी कोई का पनिक चरित्र नहीं बल्कि गाँव के रिश्ते में निराला का भतीजा लगता है। कहानी के आरम्भ में ही उसकी कार्य कुशलता का परिचय देते हुए कथाकार लिखते हैं – "वह अपने उपानह-साहित्य में आजकल के अधिकांश साहित्यिकों की तरह अपरिवर्तनवादी है।"[१९] निराला के अनुसार "चतुरी चतुर्वेदी आदिको से सन्त-साहित्य का कहीं अधिक मर्मज्ञ है।"[२०] कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, पलटूदास आदि ज्ञात-अज्ञात अनेकानेक संतों के भजनों का कुशलतापूर्वक गायन करने वाला चतुरी कबीर पदावली का विशेषज्ञ है। वह शोषण-वृत्ति का विरोधी है। उसकी पीड़ा इन पंक्तियों में फूट पड़ती है – "जमींदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है।"[२१] उसकी व्यथा को कथाकार ने बड़ी शिद्दत से महसूस किया है तभी तो वे लिखते हैं – "वह एक ऐसे जाल में फँसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका पूरा जोर उभड़ रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझकर रह जाता है।"[२२] चतुरी अपने पुत्र 'अर्जुनवा' को विद्यार्जन कराना चाहता है ताकि वह इस शोषण का शिकार न हो।

चतुरी के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष तब और निखर कर सामने आता है जब आन्दोलन छिड़ने पर वह जमींदारों के खिलाफ कृषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह संघर्षों के सामने टूटता या झुकता नहीं है। अपना सब कुछ गँवा कर भी चतुरी अपनी नैतिक विजय से गर्वित है क्योंकि स्वयं पराजित होकर भी उसने अपनी संतति को जमींदारों के शोषण से सदा के लिए मुक्त करा दिया।

चतुरी के रूप में निराला ने उस निम्नवर्ग के चरित्र को उभारा है जो आर्थिक शोषण के खिलाफ अपनी आवाज उठाता है। उसके विद्रोही व्यक्तित्व में कहीं-कहीं स्वयं कथाकार के व्यक्तित्व की भी स्पष्ट झलक दिखायी देती है। एक निम्न वर्ग के पात्र को अपनी कहानी का कथानायक बनाकर जहाँ एक ओर निराला ने अपनी मानवतावादी दृष्टि का परिचय किया है वहीं दूसरी ओर समाज के इस शोषित एवं उपेक्षित वर्ग के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है।

सुकुल

'सुकुल की बीवी' कहानी के नायक सुकुल कोई कल्पित चरित्र नहीं बल्कि निराला के स्कूल के सहपाठी थे। शिखाधारी सुकुल में हिन्दुत्व के संस्कार प्रबल रूप में विद्यमान हैं। यही कारण है कि मिश्रों के उपहास के बावजूद चोटी कटाना उन्हें स्वीकार्य नहीं, बल्कि प्रसंगवश वे उसकी आध्यात्मिक व्याख्या कई बार प्रस्तुत कर चुके थे। किसी से लड़ाई होने पर सुकुल जिस तरह चोटी की ग्रन्थि खोलकर अपने को चाणक्य का वंशज प्रमाणित करते थे उससे ज्ञात होता है कि स्वभाव से अत्यन्त विनयी सुकुल अन्याय के समक्ष किसी भी तरह झुकना नहीं जानते थे बल्कि वक्त पड़ने पर अपने प्रतिद्वन्द्वी को ललकारने का हौसला भी रखते थे। छात्र-जीवन में अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण ही सुकुल की टोली में वे हिन्दु-लड़के थे जो अपने को धर्म की रक्षा के लिए आया हुआ समझते थे। सुकुल अत्यन्त अध्यवसायी भी थे इसीलिए प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात उन्होंने बी.ए., एम.ए. आदि कर उच्च शिक्षा प्राप्त की।

छात्र जीवन में कट्टरपंथी सुकुल तब प्रगतिशील विचारों वाले सिद्ध हुए जब उन्होंने कुँवर पुखराज से प्रेम-विवाह रचाया। इस तरह सामाजिक रूढ़ियों का विरोध कर एवं सामाजिक आश्रय से पथभ्रष्ट युवती का उद्धार कर एक ओर सुकुल अपने को सच्चा प्रेमी प्रमाणित करते हैं वहीं दूसरी ओर सामाजिक सुधार के लिए कृत-संकल्प उत्साही एवं विद्रोही युवा के रूप में उभरते हैं।

पुष्कर कुमारी

'सुकुल की बीवी' कहानी की नायिका एवं सुकुल की पत्नी पुखराज कुँवर उर्फ पुष्कर कुमारी साहसी एवं दृढ़ चरित्र वाली ग्रैजुएट महिला है। उसकी माता अत्यन्त कुलीन बाजपेयी ब्राह्मण परिवार की कन्या थी जिन्हें सामाजिक अतिचार के कारण मुसलमान बनना पड़ा था। माता के मुख से उनके जीवन का वह करुण प्रसंग जान लेने पर पुखराज का मन जातीय गर्व के प्रति घृणा से भर उठता है एवं वह वैवाहिक सम्बन्ध को नकार कर उच्च शिक्षा प्राप्त करती है। सुकुल से प्रेम-संबंध स्थापित होने पर जिस तरह वह समस्त सामाजिक रूढ़ियों का विरोध कर सुकुल के यहाँ आकर रहने लगती है उससे उसकी विद्रोही प्रवृत्ति, एकान्त प्रेम-निष्ठा एवं साहस का परिचय मिलता है। सुकुल को सुकुल बनाने में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान है। इसीलिए वे पति के मित्र निराला के सम्मुख स्वीकार करती हैं कि "मैं स्वयं सुकुल की सहधर्मिणी नहीं, सुकुल स्वयं मेरे सहधर्मी हैं।"[११] सुन्दरता के साथ-साथ बौद्धिकता उनका प्रमुख गुण है। जिस युग में निराला के मुक्त छन्द को बड़े-बड़े साहित्यिक भी समझ एवं स्वीकार नहीं पाए थे उस समय उनके मुक्त छन्द की प्रशंसा कर पुष्कर कुमारी ने अपने गहन काव्य-ज्ञान का परिचय दिया।

पुष्कर कुमारी का चरित्र इस अर्थ में विशिष्ट है कि वह जहाँ एक ओर अपने जीवन निर्माण में स्वतः प्रवृत्त होने का साहस रखनेवाली आधुनिक नारी की प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर उसमें अपार धैर्य, तात्कालिक बुद्धि, संयम आदि विशेषताएँ भी हैं। अपने विवाह के मार्ग में जाति-भेद

जैसी एक बड़ी सामाजिक बाधा से वह जिस तरह तीन वर्षों तक जूझती रही, उससे उसकी धैर्यशीलता एवं सहिष्णुता का पता चलता है। पुष्कर सम्भाषण-कुशल एवं वाक् पटु भी है। वह अपने वाक्-चातुर्य से निराला को भी निरुत्तर कर देती है। उसके चरित्र में निराला की विद्रोही एवं क्रांतिकारी प्रकृति ही साकार हुई है।

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी

'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' कहानी की नायिका सुपर्णा के चरित्र को केन्द्र में रखकर ही निराला ने सम्पूर्ण कहानी की रचना की है। बनारस के प्रवासी सरयूपारीण ब्राह्मण, घर के साधारण जमींदार पं० रामखेलावन पाण्डेय की एकमात्र कन्या सुपर्णा पिता द्वारा दी गयी शिक्षा के कारण गाँव की वधू-वनिताओं में श्रेष्ठ मानी जाती थी। परम्परावादी ब्राह्मण तथा धर्म-भीरु पिता की कन्या सुपर्णा अपने ही गाँव के इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले युवक मोहन के प्रति आकृष्ट हो उसे अपना यौवन समर्पित कर देती है परिणामस्वरूप अविवाहित गर्भवती हो जाती है। उसके धर्म-भीरु पिता लोक मर्यादा को ध्यान में रखते हुए गर्भवती षोडशी कन्या का विवाह बनारस के वैद्य पं० गजानन्द शास्त्री नामक एक वृद्ध से कर देते हैं। सुपर्णा भी पूर्व प्रेमी द्वारा ठुकरा दिए जाने के कारण अधेड़ विधुर शास्त्री जी की चौथी पत्नी बनना स्वीकार कर लेती है।

विवाह के पश्चात् सुपर्णा का जीवन एक नयी दिशा की ओर उन्मुख होता है। वैद्यक की अनुवादित पुस्तकें पढ़कर एवं पति के साथ नाड़ी-विचार चर्चा करके नीम-हकीम बनी सुपर्णा नारी रोग परीक्षणालय खोलती है। चिकित्सा के बाद वह लेखन के क्षेत्र में दाखिल होती है। पातिव्रत्य एवं छायावाद पर लिखे उसके लेख सचित्र प्रकाशित हुए। इसी समय देश में सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ने पर श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी पिकेटिंग में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती हैं। यही नहीं बल्कि अपने जेवर बेच कर महात्मा जी को दो सौ रुपयों की थैली भी भेंट करती है। उनकी तन-मन-धन से की गयी देश-सेवा से धीरे धीरे लोगों में उनका सम्मान बढ़ता गया और उनकी उन्नति होती गयी। इसी समय चुनाव होने पर वे जौनपुर से एम.एल.ए. चुनी गयी। लखनऊ से प्रकाशित होने वाले प्रतिष्ठित पत्र 'कौशल' में उनके निबन्ध प्रकाशित होते थे। प्रधान सम्पादक के आमंत्रण पर वे कौशल कार्यालय पधारीं। मोहन एम.ए. होकर वहाँ सहकारी है। उसे वहाँ देखकर उद्धत भाव से वे हँसी और उपदेश के स्वर में बोली – ''आप गलत रास्ते पर थे।''[illegible]

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी का चरित्र उस महिला वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी चारित्रिक दुर्बलता के बावजूद तिकड़मों के कारण समाज में उन्नति के शिखर पर पहुँचता है किन्तु साथ ही कथाकार ने उसके चरित्र का एक उदात्त पक्ष इस रूप में प्रस्तुत किया है कि प्रेम में असफल होने पर सुपर्णा के मन में अपने प्रेमी मोहन के लिए जो प्रतिहिंसा का भाव है वही ज्वाला उसमें कुछ बनने एवं करने का निश्चय भरती है। छायावाद पर लिखा उसका लेख वस्तुतः छायावादी प्रभाव से ग्रस्त अपने पूर्व-प्रेमी पर किया गया करारा व्यंग्य ही है। ''देश को छायावाद से जितना नुकसान हुआ है, उतना गुलामी से नहीं''[illegible] जैसे वाक्य में उसके हृदय की ज्वाला ही खुलकर प्रकट हुई है।

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी के चरित्र का अन्तर्विरोध भी कथाकार ने बड़ी कुशलता से रेखांकित किया है। जो सुपर्णा यौवन-धर्म का पालन करने के लिए व्याकुल है तथा अपने प्रेमी मोहन को अपने वाक्‌जाल से फँसाना चाहती है वही प्रेमी द्वारा अपमानित होने पर विवाहोपरान्त पातिव्रत धर्म पर करारा लेख लिखती है। उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण निराला ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है।

विश्वम्भर

'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी का नायक विश्वम्भर कथाकार द्वारा कल्पित कोई काल्पनिक चरित्र नहीं है। निराला ने अपनी आँखों के सामने घटित एक सत्य घटना को ही कहानी का आधार बनाया है। अत: यह चरित्र भी यथार्थवादी चरित्र है। ''शक्तिपुर से तीन कोस दूर रंगनगर में राज्य की विशालाक्षी देवी''[illegible] के मन्दिर का वह पुजारी है। वह सीधा-सादा निर्धन, ब्राह्मण सामन्त वर्ग के शोषण का शिकार होता है। राज्य की ओर से उसे तीन रुपये महीने जो वेतन के रूप में मिला करते थे वे भी बीस महीने से न मिलने के कारण उसका पाँच सदस्यों का परिवार भुखमरी की स्थिति तक पहुँच गया था। साल भर में दो दर्जन से ज्यादा दरख्वास्तें देने पर भी जब जमींदार की ओर से कोई सुनवाई नहीं हुई तो उसने एक दिन जमींदार के किश्ती पर हवाखोरी के लिए जाते समय संकेत से उन्हें अपने मन-प्राणों की पीड़ा से परिचित कराना चाहा। उसने "हवा में उंगली से लिखकर राजा साहब की ओर कोंचा, फिर पेट खलाकर दोनों हाथों को मरोड़ा, फिर दाहने हाथ से मुंह थपथपाया, फिर दोनों हाथों के ठेंगे हिलाकर राजा साहब को दिखाया।''[illegible] विश्वम्भर के साथ तब बड़ी विडम्बना घटित होती है जब जमींदार के जासूस उसके संकेतों के गलत अर्थ लगाकर राजा साहब को समझा देते हैं कि वह शक्तिपुर के बागियों से मिला हुआ है और उसे बेवकूफ जानकर महाराज का उससे अपमान कराया गया है। महाराज का कहर उस पर टूट पड़ता है और सिपाही उसे मार-मार कर अधमरा कर देते हैं। इतने पर भी अत्याचार का अन्त नहीं होता और उस निर्धन ब्राह्मण को नौकरी से भी हाथ धोना पड़ता है। इस चरित्र के माध्यम से निराला ने उस शोषित वर्ग का जीवन्त चित्रण किया है जो सामन्तीय क्रूरता, अमानुषिकता तथा अत्याचार का शिकार है तथा जो अपनी पीड़ा को व्यक्त करने के अपराध में नौकरी से भी निष्कासित कर दिया जाता है। इस वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण कर निराला ने समाज के निम्न वर्ग के प्रति अपनी संवेदना जताई है।

उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

कनक

कनक 'अप्सरा' उपन्यास की नायिका है। वह निराला के छायावादी मस्तिष्क की रोमांटिक इन्द्रधनुषी कल्पना सदृश्य है। उसके चरित्रांकन में निराला का भावुक, सौन्दर्य प्रिय एवं कवि-व्यक्तित्व सजीव हो उठा है। सत्रह-वर्षीय चंपे की कली के समान नाज़ुक वह किशोरी वेश्या-पुत्री

है जिसके व्यक्तित्व का निर्माण ऐश्वर्य, वैभव एवं सौन्दर्य के समस्त साधनों से हुआ है। किन्तु वह सामान्य वेश्या न होकर स्वर्ग-लोक की अप्सरा है। उसके रूप माधुर्य, कला-ज्ञान, व्यावहारिक कुशलता, वैदुष्य, प्रत्युत्पन्न मतित्व, शालीनता एवं वैचारिक दृढ़ता आदि गुण उसे उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं।

उपन्यास के आरम्भ में ही नायक राजकुमार जिस तरह गोरे साहब से उसकी सतीत्व रक्षा करता है, उसकी वीरता पर वह मुग्ध हो जाती है। उम्र के अठारहवें चरण में प्रवेश करने पर जिस मादकता के साथ उसका चित्रण किया गया है उससे वह मुग्धा नायिका प्रतीत होती है। ''अपार अलौकिक सौंदर्य, एकांत में, कभी-कभी अपनी मनोहर रागिनी सुना जाता, वह कान लगा उसके अमृत-स्वर को सुनती, पान किया करती।''[२] यौवनागम के साथ-साथ उसके शारीरिक और मानसिक उद्वेलन को निराला ने बड़ी सूक्ष्मता से अंकित किया है – ''कभी-कभी खिले हुए अंगों के स्नेह-भार में एक स्पर्श मिलता, जैसे अशरीर कोई उसकी आत्मा में प्रवेश कर रहा हो। उस गुदगुदी में उसके तमाम अंग काँप कर खिल उठते। अपनी देह के वृंत पर अपलक खिली हुई ज्योत्स्ना के चंद्र-पुष्प की तरह सौंदर्योज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु से डोल उठती।''[३]

सौंदर्य की सजीव प्रतिमा, अपनी इस पुत्री की शिक्षा-दीक्षा का उसकी माता सर्वेश्वरी ने समुचित प्रबन्ध किया था। उसकी कुशाग्र बुद्धि ने उसके शिक्षकों को भी मुग्ध कर दिया था। ''इस तरह वह शुभ्र-स्वच्छ निर्झरिणी विद्या के ज्योत्स्ना-लोक के भीतर से मुखर शब्द-कलरव करती हुई ज्ञान के समुद्र की ओर अबाध बह चली।''[४]

प्रथम दर्शन में ही राजकुमार की वीरता पर मुग्ध कनक कोहनूर थियेटर में अभिनय के समय दुष्यंत बने राजकुमार की कला पर अनुरक्त हो जाती है। यही नहीं बल्कि शकुन्तला वेश में गान्धर्व-परिणय के अभिनय को ही जीवन की वास्तविकता मान कर माँ से स्पष्ट शब्दों में कह देती है – ''तुम्हारी कनक अब तुम्हारी नहीं रही। उसके हार में ईश्वर ने एक नीलम जड़ दिया है।''[५] अपने कुशल प्रयत्न से वह गिरफ्तार राजकुमार को छुड़ाती है तथा अपने हृदय का समस्त संचित अनुराग उस पर उँडेल देती है। राजकुमार भी उसे, 'मेरी सुबह की पलकों पर उषा की किरण' और 'मेरे साहित्यिक जीवन-संग्राम की विजय' कहकर उसके प्रेम पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगाता है। किन्तु अपने मित्र चन्दन की गिरफ्तारी की खबर सुनकर जब राजकुमार उसका तिरस्कार कर चला जाता है तो आहत कनक माता के साथ विजयपुर के राजकुमार के राजतिलक में जाने का आमंत्रण स्वीकार कर लेती है। यहाँ उसके चरित्र में नारी-मनोविज्ञान को लेखक ने बड़ी कुशलता से दर्शाया है। प्रेम में असफल नारी प्रतिशोध पर जब उतारू हो जाती है तो वही मार्ग अपनाती है जिसे कभी वह स्वयं भी बुरा मानती थी। कनक के चरित्र में भी विद्रोह का यह स्वर दिखाई पड़ता है।

वेश्या-पुत्री होने पर भी कनक में भारतीय-नारी के संस्कार बीज रूप में विद्यमान हैं जो तारा के सम्पर्क में आने पर जाग्रत हो उठते हैं। उसकी उस समय की मानसिक स्थिति का वर्णन

इन पंक्तियों में मिलता है – "कनक निष्कृति के मार्ग पर आकर देख रही थी, उसके मानसिक भावों में युवती के संग-मात्र से तीव्र परिवर्तन हो रहा था। इस परिवर्तन-चक्र पर जो सान उसके शरीर और मन को लग रही थी, उससे उसके चित्र की तमाम वृत्तियाँ एक दूसरे ही प्रवाह में तेजी से बह रही थीं और इस धारा में पहले की तमाम प्रखरता मिटती जा रही थी। केवल एक शान्त शीतल अनुभूति चित्त की स्थिति को दृढ़तर कर रही थी।"[illegible] कनक का कार्य एवं व्यवहार उसके आभिजात्य का सूचक है। उसके सम्पर्क में आने पर तारा भी इस बात को लक्षित करती है – "कनक में बहुत बड़े-बड़े लक्षण उसने देखे। उसने किसी भी बड़े खानदान में इतने बड़े लक्षण नहीं देखे। उसका चाल-चलन, उठना-बैठना, बोलना चालना, सब उसके बड़े खानदान में पैदा होने की सूचना दे रहे थे। उसके एक-एक इंगित में आकर्षण था। सत्रह साल की युवती की इतनी पवित्र चितवन उसने कभी नहीं देखी।"[illegible] कनक को अपने पेशे से घृणा है। एक साधारण गृहस्थ रमणी बनने की उसकी लालसा तब प्रकट होती है जब वह तारा से कहती है – "दीदी, आप मुझे मिलें, तो सब कुछ छोड़ सकती हूँ।"[illegible] अपने समस्त वैभव का परित्याग करने को आतुर कनक सच्चा प्यार और सहानुभूति पाने की आकांक्षी है। राजकुमार द्वारा उसे अपनी स्त्री स्वीकार कर लिए जाने पर एवं पेशवाज जलाने पर वह बड़ी निष्ठापूर्वक प्रतिज्ञा करती है – "अब ऐसा काम कभी नहीं करूँगी। सुबह नहाकर रोज शिवपूजन करूँगी।"[illegible] अपने पेशेगत क्षुद्र संस्कारों को त्यागकर यहाँ कनक देवीत्व के आसन पर प्रतिष्ठित होती है।

कनक का चरित्र पूर्णत: मनोवैज्ञानिक धरातल पर निर्मित है। विषम परिस्थितियों में भी उसकी बौद्धिकता एवं वैचारिकता कुंठित नहीं होती एवं उसका स्वाभिमान सदा जागृत रहता है। वेश्या पुत्री से कुलवती वधू बनने तक उसकी जीवन यात्रा उतार-चढ़ाव के विभिन्न बिन्दुओं से गुजरती हुई पाठकों पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है।

राजकुमार

'अप्सरा' उपन्यास का नायक राजकुमार उच्च-शिक्षित, हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर एवं बलिष्ठ शरीर वाला आदर्श चरित्र सम्पन्न युवक है। कलकत्ता सिटी-कॉलेज में हिन्दी का प्रोफेसर राजकुमार नाटक-लेखक होने के साथ-साथ अभिनय में भी रूचि रखता है। वह सच्चा हिन्दी साहित्य प्रेमी होने के कारण स्टेज पर अभिनेताओं के हिन्दी के गलत उच्चारण से क्षुब्ध है। अत: "बड़ी-बड़ी कम्पनियों में उतरकर प्रधान पार्ट किया करता है।"[illegible] हिन्दी-साहित्य के उद्धार के दृढ़ संकल्प से प्रेरित होने के कारण ही उसने विवाह भी नहीं किया।

राजकुमार में पुरुषोचित वीरता एवं साहस है। इसीलिए इडेन गार्डेन में नायिका कनक को अंग्रेज अफसरों के हाथों अपमानित होता देखकर वह अपनी वीरता और पराक्रम से उस अफसर को छठी का दूध याद दिला देता है एवं कनक के सतीत्व की रक्षा करता है। उसकी इस निर्भय वीरता पर ही मुग्ध होकर कनक 'शकुन्तला' नाटक के समय गान्धर्व रीति से हुए विवाह को अपने जीवन का सच बना लेती है एवं राजकुमार को अपना पति मान बैठती है।

राजकुमार के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व को उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से उभारा है। कनक की बुद्धि चातुर्य एवं सेवा-भाव की ओर आकृष्ट होने पर भी साहित्य तथा देश की सेवा के लिए आत्मार्पण का उसका संकल्प क्षीण नहीं होता। उस समय उसका मानसिक द्वन्द्व देखा जा सकता है – "यह सब क्या... है? क्या इस ज्योति से मिल जाऊँ? न, जल जाऊँ तो? इसे निराश कर दूँ? बुझा दूँ? न, मैं इतना कर्कश, तीव्र, निर्दय न हूँगा। फिर। आह। यह चित्र कितना सुन्दर, कितना स्नेहमय है? इसे प्यार करूँ? न, मुझे अधिकार क्या? मैं तो प्रतिश्रुत हूँ कि इस जीवन में भोग-विलास को स्पर्श भी न करूँ, प्रतिज्ञा....। की हुई प्रतिज्ञा से टल जाना महापाप है। और यह....स्नेह का निरादर?"[16]

कनक के प्रबल प्रेम के आवेग के आगे कुछ समय के लिए राजकुमार अपने संकल्प पथ से कुछ दूर अवश्य चला जाता है। किन्तु यहाँ भी उसकी मानवोचित प्रकृति ही प्रबल दिखाई देती है। राजकुमार, सच्चा एवं भावुक प्रेमी भी है। कनक के प्रति उसके उद्गारों में उसकी भावुकता, कल्पना एवं कवित्व की अनोखी शक्ति फूट पड़ती है – "मेरे साहित्यिक जीवन-संग्राम की विजय, मेरी सुबह की पलकों पर उषा की किरण, मेरी आंखों की ज्योति, कण्ठ की वाणी, शरीर की आत्मा, कार्य की सिद्धि, कल्पना की तस्वीर, रूप की रेखा, डाल की कली, गले की माला, स्नेह की परी, जल की तरंग, रात की चांदनी, दिन की छाँह...।"[17]

प्रेम एवं कर्तव्य के बीच अन्तर्द्वन्द्व के सूत्रों से राजकुमार का चरित्र बुना गया है। अपने मित्र चन्दन सिंह की गिरफ्तारी की खबर से राजकुमार का हृदय ग्लानि से भर उठता है। उसकी प्रकृति उसका तिरस्कार करने लगती है – "आज आँसुओं में अपनी शृंगार-छवि देखने के लिए आये हो? ...संसार से सहस्रों प्राणों के पावन संगीत तुम्हारी कल्पना से निकलने चाहिए। कारण, वहाँ साहित्य की देवी सरस्वती ने अपना अधिष्ठान किया, जिनका सभी के हृदयों में सूक्ष्म रूप से वास है। आज तुम इतने संकुचित हो गये कि उस समस्त प्रसार को सीमित कर रहे हो?"[18]

राजकुमार की चारित्रिक दृढ़ता एवं महत्ता तब प्रमाणित होती है जब कनक के प्रेम को निर्दयतापूर्वक ठुकराकर वह देश-सेवा की ओर उन्मुख होता है। अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाला राजकुमार तारा के सम्मुख अपने प्रेम की बात स्वीकार कर लेता है किन्तु कहीं-न-कहीं वह संस्कारग्रस्त भी है। "राजकुमार के हृदय में लज्जा, अनिच्छा, घृणा, प्रेम, उत्सुकता, कई विरोधी गुण थे, जिनका कारण बहुत कुछ उसकी प्रकृति थी, और थोड़ा सा उसका पूर्व संस्कार तथा भ्रम।"[19] कनक के कलात्मक आकर्षण पर मुग्ध होते हुए भी उसके पेशे से वह घृणा करता है। "कनक स्टेज पर नाचेगी गायेगी, दूसरों को खुश करेगी, खुद भी प्रसन्न होगी, और मुझसे ऐसा जाहिर करती है, गोया दूध की धुली हुई है, इन सब कामों में दिल से उसकी बिलकुल दिलचस्पी नहीं और वह ऐसी कनक का महफिल में बैठकर गाना सुनना चाहता है।"[20] किन्तु राजकुमार कलाविद् है। संगीत का उसे अच्छा ज्ञान है। "जब कनक के कला-ज्ञान की याद आती, हृदय के सहस्र कण्ठों से उसकी प्रशंसा करने लगता, पर दूसरे ही क्षण उस सोने की मूर्ति में भरे हुए जहर की कल्पना उसके शरीर को जर्जर कर देती थी। चित्त की यह डाँवाडोल स्थिति उसकी आत्मा को

क्रमशः, कमजोर करती जा रही थी, हृदय में स्थायी प्रभाव जहर का ही रह जाता।''[1] राजकुमार के मन का यह अन्तर्द्वन्द्व वस्तुतः उसके रूढ़िगत संस्कारों एवं तीव्र प्रेम के बीच का संघर्ष है जिसमें विजय अन्ततः प्रेम की ही होती है। कनक को अपनी पत्नी स्वीकार कर लेने पर उसे अनुभव होता है – ''मैंने परिपूर्ण पुरुष देह देकर सम्पूर्ण स्त्री-मूर्ति प्राप्त की, आत्मा और प्राणों से संयुक्त, सांस लेती हुई, पलकें मारती हुई, रस से ओत-प्रोत, चंचल, स्नेहमयी।''[2] इस तरह राजकुमार का सम्पूर्ण चरित्र यथार्थ के ताने-बाने से बुना गया है।

उपन्यास के अन्य पात्रों में कनक की माता सर्वेश्वरी, उसकी अंग्रेजी शिक्षिका कैथरिन, राजकुमार का मित्र चन्दनसिंह, कुंवर प्रताप सिंह, तारा एवं हैमिल्टन साहब आदि हैं।

सर्वेश्वरी नृत्य-संगीत में भारत-प्रसिद्ध हो चुकी बनारस की वेश्या है। अपार वैभव एवं सम्पत्ति की स्वामिनी सर्वेश्वरी अन्य वेश्याओं से इस बात में पृथक नजर आती है कि अपनी पुत्री को उच्च शिक्षा दिलाने में उसका भरपूर योगदान है। अपने पेशे के अनुरूप ही अपनी पुत्री कनक को ''किसी को प्यार मत करना। हमारे लिए प्यार करना आत्मा की कमजोरी है, वह हमारा धर्म नहीं''[3] की शिक्षा देने वाली सर्वेश्वरी राजकुमार के प्रति कनक के समर्पण की प्रगाढ़ता को जानकर हर प्रकार से उसे सहयोग देती है। वह कनक को बता देती है कि वह जयनगर के महाराज रणजीत सिंह की कन्या है। ''आज देखती हूँ, तुम्हारे कुल के संस्कार ही तुममें प्रबल हैं। उससे मुझे प्रसन्नता है। अब तुम अपनी अनमोल, अलभ वस्तु संभालकर रक्खो, उसे अपने अधिकार में करो। आगे तुम्हारा धर्म तुम्हारे साथ है।''[4] पुत्री कनक को इस प्रकार की आदर्श शिक्षा देने वाली वेश्या सर्वेश्वरी यहाँ पाठकों के सम्मुख एक आदर्श माता के रूप में उभरती है। तारा से साक्षात्कार के बाद उसे अपनी क्षुद्रता का अहसास होता है। तारा के अविचल स्त्रीत्व एवं पतिनिष्ठा के आगे वह नतमस्तक हो जाती है। उसके हृदय में शान्ति का उद्रेक होता है और वह घृणित पेशे को छोड़कर काशीवास का निश्चय करती है।

कैथरीन कनक की अंग्रेजी की शिक्षिका है जो उसे किसी दिन प्रभु ईसा की शरण में लाकर कृतार्थ कर देने का सपना संजोये है। कनक के साथ छेड़खानी करने वाले मिस्टर हैमिल्टन को उचित सजा दिलाने में वह कनक की भरपूर मदद करती है। यहाँ तक कि राजकुमार भी जब कनक को तिरस्कृत कर चला जाता है तो कैथरीन कनक को समझाना चाहती है – ''तुम क्रिश्चियन हो जाओ। राजकुमार तुम्हारे लायक नहीं। वह क्या तुम्हारी कद्र करेगा। वह तुमसे दबता है, रद्दी आदमी।''[5] कनक का तवायफ की हैसियत से विजयपुर के राजकुमार के तिलक में जाना कैथरीन को पसन्द नहीं। उसकी दृष्टि में कनक की कद्र कोई भारतीय नहीं कर सकता। इसलिए वह उसे योरोप चलने की सलाह देती है ताकि वहाँ उसे किसी लार्ड से मिलवा दे। कैथरीन के मनोभाव उसकी अपनी जाति के अनुरूप ही हैं जो भारतीयों को कोई महत्व देना नहीं जानते। इस तरह कैथरीन ईसाइयत की संकीर्ण मानसिकता से घिरी नजर आती है।

चन्दन सिंह राजकुमार का घनिष्ठ मित्र है किन्तु उसका रुझान राजनीति की ओर है। अत्यन्त उग्र हृदय वाला चन्दन सिंह स्वभाव से कोमल है। वह राजकुमार के साहित्यिक कार्यों का

प्रशंसक है। अपने बारे में चन्दन सिंह का विचार द्रष्टव्य है – "अपने को ग्रीष्म के तपे हुए मार्ग का पथिक, सम्पत्तिवालों की क्रूर हास्य-कुंचित दृष्टि में फटा निस्सम्मान भिक्षुक, गली-गली की ठोकरें खाता हुआ, मारा-मारा फिरने वाला रसलेशरहित कंकाल बतलाया करता था।"[१०] किसानों के संगठन का नेतृत्व करने वाला चन्दन सिंह लखनऊ षड्यंत्र में गिरफ्तार हो जाता है। उस समय उसके कमरे की तलाशी करते हुए राजकुमार को "फ्रांस, रूस, चीन, अमेरिका, भारत, इजिप्ट, इंगलैण्ड, सब देशों की, सजीव स्वर में बोलती हुई, स्वतन्त्रता के अभिषेक से दृप्त-मुख, मनुष्य को मनुष्यता की शिक्षा देने वाली किताबें"[११] मिलती हैं। इससे पता चलता है कि वह बागी युवक विश्व-राजनीति के मंच पर घटने वाली हर घटना की गहरी जानकारी रखता है। जेल से छूटने पर अपनी भाभी तारा से राजकुमार के जीवन की घटना ज्ञात होने पर वह बड़ी निर्भीकता एवं कौशलपूर्वक कनक का विजयपुर के राजा के चंगुल से उद्धार करता है और "मैं रावण से सीता को भी जीत लाया"[१२] की सूचना तारा को देता है। चन्दन जिस तरह छलकते उत्साह से अपनी तुलना महावीर से करता है वह कथन द्रष्टव्य है – "एक दर्जा महावीर से बढ़ गया। केवल खबर लेने ही नहीं गया, बल्कि सीता को जीत भी लाया।"[१३] इस तरह अपने को विपत्ति में डालकर दूसरों की मदद करने का जो गुण उसमें विद्यमान है उससे वह अनायास हमारी प्रशंसा का पात्र बन जाता है। हंसमुख – प्रकृति वाला चन्दन अपने विचारों में दृढ़ एवं राजकुमार की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। वह मानवीय प्रतिज्ञा की अपेक्षा दैवी सम्बन्ध को अधिक महत्व देता है। जीवन को समर वह तभी तक मानता है "जब तक वह कायदे से, सतर्क, सरस और अविराम होता रहे।"[१४] उसका स्पष्ट विचार है कि – "विक्षिप्त का जीवन जीवन नहीं, और न उसका समर समर।"[१५] इस तरह अपने अकाट्य तर्कों से कनक के प्रति राजकुमार का सारा भ्रम दूर कर वह उनके प्रणय को परिणय की आदर्श परिणति तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। यही नहीं बल्कि कनक के लिए अपनी माता के मन के सन्देह, घृणा एवं नफरत के भावों को वह अपने निर्भीक उत्तर से दूर करता है। राजनीति को ही अपनी जीवनसंगिनी मानने वाला चन्दन स्वयं राजकुमार बनकर जिस तरह सजा काटने को तैयार हो जाता है उससे वह आदर्श, कर्तव्य परायण एवं त्यागशील मित्र के रूप में उभरता है। उसका निश्छल स्वभाव, निष्कलुष चरित्र एवं व्यवहार कौशल उसे एक जीवन्त पात्र के रूप में उभारता है।

कुंवर प्रताप सिंह सामन्ती सभ्यता के हासोन्मुख प्रतीक के रूप में उपन्यास में चित्रित किए गए हैं। विलासिता के मद में आपादमस्तक डूबे हुए एक चरित्रहीन ऐयाश हैं जो रियासती पूंजी पर गुलछर्रे उड़ाते हैं। सुरा-सुन्दरी में ही डूबे रहने वाले कुंवर प्रतापसिंह की चरित्रहीनता ने उनका शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही रूपों में पतन किया है। एक खल पात्र के रूप में उनका अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ अंकन किया गया है।

हैमिल्टन साहब पुलिस विभाग के अत्यन्त निकृष्ट, उच्छृखल अंग्रेज, अफसर हैं जो पूर्णतः दुराचार में लिप्त हैं। कनक का प्रेम पाने के लिए वे निर्लज्जता एवं बेहयायी की चरम सीमा लांघ देते हैं। उनके माध्यम से भ्रष्ट अंग्रेज अफसरों की धूर्तता एवं लम्पटता का सजीव

चित्रण किया गया है। तारा 'अप्सरा' उपन्यास का एक महत्वपूर्ण चरित्र है। कनक के कलुषित जीवन को प्रकाशवान एवं दिव्य बनाने में तारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उसमें स्नेह, सहानुभूति, दूरदर्शिता, करुणा एवं आध्यात्मिक तेजस्विता जैसे महान गुण हैं जो समय-समय पर प्रकट होते हैं।

राजकुमार के कनक से प्रेम का वृत्तान्त जान लेने पर वह राजकुमार को ही कसूरवार ठहराती है। तारा की स्नेहशीलता, आत्मीयता एवं सेवा भाव के कारण ही कनक कहती है – ''दीदी, आप मुझे मिलें, तो सब कुछ छोड़ सकती हूँ।'' तारा का चरित्र इस अर्थ में अनुकरणीय है कि वह बुरे पात्रों को भी कुमार्ग छोड़ देने के लिए प्रेरित करता है। तारा मानती है कि ''स्त्री क्षमा और सहनशीलता के कारण पुरुष से बड़ी है। इसके यही गुण पुरुष की जलन को शीतल करते हैं।'' अपनी व्यवहार कुशलता एवं चातुर्य द्वारा वह कनक को अपने घर की महिलाओं के व्यंग्य वाणों से बचाती है। कनक के प्रति उसके व्यवहार में जो सहजता, आत्मीयता एवं सहानुभूति है उसी के प्रभाव स्वरूप वह कनक को नैतिकता के पवित्र-मार्ग पर ले आती है। तारा के अविचल शील्त्व एवं पतिनिष्ठा के आगे सर्वेश्वरी जैसी वेश्या भी नतमस्तक हो जाती है एवं रूप-बाजार को हमेशा के लिए त्याग कर अपना शेष जीवन काशी में बिताने का निश्चय करती है।

तारा अपने दिव्य गुणों की अविस्मरणीय छाप पाठकों के हृदय पर छोड़ती है।

अलका

'अलका' उपन्यास की नायिका शोभा का चरित्र नारी के नवजागरण का प्रतीक है। गाँव में रहने वाली शोभा अपनी माता की मृत्यु के बाद अनाथ हो जाती है। जिलेदार महादेव प्रसाद उसे अपने यहाँ आश्रय देने के बहाने अवध के ताल्लुकेदार मुरलीधर बाबू के हरम में पहुँचा देने का षड्यन्त्र रचता है। किन्तु अपनी [illegible] द्वारा इस साजिश का आभास पाकर शोभा वहाँ से भाग खड़ी होती है। आसमान से उतरी [illegible] की किरण के समान खूबसूरत शोभा के जीवन का यह आरम्भिक अंश परम्परागत नारी के समान ही है जो अपने ऊपर उठती पुरुष की निगाहों से बेखबर है।

शोभा के चरित्र में परिवर्तन तब आरम्भ होता है जब वह पण्डित स्नेह शंकर जी के सामीप्य में आती है। ''मुख पर दिव्य सौन्दर्य की स्वर्णिम छटा जैसे साक्षात् गायत्री युग-शाप को सहन न कर विश्व-ब्रह्म की गोद पर मूर्च्छित पड़ी हुई हो।'' शोभा का यह अनुपम रूप पण्डित स्नेहशंकर जी को द्रवित कर देता है। सघन केश राशि देखकर वे उसका नामकरण करते हैं 'अलका'। अपनी ज्ञान की शान्ति में अपने दुःखों की ज्वाला बुझा देने को तत्पर अलका स्नेहशंकर जी की प्रेरणा से उच्च शिक्षा प्राप्त कर भारत की दुःखी असहाय नारियों की सेवा का पथ अपनाती है।

लखनऊ आने के बाद अलका में जो शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होते हैं उनका छायावादी शैली में अत्यन्त सूक्ष्म संकेत उपन्यासकार ने दिया है – ''इतना जादू, जैसे जागरण के बाद स्वप्न-स्मृति सदा पलकों पर – विस्मृति की सलिल राशि से उठी हुई भूली परी एकाएक रूप में निखरकर सामने खड़ी हो गयी हो प्रातः रश्मि-सी पृथ्वी की पलकें ज्योति, स्नान करती हुई,

मनुष्यों के परिचय को सूक्ष्मतम किरण-तन्तुओं से गूंथती हुई, जग के जीवों को एक ही ज्योतिर्मय हार चार। किंशुक के देह की डाल जैसे पुष्पांशुक से ढक गयी है।''

अलका के दृढ़ विचार एवं पाण्डित्य के कारण ही डिप्टी कमिश्नर उसे अपनी पुत्री बनाना चाहते हैं। अलका प्रभाकर की वीरता, सच्चाई एवं निस्वार्थ सेवा भावना से प्रभावित हो उसकी ओर आकर्षित होती है किन्तु उसमें भावुकता नहीं है। अलका के मन का सेवा भाव प्रबल है अतः प्रभाकर के अनुरोध पर वह कुलियों की स्त्रियों की नैश-पाठशाला में पढ़ाना स्वीकार करती है। अलका के चरित्र में एक और गुण जो दिखाई देता है वह यह कि वह किसी भी रूप में अबला नहीं है। जिस तरह से वह मुरलीधर के हाथों अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए उस पर गोली चला देती है उससे यह आत्म रक्षा में समर्थ एक निर्भीक साहसी आधुनिक युवती के रूप में हमारे सामने उभरती है। उसके चरित्र का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। परिस्थितियों के परिवर्तन से उसका चरित्र भी परिवर्तमान रहता है। वह भारतीय नारी का नेतृत्व कर आदर्श नारी का प्रतीक बनती है। इस तरह देश समाज के उत्थान के लिए अपने आप को सर्वथा समर्पित करने वाली अलका सहज ही पाठकों की श्रद्धा का पात्र बन जाती है।

विजय

'अलका' उपन्यास का नायक विजय विद्वान, विवेकशील एवं दृढ़ संकल्प वाला नवयुवक है। बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपनी आजीविका चलाने वाला विजय देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। तमाम भारतवर्ष को अपना मकान मानने वाला विजय अपने मित्र अजीत की प्रेरणा से गाँवों में किसानों के संगठन का कार्य करता है। जिस तरह वह किसानों को निर्भीकता का पाठ पढ़ाता है उससे स्वयं उसके चरित्र की दृढ़ता प्रमाणित होती है। अपनी ओजमयी वाणी से वह किसानों के अन्दर पीढ़ियों से व्याप्त कायरता को दूर करने का सन्देश देता है – ''डर पीछा नहीं छोड़ सकता, यही मुद्दतों से भरी हुई तुम्हारे अन्दर स्वभाव की कमजोरी है। ....जब देखो, किसी काम के लिए दिल नहीं तैयार, तब जरूर-जरूर उसे करने से इनकार कर दो। अरे मौत तो चारपाई पर होगी, फिर खुद क्यों नहीं उसका सामना करना सीखते?'' अपने इन्हीं क्रांतिकारी विचारों के कारण वह युवा वर्ग का नेतृत्व करता है। किसान लड़कों को शिक्षित करना ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य है। किन्तु जमींदारों के षड्यन्त्र से वे ही किसान जो कभी उसके परम भक्त थे उसके विरुद्ध गवाही देते हैं। उनकी दीनता एवं विवशता देखकर विजय के मन में उनके प्रति ग्लानि एवं करुणा का भाव ही उत्पन्न होता है। जेल से छूटने के बाद वह लखनऊ को अपना कार्य-क्षेत्र बनाता है और प्रभाकर नाम से कुलियों को शिक्षित बनाने का कार्य आरम्भ करता है। यहीं अलका से उसकी मुलाकात होती है। प्रभाकर की सादगी एवं उसकी क्रीड़ा-निपुणता पर अलका मोहित हो जाती है। अपने सेवा कार्य के कारण साधारण वर्ग के लोगों में प्रभाकर देवता की तरह पूजित होता है। प्रभाकर अपने विचारों पर चट्टान की तरह अडिग रहने वाला है इसलिए डिप्टी-कमिश्नर द्वारा अच्छी नौकरी दिला देने का आश्वासन देने पर वह प्रलोभन ग्रस्त नहीं होता ''नौकरी से जो रुपये मिलते हैं, वे अंक में जितने ज्यादा होते हैं, देश के आर्थिक विचार से वे दशमिक बिन्दु

से उतने ही इधर होते हैं।"[५८] उसके अद्‌भुत आर्थिक विचारों से डिप्टी कमिश्नर भी प्रभावित होते हैं। "जब हम अपने सामने और अपने ही लिए भोग-सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तब स्वार्थ की ही वह बढ़ी हुई मात्रा है। देश के लिए ऐसा विचार समीचीन कदापि नहीं। भोग कोई भी करे हमें कार्य करना चाहिए।"[५९] जैसे विचार प्रकट करने वाला प्रभाकर निष्काम कर्म में यकीन करने वाला वीतरागी युवा के रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित होता है। उसकी सच्चाई, वीरता एवं त्यागशीलता के कारण ही अलका जैसी विदुषी उसकी ओर आकृष्ट होती है। प्रभाकर उसे भी देश-सेवा के लिए प्रेरित करता है – "आप जैसी सहृदय विदुषियों को भारत की अशिक्षा से दुकरायी हुई, समाज की उपेक्षित स्त्रियाँ करुण-कण्ठ से प्रतिक्षण अशब्द आमन्त्रण दे रही हैं।"[६०] नारी जाति के लिए उसके मन में सम्मान है एवं भारतीय नारी की दुर्दशा से उसका मन व्यथित होता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण विजय युवा शक्ति के आदर्श प्रतीक के रूप में पाठकों के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ता है।

स्नेहशंकर

तत्त्वज्ञ, दार्शनिक, पुरातत्त्ववेत्ता स्नेहशंकर जी निराला की आदर्श जमींदार की कल्पना के प्रतीक हैं। विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त स्नेहशंकर जी के चरित्र में जमींदारी ऐश्वर्य का कहीं नामोनिशान नहीं। शरीर एवं मन से संत स्वभाव वाले स्नेहशंकर जी जिस तरह जमींदारी का प्रबन्ध किसानों की कमेटी के सुपुर्द कर स्वयं रियाया की तरह रहते हैं उससे वे एक आदर्श, निरभिमानी एवं स्नेहशील जमींदार के रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं। देश की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति पर उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट एवं सुलझे हुए हैं। उन्हीं के संरक्षण में गाँव की सीधी-सादी शोभा विदुषी अलका के रूप में परिणत होती है।

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में जहाँ जमींदार अन्याय और शोषण के प्रतीक बन कर रह गए थे; स्नेहशंकर जी जैसे आदर्श जमींदार के चरित्र की अवतारणा निराला द्वारा कल्पित आदर्श जमींदार की छवि के अनुरूप ही है।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त 'अलका' में मुरलीधर, अजित, वीणा, सावित्री, ज्ञानप्रकाश जैसे कुछ अन्य चरित्र भी चित्रित किए गए हैं।

मुरलीधर सामन्ती ऐश्वर्य, विलासिता एवं शोषण के पोषक जमींदार के रूप में चित्रित किए गए हैं। ये जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र हैं एवं वर्गगत तमाम विशेषताएँ उनमें मौजूद हैं।

अजित विजय का मित्र होने के साथ-साथ उस युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो कर्मठ, उत्साही, देशभक्त होने के साथ-साथ अंग्रेजी शासन से घृणा करता है। अपने मित्र की विधवा बहन से विवाह कर वह सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ बगावत तो करता ही है साथ ही युवा-वर्ग को भी रूढ़ियों के बहिष्कार के लिए प्रेरित करता है। अपने बुद्धि कौशल और चातुर्य से मित्र की पत्नी का पता लगाकर उनके स्नेहमय दाम्पत्य की प्रतिष्ठा करता है एवं सच्ची मित्रता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। अजित हर तरह से एक आदर्श युवा के रूप में चित्रित किया गया है।

वीणा अजित की परिणीता एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी सहायिका है। उसके माध्यम से विधवा नारी की दीन-हीन अवस्था का करुण चित्रण उपन्यासकार ने किया है। अजित से विवाह हो जाने के पश्चात अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक मुरलीधर को बेवकूफ बनाकर वह पति की अभीष्ट सिद्धि में सहायिका बनती है।

सावित्री स्नेहशंकर जी की पुत्रवधू है। अपने ससुर के विचारों एवं कार्यों की पूरी-पूरी छाप उस पर पड़ी है। अलका को अपने स्नेह एवं ममता की शीतल छाया में निर्भय बना वह पाठकों की श्रद्धा एवं विश्वास का पात्र बनती है। गाँवों में बालिकाओं को शिक्षित बनाने के गुरुतर दायित्व का निर्वाह वह निष्ठापूर्वक करती है। ''सुहाग प्राणों का विषय है, किसी चिह्न का धारण उसे धवल नहीं करता। दागे हुए साँड या कम्पनी-विशेष के घोड़ों की तरह किसी देवता या पुरुष के नाम चढ़ जाने की मुहर लगाकर फिरना स्त्रियों के लिए सम्मानजनक कदापि नहीं''[६] – जैसे विचार रखने वाली सावित्री रूढ़िगत मान्यताओं में कदापि विश्वास नहीं रखती तथापि उसकी पति-भक्ति अनुपम है।

ज्ञानप्रकाश जी उस नागरिक सभ्यता के प्रतिनिधि चरित्र हैं जिन्होंने शहरी जीवन की चमक-दमक के बीच भी अपने संस्कारों को विस्मृत नहीं किया है। वे उस जौहरी की भाँति हैं जिसे असली हीरे की परख है। इसीलिए प्रभाकर की योग्यता को वे तुरन्त पहचान लेते हैं किन्तु वे वक्त की नब्ज देखकर चलने वाले व्यक्तियों में से हैं। आर्य समाजी ज्ञान प्रकाश जी की वैदिक साहित्य पर पूरी आस्था है। नि:संतान ज्ञान-प्रकाश जी अलका को अपनी पुत्री बनाकर अपने वात्सल्य प्रेम का परिचय देते हैं।

निरुपमा

'निरुपमा' उपन्यास की नायिका निरुपमा अपने नाम के अनुरूप ही अनुपमेय सौन्दर्य की स्वामिनी, लज्जाशील, भावुक एवं संगीत प्रिय है। जमींदार होते हुए भी उसे अपने आभिजात्य पर कोई गर्व नहीं है बल्कि वह सुसंस्कृत एवं सुरुचि-सम्पन्न है। उसके ज्ञान एवं सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही लखनऊ विश्वविद्यालय के राजनीति के प्रोफेसर डाक्टर भड़कंकड़ एक पत्र के माध्यम से उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं लेकिन पारिवारिक आदर्श को वरीयता देने वाली एवं अंग्रेजी पढ़ने पर भी हिन्दू संस्कारों में ढली निरुपमा बड़ी शालीनता से वह पत्र मामा के हवाले कर देती है।

विशाल सम्पत्ति की स्वामिनी होते हुए भी वह जिस तरह जमींदारी का सारा कार्य-भार अपने संरक्षक मामा पर सौंप कर निश्चिन्त हो जाती है उससे उसके चरित्र की निष्कपटता प्रमाणित होती है। निरुपमा में गुण-ग्राहकता का आधिक्य है इसीलिए वह कुमार की ओर आकृष्ट होती है किन्तु उसका प्रेम पूर्णत: गम्भीर एवं मर्यादित है। विवाह के सम्बन्ध में भी वह घरवालों की मर्जी को ही प्राथमिकता देती है किन्तु अपनी अभिन्न सखी कमल के द्वारा जब उसे मामा की नीयत का पता चलता है तो वह सतर्क हो जाती है। उस समय उसके चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से रेखांकित किया है – ''कुमार अविवाहित है, मैं कुमार को चाहती हूँ, भले वह

बंगाली नहीं, पर मनुष्य है, कुछ हो या न हो, मैं चाहती हूँ, पहली बात यह है।''[५०] परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से उसके चरित्र में भी परिवर्तन उपन्यासकार ने दिखाया है। अपने विरुद्ध षड्यन्त्र का आभास होते ही उसकी समस्त बैचारिकता उद्‌बुद्ध हो जाती है एवं मामा द्वारा तय किए गए यामिनीहरण बाबू से अपने विवाह के प्रति भी उसके मन में विद्रोह जाग्रत होता है। ''विवाह मन का है मेरा मन जिसे नहीं चाहता, मैं क्यों उससे विवाह करूँ?''[५१] यहाँ वह दृढ़ संकल्प वाली नारी के रूप में उभरी है।

जमींदार होते हुए भी निरुपमा के मन में कृषकों के प्रति दया एवं सहानुभूति का भाव है। उसकी भावुकता एवं सहृदयता तब प्रकट होती है जब ब्रह्मभोज के अवसर पर कुमार के छोटे भाई रामचन्द्र का अपमान देखकर वह द्रवित हो उठती है एवं उसके रेहन रखे मकान एवं जमीन उसे वापस लौटा देती है। यहाँ उसके चरित्र में अपने वर्ग से विपरीत कुछ विशिष्ट गुण लक्षित होते हैं। ''जो समाज शान्ति नहीं दे सकता, उसका त्याग करना ही उचित है''[५२] जैसे क्रांतिकारी विचारों को मानने वाली निरुपमा समाज की गर्हित एवं रूढ़िवादी विचारधारा के खिलाफ बगावत करती है। उसका चरित्र पूर्णतः मनोवैज्ञानिक धरातल पर निर्मित है जो उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया की ओर उन्मुख है। उपन्यास के अन्त में समस्त पारिवारिक दबावों की उपेक्षा कर अपने आदर्श प्रेम को परिणय की उच्चता देने के लिए वह निर्भीकतापूर्वक स्वयं आगे बढ़ती है और आदर्श व्यक्तित्व के धनी कुमार का वरण करती है। यहाँ वह नारी-स्वातन्त्र्य की पक्षधरता करती दिखाई देती है।

इस तरह निरुपमा के चरित्र में लेखक ने दृढ़ता, उदारता, त्याग, स्नेह, सहानुभूति आदि उत्तम गुणों का समन्वय दिखाया है। उसके चरित्र में बंगाल की संस्कृति की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

कुमार

निरुपमा उपन्यास में जो चरित्र पाठकों का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट करता है वह है उपन्यास के नायक कृष्ण कुमार का चरित्र। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' को जीवन का मूलमंत्र समझने वाला, आत्म-सम्मान से पूर्ण कुमार लन्दन की डी.लिट् उपाधि लेकर लौटा हुआ योरप की मुख्य भाषाओं का ज्ञाता है किन्तु उसकी योग्यता की कहीं कद्र नहीं, उसकी विद्वता का अस्तित्व किसी को मालूम नहीं। इसीलिए कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्थान रिक्त रहने पर भी उसे नौकरी नहीं मिलती। अपनी योग्यता की अस्वीकृति से उदास कुमार लखनऊ विश्वविद्यालय में भी नौकरी पाने में असफल रहता है कारण ''किसी चान्सलर, वाइस चान्सलर, प्रिन्सिपल, प्रोफेसर या कलक्टर से उसकी रिश्तेदारी की गिरह नहीं लगी।''[५३] क्रिश्चियन कॉलेज में भी वर्णाश्रम-धर्म की समस्या देखकर कुमार हमेशा के लिए ऐसे स्थलों का परित्याग कर देता है। सब जगहों से हताशा मिलने पर एवं समाज की ठोकरों का सामना करने पर भी उसकी दृढ़ता लुप्त नहीं होती बल्कि ''उन्हें दूसरों की कमजोरी समझकर वह समर्थ होकर संसार के मुकाबले के लिए''[५४] तत्पर हो जाता है। सूट-बूट धारी कुमार जूते पालिश का पेशा अख्तियार करता है। समाज की

आलोचनाओं की परवाह न करने वाले कुमार का यह कार्य तथाकथित सभ्य, सुसंस्कृत एवं शिक्षित कहे जाने वाले समाज के मुँह पर एक करारा तमाचा है जो ऐसे आत्म-विश्वासी, दृढ़-निश्चयी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति की योग्यता की कद्र करना नहीं जानता। अपने कार्य एवं व्यवहार से कुमार सामान्य वर्ग के लोगों का प्यार, सहानुभूति एवं विश्वास हासिल करता है। वह एक आदर्श चरित्र के रूप में हमारे सम्मुख उभरता है। इस तरह समाज के क्षुद्रतर संस्कारों के विरुद्ध विद्रोह का पथ अपनाने के कारण उसे न सिर्फ होटल से निष्कासित किया जाता है बल्कि गाँव में उसकी माता एवं भाई को भी सामाजिक उपेक्षा का शिकार बनना पड़ता है। यहाँ तक कि उन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया जाता है किन्तु कुमार की क्रियाशीलता इन सबसे परास्त होना नहीं जानती। उसकी वैचारिक उच्चता एवं उदारता इन पंक्तियों में स्पष्ट देखी जा सकती है – "विलायत से लौटकर, भारत के वृहत्तर समाज पर जो कल्पनाएँ उसने की थीं - जाति निर्माण का जो नक्शा खींचा था - इस पद दलित धारा पर उसकी सहानुभूति की धारा जिस वेग से बहती थी – जिस सहृदयता से वह शिक्षित-मात्र को देखता था, वे सब, जीविकार्जन के क्षेत्र पर उसके पदार्पण करते ही संकुचित होकर सूखकर अपने ही सूक्ष्म-तत्व में विलीन हो गयीं। पर उसने किसी की समझ पर नासमझी नहीं की। चुपचाप एक पेशा अख्तियार कर लिया, जहाँ किसी को धोखा खाने की बात न थी।"[७]

कुमार की मातृ-भक्ति, विनयशीलता, वैचारिक दृढ़ता एवं नवीन सामाजिक मूल्यों के प्रति आग्रहशीलता के कारण ही प्रेम के क्षेत्र में वह यामिनी बाबू को मात देने में सफल रहता है। उसके नैतिक एवं चारित्रिक बल के कारण ही गाँव वालों की विरोध-भावना भी दब जाती है और वह अपनी जमींदारिन निरुपमा का दिल जीतने में सफल रहता है। कुमार के चरित्र के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों एवं जाति-प्रथा के निम्न संस्कारों के विरुद्ध उपन्यासकार ने विद्रोह का स्वर बुलन्द किया है। उसके क्रांतिकारी कार्यों एवं विचारों में लेखक के अपने चरित्र की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

उपन्यास के अन्य पात्रों में यामिनीहरण, कुमार की माता सावित्री देवी, निरुपमा की छोटी बहन नीलिमा एवं उसकी अभिन्न सखी कमला तथा निरुपमा के संरक्षक एवं मामा योगेश बाबू हैं।

यामिनीहरण बंग-संस्कृति की तथाकथित संकीर्ण मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनकी दृष्टि में "अभी बंगालियों का मुकाबला हिन्दुस्तानी नहीं कर सकते।"[८] यही नहीं बल्कि उनका विचार है कि "एक हिन्दुस्तानी जितना पढ़कर समझता है, एक बंगाली उससे ज्यादा सिर्फ देखकर।"[९] लंदन के डी.लिट् कुमार के मुकाबले में पी-एच.डी. यामिनीहरण मुखर्जी की लखनऊ विश्वविद्यालय में नियुक्ति भी इसलिए हुई थी क्योंकि "इनकी पूँछ में बालों का मोटा गुच्छा था।"[१०] निरुपमा की सम्पत्ति एवं सौन्दर्य दोनों पर ही यामिनीहरण की निगाह है इसलिए वे येन-केन-प्रकारेण उससे विवाह करने को उद्यत हैं। यामिनीहरण में छल-प्रपंच भी कूट-कूट कर भरा हुआ है। मिस दुबे को विवाह का आश्वासन देकर उसका सतीत्व हरण करने एवं उसके गर्भवती

हो जाने पर आर्थिक कार्यों के लिए उसे छोड़कर निरुपमा से विवाह रचाने को तत्पर यामिनीहरण अर्थलोलुप होने के साथ-साथ व्यभिचारी भी है। वे उस शिक्षित युवा वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो पथ-भ्रष्ट एवं दिशाहारा है। उनके चरित्र का अत्यन्त यथार्थवादी अंकन हुआ है।

कुमार की माता सावित्री देवी आदर्श भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति हैं। उनमें विवेक, सहिष्णुता, अडिग आत्म-विश्वास एवं करुणा का अपूर्व समन्वय है। पुत्र के विलायत जाने पर एवं वहाँ से लौटकर कोई नौकरी न मिलने पर चमार का पेशा अपनाने पर जिस तरह से गाँव वाले उन्हें अपमानित एवं प्रताड़ित करते हैं उससे वे तनिक भी विचलित नहीं होतीं बल्कि समस्त लांछन को नतमस्तक होकर धारण करती हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी निराश न होकर अपने कर्तव्य के प्रति निरन्तर जागरूक रहकर वे सहज ही पाठकों का ध्यानाकर्षित करती हैं। दुःखों का पहाड़ टूटने पर भी जिस तरह धैर्यपूर्वक वे उसे सहती हैं एवं अपने पुत्रों को दुःखों की आंच से बचाने की कोशिश करती हैं उससे वे एक स्नेहशीला आदर्श माता के रूप में हमारे सम्मुख आती हैं। कुमार एवं निरुपमा के प्रेम को अपनी अनुभवी दृष्टि से वे न सिर्फ पहचान लेती हैं बल्कि उनके बीच की सारी भ्रान्ति मिटाकर विवाह का भी पथ-प्रशस्त कर देती हैं। अपनी संतान को पूर्ण स्वतंत्रता देकर भी उसे नैतिकता एवं मर्यादा के जो संस्कार उन्होंने दिए हैं उससे वे नवयुग एवं राष्ट्र निर्माण के कार्य में अग्रणी भूमिका निभाती हैं। निरुपमा की छोटी बहन नीलिमा बाल-सुलभ चापल्य एवं नैसर्गिक आकर्षण की साक्षात् प्रतिमा है। निरुपमा एवं कुमार के प्रेम को पल्लवित, पुष्पित करने एवं उसे सफलता के सोपान तक पहुँचाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अपने सहज, सरल एवं निश्छल व्यवहार से वह न सिर्फ कुमार की माता का आदर व स्नेह पाती है बल्कि गाँववालों को भी मुग्ध कर लेती है। उसकी जागरूकता एवं क्रियाशीलता को देखकर कमल को भी कहना पड़ता है कि "उस मकान में अगर कोई समझदार है तो सिर्फ नीली।"[८] उसके चरित्र में बाल-मनोविज्ञान पूर्ण रूप से प्रतिफलित दिखाई देता है।

कमल निरुपमा की सखी है। वह नवशिक्षिता एवं ब्राह्म समाज की युगान्तरकारी शक्ति के रूप में पाठकों के सम्मुख आती है। उसमें नैतिकता, उदारता, आदर्शवादिता, हास्य एवं माधुर्य की भावना का अपूर्व समन्वय हुआ है। वह वास्तव में निरुपमा की हिताकांक्षिणी है। इसीलिए निरुपमा को उसके मामा के सम्पत्ति हड़पने के कुचक्रों से सावधान करती है। यही नहीं बल्कि "विवाह मजाक नहीं, एक जिन्दगी भर का उत्तरदायित्व है"[९] कहकर निरुपमा को मामा द्वारा तय किए गए यामिनी बाबू से विवाह के फैसले पर एक बार पुनः विचार करने के लिए मजबूर करती है। कमल विवेकशील एवं विदुषी का सम्मान करने वाली नवयुवती है। वह कुमार से प्रेम करती है किन्तु निरुपमा के कुमार के प्रति आकर्षण को लक्ष्य कर तब अपने हृदय की विशालता का परिचय देती है जब निरुपमा जानना चाहती है कि क्या वह कुमार से प्रेम करती है। कमल का उत्तर उसकी उदारता एवं त्यागशीलता का परिचायक है – "प्यार करती हूँ, इसका एक ही अर्थ मेरे पास है, उससे विवाह का कोई ताल्लुक है, यह मैं नहीं जानती; दूसरे अलबत्ते यही अर्थसंयोग लेते हैं।"[१०] वह अपने बुद्धि चातुर्य के सहारे न सिर्फ निरुपमा एवं कुमार के विवाह का मार्ग प्रशस्त

करती है बल्कि यामिनीहरण को भी उसकी करतूतों का उचित दण्ड देती है एवं मिस दुबे से छलपूर्वक उसका विवाह कराकर मिस दुबे को उसका अधिकार वापस दिलाती है। इस तरह कमल सामाजिक शक्तियों के उन्नायक के रूप में उपन्यास में उभरती है।

योगेश बाबू निरुपमा के मामा एवं उसके संरक्षक हैं किन्तु निरुपमा की सम्पत्ति पर उनकी गिद्ध-दृष्टि है। उनमें छल-छद्म तथा स्वार्थ कूट-कूट कर भरा हुआ है। वे परम्परावादी होने के साथ-साथ प्रान्तीयता के उन्माद से भी ग्रस्त हैं। बाबू संस्कृति के प्रतीक योगेश बाबू हर प्रकार से सामाजिक प्रगति का विरोध करने वालों में से हैं। वे एक धूर्त जमींदार हैं जिनमें स्वार्थपरता एवं निर्लज्जता अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई है। तत्कालीन नगरीय सभ्यता का समस्त विष उनके चरित्र में देखा जा सकता है।

प्रभावती

निराला के ऐतिहासिक-रोमांटिक उपन्यास की नायिका प्रभावती सौन्दर्य, शौर्य, साहस एवं बुद्धिमत्ता की साक्षात् प्रतिमा है। उपन्यास के आरम्भ में ही युवक वेश में सूअर का शिकार कर उसकी कनपटी से भाला निकालती हुई प्रभावती अपनी पुरुषोचित वीरता से पाठकों को मंत्रमुग्ध कर लेती है। शूरता के साथ-साथ सौन्दर्य का उसमें अनूठा संगम है। उसके व्यक्तित्व के अनुरूप ही उसके सौन्दर्य का सूक्ष्म किन्तु भव्य चित्रण किया गया है– "पृथ्वी के हरे तरंगित वृक्षों की सब्ज जल-राशि के भीतर वह कमला-सी खुली स्वरूपा कुमारी, अकृत अज्ञात भी कैसे मौन इंगित से, प्रतिक्षण आमन्त्रण दे रही है। नयनों की मौन महिमा में भी असंख्य गहरे, अर्थ छिपे हुए हैं। बिना शब्द के, सौन्दर्य की कैसी कर्मवेधिनी व्याख्या है। कोमल पद, पीनोरु-दीर्घ मध्य को धारण किये, क्षीण कटि, समुन्नत विशाल वक्ष-वर्ग को भेदकर पुष्प मांसलता स्पष्ट होती हुई, लम्बित भुजाएँ, कपोत ग्रीवा, परमल रहस्यमयी बड़ी-बड़ी तिर्यक आँखें, चितवन बहुत दूर आकाश की ज्योत्स्ना की तरह किसी के तृषित हृदय चकोरे के लिए उतर रही है।"[४] हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रभावती का चरित्र छायावादी नायिका की आदर्श-कल्पना का बेजोड़ चित्र है।

प्रभावती में जहाँ पुरुषोचित गुणों का प्राधान्य है वहीं नारी सुलभ लज्जा, समर्पण, सेवा-भाव एवं त्यागशीलता जैसे दिव्य गुण भी उसमें दृष्टिगत होते हैं। प्रेम के क्षेत्र में भी वह अपने साहस एवं अपूर्व निष्ठा का परिचय देते हुए राजकुमार देव से गान्धर्व-विवाह रचाती है। किन्तु साथ ही वह आदर्श पुत्री भी है और जानती है कि पिता उसके इस विवाह को विवाह करार नहीं देंगे। इसलिए पिता के प्रति पुत्री की दृष्टि अन्त तक बनाए रखने के लिए वह अनुकूल समय की प्रतीक्षा करती है।

प्रभावती एक सच्ची देश-भक्त नारी है। ग्रामीणों को शिक्षित बनाकर, वह उनमें व्याप्त वर्ण व्यवस्था के कुसंस्कारों को दूर करने के लिए कटिबद्ध है। घोड़े की पीठ को ही अपना वासस्थल बनाकर वन-वन घूमने वाली प्रभावती की समस्त चिन्ताधारा लोक-हित के लिए ही है– "किस उपाय से ग्रामीणों में शिक्षा का प्रचार होगा, सर्वसाधारण के हित की किस तरह की

धारा प्रखरतर होकर उन्हें शीघ्र बहुत ज्ञान के समुद्र से ले चलकर मिलायेगी.... हर वर्ण की अलग-अलग शिक्षा हर वर्ण के मनुष्य को पूर्णता तक पहुँचायेगी, भिन्न वर्ण के प्रति इस प्रकार घृणा का भाव न रह जायगा, सम्बन्ध होकर देश सच्ची शक्ति से प्रबुद्ध होगा, यह सफलता साधारण आनन्द की दात्री नहीं। इसमें प्रिय का जो रूप है, वही यथार्थ मुक्ति के आनन्द का कारण हो सकता है।"[८] इस प्रकार की विचार धारा रखने वाली प्रभावती आधुनिक युग की राष्ट्रोद्धार करने वाली महाशक्ति के रूप में उभरती है। अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करते हुए वह लूट के चतुर्थांश धन को गांवों के दरिद्रों में बंटवा देती है। इससे गरीबों के प्रति उसकी सहानुभूति एवं सेवा-भाव का परिचय मिलता है।

प्रभावती की संगठन दक्षता एवं नेतृत्व की कुशल क्षमता का परिचय तब मिलता है जब विद्या से आर्थिक सहायता पाने पर वह लालगढ़ में सैनिक-संगठन करती है। उसकी इस क्षत्रियोचित वीरता से प्रभावित होकर ही संयोगिता पृथ्वीराज से अपने परिणय में उससे सहयोग की याचना करती है। प्रभावती संयोगिता को दिए गए अपने वचन की रक्षा अपने प्राणों का बलिदान करके करती है। मृत्यु की गोद में जाने को तत्पर प्रभावती अपनी हृदयगत विशालता एवं उदारता का परिचय देते हुए कुमारदेव को रत्नावली से विवाह करने का अनुरोध करती है।

इस तरह प्रभावती का सम्पूर्ण चरित्र अपने दिव्य-गुणों के कारण अविस्मरणीय बन गया है। वह निराला की आदर्श-नारी कल्पना का मूर्त रूप है।

यमुना

यमुना 'प्रभावती' उपन्यास का एक प्रमुख नारी चरित्र है। उपन्यास का सम्पूर्ण कथा-सूत्र उसी के इंगित पर परिचालित दिखाई पड़ता है। वह अपने कुल के मिथ्याभिमान का परित्याग कर साहसी, कर्मठ वीरसिंह की सहकर्मिणी बन कर देश एवं जाति के उत्थान-कार्य में संलग्न दिखाई पड़ती है। उपन्यास के आरम्भ में यद्यपि वह प्रभावती की दासी के रूप में दिखाई गयी है किन्तु इस रूप में भी उसके चारित्रिक वैशिष्ट्य की झलक दीख जाती है – "यमुना प्रभा की अन्तरंग सखी है। दासी होकर भी उसके पूरे मन पर अधिकार कर लिया है, इसका कारण प्यार है। उम्र में वह प्रभा से कई साल बड़ी है, पर स्नेह और सहानुभूति में बिलकुल बराबर। स्वभाव आकाश की चिड़िया का जैसा है, जिसने प्रभा के रंगों में अपने को बहा दिया है, कलरव और आनन्द जिसके अस्तित्व को पूर्ण किये हुए हैं।"[९] दासी के छद्म वेश में रहने वाली यमुना गृह-देवियों का आदर्श है। उसकी वीरता, कीर्ति एवं आदर्श का उद्घाटन करने वाली ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं – "जिस साहसी हृदय का उसने पहले परिचय दिया था, जिस नैपुण्य से वह अकेली भी विजयिनी थी, उसकी जिस वीरता की बैसवाड़े में घर-घर चर्चा थी, जिसे जीवन के सत्रहवें साल ही अलौकिक कीर्ति प्राप्त हो चुकी थी, जिसे गृह-देवियाँ अपना आदर्श मान कर पूजती थीं, यह वही यमुना है – वे सब भाव संयत हृदय में बँधे हुए हैं, जैसे उनसे भी महत्ता में यह वृहत और ऊँची है।"[१०]

प्रभावती की घनिष्ठ सखी एवं दासी होने के साथ-साथ ही वह उसकी गुरु एवं सहायिका भी है। प्रभावती एवं राजकुमार के मिलन में उसका अपूर्व योगदान है। वाक्-पटु एवं विदुषी यमुना श्मशान में राजकुमार एवं प्रभावती के गान्धर्व-विवाह के अवसर पर जिस तरह रूप-वर्णन करती है उससे उसके पाण्डित्य की झलक मिलती है – "उन्होंने श्मशान में आपको वर रूप से वरण किया है। सुन्दर, यह विश्व देवों की दृष्टि में केवल श्मशान है यदि वहाँ उनके साथ आप नहीं। उनकी दृष्टि में आप ही उन्हें लुब्ध करनेवाले सौन्दर्य की एक मात्र सृष्टि हैं। इस श्मशान में आपको शिव मानकर आपके गले में उन्होंने वरमाला डाली है। वे पृथ्वी-रूप से गुण-सुगन्ध-भूषित हो रही हैं। जल-रूप उन्होंने आपके चरण धोकर आपको अन्तः करण का समस्त रस अर्पित कर दिया है। आपको माला पहनाकर सुरोचित कर स्पर्शजन्य अपना समीर अंश दे चुकी हैं। आरती द्वारा तथा नयनों की ज्योति से आपके वर रूप को देखती और पूजती हुई अप... ताप-तत्व और अब मौन खड़ी हुई भी मन से आपके स्नेहाभिषेक में मधुर मुखर, आपको अपना आकाशतत्व भी दे चुकी हैं। परन्तु यह वह दान है, जो दोनों पक्ष से अपेक्षित है। इनके लिए हुए पंच-तत्वों के बदले आप अपने भी पंच-तत्व इन्हें दीजिए। तभी इनकी पूर्णता होगी। आपमें पंच-तत्व स्वरूपा शक्ति आकर मिली है, आप पंच-तत्वस्वरूप पुरुष को देखकर सम हुजिए। यही आपकी भूमि है, यही रस, जल, यही पंच-प्राणों को समीर यही ज्योतिर्मयी दिव्य-दृष्टि-दर्शन शोभा और यही शब्दों की आकाश रूपा।"[५]

विपरीत परिस्थितियों में यमुना का बुद्धि-कौशल एवं चातुर्य देखते ही बनता है। विभिन्न कलाओं में निपुण यमुना में हास्य प्रियता एवं अपूर्व शालीनता जैसे सद्गुण विद्यमान हैं। उसकी संकल्प-शक्ति अत्यन्त दृढ़ है। वह प्रभावती को भी देश एवं समाज सेवा के लिए प्रेरित करने वाली राष्ट्र निर्मात्री के रूप में हमारे सम्मुख आती है – "हमारी जाति, धर्म और देश की रक्षा की जो समस्या पुरुषों के सामने है, वही हमारे सामने भी है। ...हमें प्रजा की सेवा के लिए अपना सर्वस्व दे देना होगा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और स्थूल शरीर से, इस क्षात्रईर्ष्या में अमृत सींचकर प्रजा की प्रीति लेनी है – उन्हें जीवन देकर आदर्श सिखलाना है, फिर ईर्ष्यादग्ध या वीरगति प्राप्त पति की चिता में जलकर पति-व्रत्य में लीन होना, इस एक उद्देश्य के अनेक कार्य हैं। कुछ सीखकर तुम्हें जीवन में परिणत करना तो है।"[६] अपने पातिव्रत-धर्म पर अगाध निष्ठा रखने वाली यमुना राजकुमारियों द्वारा वर-विवाह प्रथा को समर्थन दिए जाने से दुःखी है। उसका स्पष्ट विचार है कि 'वीर-पूजा में भी बड़प्पन का अभिमान भर गया है। ....आज वीरत्व के कमल पर पड़ती हुई चन्द्र कला-रूपा कुमारियाँ उसे विकसित नहीं और संकुचित करती जा रही हैं, कीर्ति लोलुपता के कारण वे समझ नहीं पातीं। ....ये वरे हुए वीर को वरकर कीर्ति को वरती हैं, जो सही है।"[७]

अपने भाई बलवन्तसिंह के कुकर्मों के कारण यमुना उसका परित्याग करती है किन्तु घायल बलवन्त सिंह को देखकर उसका भ्रातृ-प्रेम उमड़ता है – "भाई, तुम सच्चे भाई न हुए। बहन को अपराधिनी समझा, पर क्षमा करना। राज-दर्प से ईश्वर तुम्हारा भला करे।"[८]

अपनी व्यवहारपटुता, नेतृत्व की अद्भुत क्षमता, क्रांतिकारी विचारों, दृढ़ संकल्प शक्ति एवं साहस तथा शौर्य जैसे अनुपम गुणों के कारण वह उपन्यासकार की आदर्श नारी परिकल्पना की सजीव सृष्टि प्रतीत होती है।

राजकुमार देव

राजकुमार देव 'प्रभावती' उपन्यास का नायक है। उसमें वीरता, शौर्य एवं साहस जैसे गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही उपन्यासकार ने उसकी वीर-वेश मूर्ति धारी छवि का मनोहारी वर्णन किया है। आखेट के लिए गए कुमार देव प्रकृति की सुरम्य माधुरी से अभिभूत हो जाते हैं – "राजकुमार देव सज्जित घोड़े पर सवार, हाथ में भाला लिये, ढाल-तलवार और तरकस-कमान बांधे अकेले पूर्व के फाटक से बाहर निकले। प्रकृति की दृष्टि में नया बसन्त फूट चुका है। वन्य वासन्ती, हरी साड़ी पहने प्रिय की अपलक प्रतीक्षा कर रही है। कोई मालिनी उसकी ललायित कबरी में फूल खोंसकर गले में हार पहना चुकी है। कुमार पूर्व की ओर घोड़ा बढ़ाते, प्रकृति की नयी सज्जा देखते हुए चले जा रहे हैं। मालूम न हुआ और घोड़ा आठ कोस भूमि पार कर लवणा के वन में आ पहुँचा। कुमार घोड़ा बढ़ाते हुए लवणा को पार कर गये। वहाँ से दूसरे राज्य की भूमि है। पर प्रकृति की शोभा देखते हुए तन्मय, नवीन यौवन स्वप्न में भूले राजकुमार को यह न मालूम हुआ कि वे शिकार के लिये आये हुए हैं।"[८] यहीं उनकी वीरता और शौर्य का परिचय मिलता है जब वे प्रभावती द्वारा मारे गए सूअर की कनपटी से भाला निकालते हैं। उनकी वाकपटुता, सौन्दर्य एवं साहस पर प्रभावती मुग्ध हो जाती है। राजकुमार यहाँ प्रभावती के सौन्दर्य पर मुग्ध प्रेमी के रूप में चित्रित किए गए हैं। राजकुल के होने पर भी कुमार विलासी नहीं है। नारी-सम्मान की भावना उनके हृदय में सर्वोपरि है। यमुना जैसी नारी के साहस एवं शौर्य के आगे वे नतमस्तक होना भी जानते हैं।

राजकुमार संस्कार शील एवं निष्ठावान युवक हैं। परिणय के समय वे जिस तरह गंगा स्नान कर वासन्ती परिधान धारण कर देश के पुण्य-श्लोक महात्माओं की शान्त महिमा में लीन हो जाते हैं उससे उनकी हृदयगत श्रद्धा एवं आस्था का भाव प्रकट होता है।

बलवन्त के साथ हुए संघर्ष में वे अपने धैर्य एवं निर्भीकता का परिचय देते हैं किन्तु उसके दुर्नीति पूर्ण प्रहार के कारण मूर्छित हो बन्दी बना लिए जाते हैं। बन्दी अवस्था में वे कायिक क्लेश के साथ-साथ मानसिक दुःख को झेलते हुए अपनी कष्ट-सहिष्णुता का आभास कराते हैं। प्रभावती के प्रति उनके प्रेम में एकनिष्ठता है। देश निर्वासन एवं प्रिय वियोग का दारुण दुःख वे एक समाधिस्थ योगी की भाँति झेलते हैं।

उपन्यास में चूँकि प्रभावती के चरित्र के विभिन्न रंगों को रेखांकित करना ही उपन्यासकार का अभीष्ट था अतः राजकुमार देव के चरित्रांकन में निराला ने कम ध्यान दिया है। कथा के अन्त में वे संयोगिता स्वयंवर के अवसर पर राजसभा में नजर आते हैं जहाँ मृत्यु के पूर्व प्रभावती उनकी चरण-धूलि लेकर उनसे 'रतन' को अपना लेने का आग्रह करती है।

वीरसिंह

वीरसिंह एक विद्रोही युवा है जो राष्ट्र-सेवा का दृढ़-संकल्प ले वन-वन भटकते हैं। विभिन्न नाम एवं वेश धारण कर वे समय-असमय लोगों की मदद करते हैं। राष्ट्र की विषम परिस्थिति के सम्बन्ध में उनकी चिन्ता, एक सजग विचारक चिन्तक एवं देशभक्त की चिन्ता है – "समय की स्थिति चिन्ताजनक है ...केवल प्राण-पण पर विश्वास है और कुछ नहीं। ....तुम जानती हो, इन विवाहों के कारण किस प्रकार विरोध बढ़ा। इस बार दोनों शक्तियों के नष्ट होने की सम्भावना है।"[८] जनता की दृष्टि से छिपे हुए रहकर भी वीरसिंह जिस तरह जन-कल्याण का कार्य करते रहते हैं उससे उनकी चरित्रगत महानता का पता चलता है। अपनी सह-धर्मिणी यमुना के साथ राष्ट्र-गौरव की रक्षा में तत्पर वीरसिंह धैर्य, सहिष्णुता, दृढ़-संकल्प, वीरता एवं कार्य-कुशलता जैसे अपने गुणों के कारण उपन्यास के पुरुष पात्रों में सर्वाधिक सक्रिय दिखायी देते हैं।

इनके अलावा उपन्यास में रत्नावली, विद्या, महाराज शिवस्वरूप, महेन्द्रपाल, महेश्वरसिंह, बलवन्त जैसे कुछ गौण पात्र भी पाए हैं जो कथा को गति देने में सहायक रहे हैं। ये सभी वर्ग चरित्र हैं एवं वर्गगत समस्त दुर्बलताएँ-सबलताएँ इनमें विद्यमान हैं।

रामराखन

'काले कारनामे' उपन्यास में चित्रित रामराखन सरावन गाँव के सबसे बड़े जमींदार हैं। जमींदारी के तमाम छल-प्रपंच और काली करतूतों से उनका चरित्र भरा पड़ा है। एक विशाल संयुक्त परिवार के गृहस्वामी रामराखन सबसे ज्यादा सरकारी माल-गुजारी देने वालों में से थे। वे मनोहर के फूफा हैं जो उनके गाँव में पहलवान रामसिंह के यहाँ पहलवानी करने जाता है। रामराखन अपने भतीजे मनोहर को जिस तरह जमींदारी के प्रपंचों के बारे में समझाते हैं उससे प्रतीत होता है कि वे अपनी रिआया को हर तरह से दबा कर रखने में यकीन रखते हैं। वे मनोहर से स्पष्ट कहते हैं – "जो जमीं तुम्हारी नहीं, उस पर पैर रखने का भी हक तुमको नहीं, अगर उसका जमींदार किसी सूरत से तुम्हारा रखवाला नहीं। ....गर्ज यह कि हमारे रिश्तेदार की हैसियत से तुम वहाँ जा सकते हो, मगर वहाँ के जमींदार के आदमी बनकर।"[९] रामराखन का मकान चापलूसी का अड्डा है। पहलवान राम सिंह को नीचा दिखाने के लिए वे यमुनाप्रसाद और माधव मिश्र के साथ मिलकर जैसा षड्यन्त्र रचते हैं उससे उनके मन का कालुष्य प्रकट होता है। इसी प्रसंग में पुलिस तथा थानेदार की चापलूसी, झूठ, मक्कारी जैसे तमाम दुर्गुण उनके चरित्र में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। अपना काम साधने के लिए रिश्वतखोरी को बढ़ावा देने वाले, अहंकार के मद में डूबे रामराखन के चरित्र में जमींदार वर्ग के तमाम अवगुण विद्यमान हैं।

मनोहर

'काले कारनामे' उपन्यास का नायक मनोहर स्वस्थ एवं सुगठित शरीर वाला, कुश्ती के सारे दाँव-पेचों का जानकार आचार्य कक्षा के दूसरे साल का विद्यार्थी है। उसका चरित्र एक आदर्श चरित्र है जो निराला के अपने व्यक्तित्व का ही मुखर रूप है। सीधे स्वभाव का रख-उठान

युवक मनोहर जमींदारों के सारे छल-प्रपंचों से अनभिज्ञ है। इसलिए पहलवानी के लिए अपने फूफा जमींदार रामरञ्जन के गाँव आने पर जब वह जमींदारों के षड्यन्त्र का शिकार होता है तो इस वर्ग के लिए घृणा का तीव्र-भाव उसके मन में उत्पन्न होता है – ''जमींदार की जात ब्रह्मराक्षस से बढ़कर है, जिससे पीछा कभी नहीं छूटता।''[५] समाज में जाति एवं वर्ण व्यवस्था की बढ़ती कुरीतियों के विरुद्ध उसका विचार – ''दुनिया में लोग एक-दूसरे से इस तरह क्यों नहीं मिलते कि छोटे-बड़े का भेद-भाव भूल जाय, एक-दूसरे के गले लगे दोस्त हों, गर्दन नापने वाले दुश्मन नहीं''[६] – उसके चरित्र की निश्छलता एवं सहजता का प्रतीक है। मनोहर में अपने ब्राह्मणत्व का गौरव बोध होने के साथ-साथ विनयशीलता भी है। इसलिए ब्राह्मण का तिरस्कार होता देखकर उसका मन विक्षुब्ध हो उठता है। उसके मन की व्यथा इन शब्दों में प्रकट होती है – ''हमारा समाज इस तरह स्वत्वहीन गुलामों का एक समाज हो रहा है और यह ब्राह्मणत्व। इस पर भी तरह-तरह से नीचा देखने की नौबत आती है। अब इतर जन सिर उठाने लगे हैं। हमारी अवमानना समाज की उन्नति का पहला साधन हो रही है।''[७] मातृभक्त मनोहर के मन में नारी-जाति के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की भावना है। इसलिए नारियों के अपमान का बदला चुकाने के लिए माँ द्वारा प्रेरित किए जाने पर वह उनका योग्य-पुत्र होने का संकल्प करता है।

अत्यन्त शान्त एवं शिष्ट स्वभाव वाला मनोहर मौका पड़ने पर अपने अपमान का बदला लेने से नहीं चूकता। अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा एवं शिष्टता के कारण ही वह साधारण जनों में अत्यन्त लोकप्रिय है एवं वे उसका आदर करते हैं – ''लोग उसकी इतनी इज्जत करने लगे कि उसको देखकर खड़े हो जाते थे और हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे।''[८]

काशी नगरी को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर वह शूद्र-बालकों में जिस तरह संस्कृत शिक्षा प्रदान करने का कार्य करता है उससे उसकी चारित्रिक दृढ़ता, क्रांतिकारी कार्य और व्यवहार तथा उसके परिश्रमी स्वभाव का पता चलता है – ''मनोहर, उषाकाल उठकर, निवृत्त होकर दशाश्वमेध में गंगा स्नान करके विश्वनाथ जी के दर्शन करता था, फिर लौटकर लड़कों को पढ़ाता था। दुपहर को भोजन पान के पश्चात दो घण्टे विश्राम करता था फिर आखीर आचार्य-परीक्षा की पढ़ाई में लगता था। रात को स्कूल-कॉलेज के लड़कों को उनके घर चलकर पढ़ा आता था। इस प्रकार जीवन का पौधा लहलहाने लगा।''[९] मनोहर की यह दिनचर्या उसकी कर्मठता की सूचक है। काशी के ब्राह्मणों द्वारा उसका बहिष्कार किये जाने के बावजूद अपनी कार्यदक्षता एवं निष्काम सेवा-भाव से वह बनारस के इतर जनों की श्रद्धा का पात्र बनता है। यहाँ तक कि रानी साहिबा भी उसे एक बड़ी रकम दान देकर ''देश के युवक, अब हम वह नहीं हैं, मगर देश की भलाई के लिए तुम्हारे साथ हैं। हमारी जो तौहीन होती है, उसके निराकरण के लिए कम-से-कम हजार युवक तैयार कर''[१०] देने का अनुरोध करती हैं।

समाज के निम्न एवं शोषित वर्ग की भलाई के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने वाले मनोहर की महानता का परिचय तब मिलता है जब उसकी खोज-खबर लेने के लिए उसके पिता गाँव पहुँचते हैं – ''मनोहर के पिता जिधर से निकलते थे उधर की वाहवाही होती थी, तुम्हारी मूँछें

रख लीं, तुम्हारा सिर ऊँचा किया, वह हमारा अपना भैया है, उसको कोई डर नहीं, हम जानते हैं कि लोगों ने उसको रहने न दिया, लेकिन वह वज्र है जो सिर फोड़कर टूटे, वह हमारी पुकार है, हमारे आँसू से टपककर भाप बनकर उड़ गया है, कभी खुशी की बारिश लायेगा।''[५]

अपने व्यवहार एवं कार्यों से लोगों में आशा और विश्वास की लौ जगाने वाले मनोहर का चरित्र सुखद भविष्य की ओर संकेत करता है।

ग्रामीण जीवन एवं जमींदारों के काले कारनामे का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार ने कतिपय गौण पात्रों की अवतारणा की है। मनराखन, यमुनाप्रसाद, माधव मिश्र, मातादीन आदि चरित्र जमींदारी-प्रथा के ही पोषक हैं। जमींदार की हाँ में हाँ मिलाकर एवं उनकी काली करतूतों में सहयोग देकर ये किसी-न-किसी रूप में अपना स्वार्थ सिद्ध करने की ताक में लगे रहते हैं। ये न केवल चापलूस बल्कि पूरे सिरे के धूर्त भी हैं। भोले-भाले ग्रामीणों को झूठे मुकदमे में फँसाने का भय दिखाकर ये जमींदार की नजरों में तो सम्मानित बने ही रहते हैं साथ ही गाँव वालों के सामने अपनी भलमनसाहत की दुहाई भी देते रहते हैं। इस तरह के चरित्र वर्ग चरित्र हैं। अपने वर्ग के तमाम गुण-दोष इनमें मौजूद हैं।

रामसिंह पहलवान को अपने पेशे के अनुरूप शरीर से बलिष्ठ किन्तु मन से उतने ही कमजोर चरित्र वाले युवक के रूप में चित्रित किया गया है। अशिक्षित रामसिंह में विनम्रता एवं सहिष्णुता का पूर्ण अभाव है। अपनी शारीरिक शक्ति के दम पर पड़ोसी यमुनाप्रसाद जमींदार से बात-बात में बैर मोल लेने वाला रामसिंह जमींदारों के षड्यन्त्र में फँसने के बाद अत्यन्त विवश एवं कमजोर हो जाता है एवं बिना किसी अपराध के दो सौ रुपये का जुर्माना भरता है। उसके चरित्र का यथार्थवादी अंकन किया गया है।

उपन्यास में मनोहर की माता का चरित्र ऐसा है जो गौण होने पर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। वह ऐसी गृहस्थ नारी है जिसके हृदय में समाज में होने वाले अन्याय के खिलाफ लावा धधक रहा है। नारी के साथ होने वाले अन्याय को वह चुपचाप इस उम्मीद से झेल रही है कि एक दिन उसका पुत्र इस अपमान का बदला लेगा। उसके पुत्र के साथ हुए अत्याचार की बात ज्ञात होने पर उसका आक्रोश इन शब्दों में फूट पड़ता है – ''बेटा मुझको विश्वास है कि तू मेरे दूध की लाज रखेगा और इन कामों की तह तक पहुँचकर इनकी जंजीर तोड़ने के काम आयेगा। अभी तो कच्चा बच्चा है। इन तमाम लांछनों को चुपचाप सिर उठाये हुए तैयार होता कि एक वक्त तू इनकी जड़ें काटे। दूसरा कोई चारा नहीं। हम एक मुद्दत से यह कसाले झेल रहे हैं। माँ से बेटे को विरासत में जो बातें मिलती हैं, वे हमारे कौम की गर्दन झुका देने वाली हैं। मुसलमानी जमाने से जो अपमान होते आये हैं .... सिर्फ तैयार होता जा कि माँ के सपूत का जवाब दे – ये बातें दुधारी तलवार हैं, मत समझ कि तेरी माँ, तेरी बहन एक धर्म के रिश्ता के सिवा और कुछ रखती हैं।''[६] मनोहर की माता के शब्दों में नारी की विवशता का करुण चित्र देखा जा सकता है क्योंकि – ''मजबूरी के सिवा मरदों के हाथों उनके और भी जो अपमान होते हैं वे सैकड़ों बिच्छुओं के डंक मारने से ज्यादा जलनवाले और जहरीले हैं। मरदों की आँख के नीचे उनके

अपमान हुए हैं और मरदों के हाथ-पैर नहीं चले।''[५] अत्यन्त स्नेहशील एवं गम्भीर प्रकृति की होने पर भी अन्याय के खिलाफ उनके विचारों में जो आग है उसी के स्फुलिंग संस्कार रूप में मनोहर को प्राप्त हुए हैं। वे उस महिला वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जो स्वयं अक्षम है पर पुत्र द्वारा अपने अपमान का बदला लेने को कटिबद्ध है।

मुन्ना बाँदी

मुन्ना बाँदी 'चोटी की पकड़' उपन्यास की प्रमुख पात्रा है। वह रानी साहिबा की सबसे विश्वस्त बाँदी है। रानी साहिबा के लिए नित नये प्रेमी जुटाने का कार्य वह बड़े चातुर्य से करती है। रानी साहिबा का विश्वास हासिल कर वह समस्त राज-कर्मचारियों को अपनी उंगलियों पर नचाती है। यहाँ तक कि स्वयं को रानी घोषित कर उन्हें सलामी देने को मजबूर करती है। उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ उसकी बाह्य एवं आन्तरिक विशेषताओं का परिचय दे देती हैं – ''मुन्ना की उतनी ही उम्र है जितनी बुआ की। उतनी ऊँची नहीं, पर नाटी भी नहीं। चालाकी की पुतली। चपल, शोख श्याम रंग। बड़ी-बड़ी आँखें। बंगाल के लम्बे – लम्बे बाल। विधवा, बदचलन, सहृदय। प्रायः हर प्रधान सिपाही की प्रेमिका। भेद लेने में लासानी। कितने ही रहस्यों की जानकार। प्रधान-अप्रधान नायिका, दूती, सखी। रानी साहबा ने जब-जब रण्डी रखने के जवाब में पति को प्रेमी चुनकर झुकाया, तब-तब मुन्ना ने प्रधान दूती का पाठ अदा किया।''[६] मुन्ना रानी साहिबा के समस्त दुराचार-संकल्पों की सहायिका है। बुआ पर कुपित होने पर रानी साहिबा मुन्ना के माध्यम से ही उनके कुल-गौरव का दर्प चूर्ण कराती हैं। मुन्ना अपनी धृष्टता, उच्छृंखलता एवं वाक् चातुर्य से बुआ को झुकने पर विवश कर देती है। इसी तरह जमादार जटाशंकर को पहले वह अपना मुख-चुम्बन लेने के लिए उकसाती है एवं बाद में उन्हें ब्राह्मण-जाति से बहिष्कृत करा देने की धमकी देकर अपना गुलाम बना लेती है। सिपाही रुस्तम को भी जमादार बनाने का प्रलोभन देकर बुआ को पतित करने के लिए राजी करती है। इस तरह शासन के समस्त सूत्रों का वह मनमाने ढंग से संचालन करती है। मुन्ना की चालाकी, कुटिलता एवं दुस्साहस का लेखक ने बड़ी कुशलता से वर्णन किया है। बुआ को बगीचे के तालाब में निर्वस्त्र नहाने का आदेश देकर वह काम के बहाने आकर सिपाहियों को बगीचे भेज देती है एवं स्वयं खजाने से रुपये गायब कर देती है। इस तरह एक ओर तो वह बुआ पर पतित होने का आरोप लगाती है एवं दूसरी ओर खजांची को रुपये चोरी हो जाने का भय दिखाकर अपना आदेश मानने पर विवश करती है। उसके समस्त कार्यकलाप यह सिद्ध करते हैं कि वह कूटनीति एवं षड्यन्त्र करने में कितनी माहिर है। उपन्यास में उसका चरित्र खुलकर प्रकट हुआ है। उसके चरित्र के कालुष्य के माध्यम से महल की स्त्रियों की ऐयाशी, दुश्चरित्रता का यथार्थ चित्रण किया गया है किन्तु प्रभाकर के सम्पर्क में आने पर उसके चरित्र में परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन को कथाकार ने बड़ी सूक्ष्मता से रेखांकित किया है – ''जैसे-जैसे प्रभाकर पास आता गया, मुन्ना के बुरे कृत्य भी जो नीची तह के किये हुए थे – उसके ऊँचा उठने के कारण छूटे हुए, काई की तरह सिमटकर पास आते गये। प्रभाकर की

चाल के धक्के से निकलते गये। मुन्ना वैसे बदल गयी प्रभाकर से मिलने के लिए। जो मुन्ना होगी उसके बुरे संस्कार छूटने लगे।'' अपने कुचक्रों के कारण पाठकों की घृणा बटोरने वाली मुन्ना कर्तव्य के प्रशस्त पथ पर चलने का दृढ़ संकल्प लेने के कारण सहज ही पाठकों की सहानुभूति अर्जित करने में सफल होती है। इस तरह उसके चरित्र के समस्त कालिमायुक्त पक्ष को चित्रित कर अन्त में उसे सुधरने का मौका देकर कथाकार ने यह स्पष्ट किया है कि बुरे से बुरे व्यक्ति को भी ईमानदारी एवं सच्चाई की प्रशस्त राह पर लाया जा सकता है।

बुआ

बुआ अत्यन्त स्वाभिमानिनी चरित्र की विधवा है। जातिगत संस्कार उनमें अत्यन्त प्रबल हैं। उनकी बाह्याकृति का उपन्यास के आरम्भ में ही लेखक ने कुशलता पूर्वक वर्णन किया है – ''बुआ की उम्र पच्चीस होगी। लम्बी सुताखाली बंधी पुष्ट देह। सुघर गला, भरा उर। कुछ लम्बे मांसल चेहरे पर छोटी-छोटी आँखें, पैनी निगाह। छोटी नाक के बीचोबीच कटा दाग। एक गाल पर कई दाँत बैठे हुए। चढ़ती जवानी में किसी बलात्कारी ने बात न मानने पर यह सूरत बनायी।'' इस तरह सुन्दर देह पर भयंकर चेहरे वाली बुआ अपने भतीजे के ससुराल में आकर रहती हैं। ''मान्य की मान्य के सम्बन्ध में युक्तप्रान्त की बंधी धारणा'' होने के कारण बुआ में बड़प्पन का भाव अत्यन्त तीव्र है इसलिए अपने भतीजे की सास रानी साहिबा द्वारा उन्हें नीचे आसन पर बैठने के लिए कहे जाने पर वे अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उनके बगल में बैठकर जवाब देती हैं – ''समधिन, हम वहाँ नहीं बैठेंगे। वह जगह तुम्हारी है। अगर बड़प्पन का इतना बड़ा अभिमान था तो गरीब का लड़का क्यों चुना?'' रानी साहिबा द्वारा उनके गालों के दाग के सम्बन्ध में व्यंग्य किये जाने पर वे ''यहीं की तरह औरत पर हुए अपमान के दाग हैं। लेकिन हमारा चेहरा तुम्हारे दामाद से मिलता-जुलता भी है? – जैसा हमारा, हमारे भाई का, वैसा ही उसका, वह चेहरा भी ब्याह से पहले तुम लोगों को कैसे पसन्द आ गया?'' कहकर उनके व्यंग्य का मुँह तोड़ जवाब देती हैं। किन्तु वही बुआ मुन्ना दासी के चंगुल में फँसने पर उसे प्रणाम करने को बाध्य होती हैं। सिपाही रुस्तम द्वारा उनका सतीत्व हरण की चेष्टा करने पर वे एक निस्सहाय अबला की भाँति सच्चे हृदय से ईश्वर को पुकारती हैं। प्रभाकर के सम्पर्क में आने पर उनमें देश-सेवा की पवित्र भावना उभरती है एवं वे आजीवन जन-सेवा का दृढ़ संकल्प लेती हैं। इस तरह उपन्यास में आदि से अन्त तक उनके चरित्र की सरलता एवं निष्कपटता पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है।

राजा राजेन्द्र प्रताप

राजा राजेन्द्र प्रताप में सामन्ती विलासिता कूट-कूट कर भरी हुई है किन्तु साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों को पहचान कर तदनुकूल आचरण करने की सजगता भी उनमें दिखायी पड़ती है। दिन रात सुरा-सुन्दरी में लिप्त रहने वाले राजा राजेन्द्र प्रताप एजाज नामक वेश्या के रूप जाल में पूरी तरह फंसे हुए है किन्तु देशी आन्दोलन की पक्षधरता करने से ही स्वार्थ-रक्षा सम्भव है यह

ज्ञात होने पर वे अपनी कोठी में स्वदेशी आन्दोलन के प्रचार का गुप्त केन्द्र स्थापित करने की सहर्ष अनुमति दे देते हैं। यहीं नहीं बल्कि प्रभाकर को अपना कार्य सुचारु रूप से करने के लिए हर सम्भव मदद भी करते हैं। विलासी राजा राजेन्द्र प्रताप रूप और स्वर माधुरी के सच्चे पारखी भी हैं। वे कला के कद्रदान हैं। इस तरह उनके चरित्र में सत्-असत् दोनों तत्वों का समावेश है।

प्रभाकर

प्रभाकर 'चोटी की पकड़' उपन्यास में एक आदर्श युवा के रूप में चित्रित किया गया है जिसके सम्पर्क में आने पर बुरे-से-बुरे पात्र के चरित्र में भी बदलाव आता है। इस अर्थ में उसका चरित्र प्रेरक भी है। यद्यपि उपन्यासकार ने उपन्यास के आरम्भ में घोषणा की थी कि इस उपन्यास के अगले खण्ड में प्रभाकर का चरित्र निखरेगा। किन्तु इसी खण्ड में उसके चरित्र की ओजस्विता प्रकट होने लगती है। उसकी शालीनता, उसके कण्ठ स्वर एवं संगीत-ज्ञान पर न केवल राजा साहब बल्कि एजाज जैसी वेश्या भी मुग्ध हो जाती है। यहाँ तक कि उसे लगता है कि "इसके साथ जिन्दगी का खेल है, खिलाफ मौत का सामाँ।"[१०४] उपन्यासकार ने प्रभाकर का परिचय इन शब्दों में दिया है – "स्वामी विवेकानन्द की वाणी लोगों में वह जीवनी ले आयी, खास तौर से युवकों में, जिससे आदर्श के पीछे आदमी जगकर लगता है। प्रभाकर राजनीति में इसी का प्रतीक था।"[१०५] उसमें गजब का धैर्य एवं सहनशीलता तो है ही साथ ही अद्भुत साहस भी है। वह रुस्तम जी के हाथों बुआ की सतीत्व-रक्षा करता है। यहाँ वह नारी-उद्धारक के रूप में उभरता है। उसकी शान्ति, दृढ़ता एवं आत्मविश्वास तथा संकल्प से भरी हुई चाल ही मुन्ना जैसी दुश्चरित्रा बांदी को भी प्रभावित करती है एवं उसके बुरे संस्कार छूटने लगते हैं। जमादार जटाशंकर के सामने वह सच्चे हृदय से स्वीकार करती है – "गुरुदेव की बात का असर पड़ता है। उन पर अपने आप विश्वास हो जाता है। बड़े अद्भुत आदमी हैं।"[१०६] प्रभाकर पहली मुलाकात में रानी साहिबा को भी प्रभावित करता है। "रानी साहबा को जान पड़ा, उनका पहला अस्तित्व स्वप्न हो गया है। ....हृदय के बन्द-बन्द खुल गये हैं।"[१०७] प्रभाकर को पाकर बुआ को भी लगता है – "एक अपना आदमी, जिसको औरत अपना आदमी कह सकती है।"[१०८] प्रभाकर के चरित्र का यह वैशिष्ट्य पाठकों को भी प्रभावित करता है। वह स्वदेशी आन्दोलन का प्रचारक मात्र ही नहीं है बल्कि उसका स्पष्ट मत है कि – "स्वदेशी का, देश प्रेम का जितना प्रचार होगा, देशवासियों का कल्याण है।"[१०९] प्रभाकर एक सच्चा देश भक्त एवं गरीबों तथा असहायों का शुभ चिन्तक है। उसके संकल्प में एक आग है साथ ही देशवासियों के भविष्य की चिन्ता भी – 'मिलों का मुकाबला है, मुश्किल मुकाम है, मिलवाले जमींदारों की तरह इस आन्दोलन में शरीक नहीं दलाल हैं ये लोग; विघ्न डालेंगे... दुकानदारों को ये लोग बांधे हैं। ....देश के इन गर्धों से ईश्वर पार लगाये।"[११०] प्रभाकर सही अर्थों में नवयुग का प्रतिष्ठाता है। उसकी सचाई, ईमानदारी तथा क्रियाशीलता राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य के प्रति मन में आशा जगाती है। इस अर्थ में उसका चरित्र वास्तव में अनुपम एवं अनुकरणीय है।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त उपन्यास में रानी साहिबा, जमादार जटाशंकर एजाज वेश्या, दिलावर, रामफल, रुस्तम, यूसुफ जैसे कुछ गौण पात्र भी वर्णित हैं जो कथा-विकास में सहायक हुए हैं। ये कथा में रोचकता बनाए रखते हैं। साथ ही तत्कालीन जीवन की परिस्थितियों को उभारने में भी सहायक हुए हैं।

चमेली

'चमेली' उपन्यास की नायिका चमेली गरीब किसान दुखी की विधवा पुत्री है। भारतीय समाज में अभिशप्त विधवा नारी के प्रतीक के रूप में उसका चरित्र उभरा है। युवती विधवा चमेली गाँव के तथाकथित उच्च वर्ग के उच्छृंखल व्यवहार से अपने सतीत्व की रक्षा करने में सजग है। वह शान्त, सरल एवं निश्छल स्वभाव वाली रमणी होने पर भी अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करती है। गरीब होने पर भी किसी तरह के आर्थिक प्रलोभन के आगे वह नहीं झुकती। इसीलिए सिपाही बख्तावर सिंह द्वारा नाना प्रकार के प्रलोभन दिए जाने पर भी अडिग एवं अविचल रहती है। चमेली दुनियावी छल-कपट से पूर्णतया अनभिज्ञ है। इसीलिए बख्तावर सिंह द्वारा उसके एवं महादेव के सम्बन्ध में झूठा आरोप लगाने पर वह हतप्रभ रह जाती है – "यह पहला मौका था कि दुनिया अपनी असली सूरत में उसकी निगाह के सामने आयी थी। इस दुनिया को वह सच समझती थी, इसके लोगों को सही भावों से उसने काका, दादा, भैया कहना सीखा था बदले में वैसे ही भाव जैसे पाती आ रही थी, पर आज कैसा छल है। महादेव को वह भैया कहती थी, पर कोई आज मानने के लिए तैयार नहीं।"[१०७] चमेली का यह अन्तर्मंथन उसकी निश्छलता का प्रमाण है। चमेली अन्याय के सम्मुख झुकना नहीं जानती। पिता के साथ वार्तालाप में उसकी विद्रोही प्रकृति स्पष्ट हुई है। पिता द्वारा गाँव वालों की बात पर विश्वास कर लिए जाने पर वह निर्भीकता पूर्वक सच्चाई बयान करती है।

इस तरह चमेली का चरित्र उस ग्रामीण शोषित महिला वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो षड़यन्त्र का जाल काट फेंकने को आतुर है एवं अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द करने का साहस रखता है।

पं० शिवदत्त राम त्रिपाठी

पं० शिवदत्त राम त्रिपाठी सामन्ती विलासिता, व्यभिचारिता पाखण्ड, स्वार्थपरता एवं अवसरवादिता के जीते-जागते प्रतीक हैं। "पेशा अदालत-झूठ, तमस्सुख लिखना-लिखवाना, मुकद्दमा लड़ना-लड़वाना, किसानों को अधिक सूद पर रुपया कर्ज देकर ब्याज में खाना-रहना।"[१०८] ये पंक्तियाँ पं० शिवदत्त राम के चरित्र के कालुष्य को प्रकट करती है। अपनी बेवा भैह से नाजायज सम्बन्ध रखने वाले शिवदत्त राम जी पूरे बगुला भगत हैं। धार्मिक बाह्याडम्बर द्वारा लोगों को प्रभावित करने की कला में वे खूब माहिर हैं। भोले-भाले ग्रामीणों की मदद करने के नाम पर उनसे रुपया ऐंठ कर शिवदत्त राम जी ने काफी जायदाद इकट्ठी की है। उनका उसूल है कि 'सुबह सोकर उठने के बाद जब तक कुछ कमा न लो, पानी न पियो।"[१०९] पं० शिवदत्त राम का

चरित्र कुत्साओं से भरा पड़ा है। वे मस्तक पर चंदन धारण करते हैं और अपनी बेवा भैहू और बहन को हमल गिराने की दवा देते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि "कोई कुछ करे, दोख नहीं, धर्म न छोड़े।"[११०] इस तरह 'घर की बात घर में ही रहने' देने के हिमायती पं० शिवदत्त राम जी समाज के कलंक हैं। वे काम-कुत्सा से ग्रसित एक व्यभिचारी एवं चरित्र-भ्रष्ट इन्सान हैं।

इनके अलावा उपन्यास में लाला शहनाई लाल, बख्तावर सिंह, महादेव, मनराखन, सीतलदीन, माधो सुकुल, बदलू कुम्हार, दुखिया, ननकी आदि के चरित्र आए हैं जो कथानक के विकास में सहायक तो हैं ही साथ ही ग्रामीण पृष्ठभूमि को उभारने में भी मदद करते हैं।

बख्तावर सिंह सिपाही जमींदार का पालतू है जो गाँव के निर्धन किसानों की बहू-बेटियों की इज्जत पर घात लगाए रहता है एवं येन-केन-प्रकारेण उनका सतीत्व हरण करने की फिराक में रहता है। इसीलिए चमेली जब उसके प्रलोभनों में नहीं फँसती एवं अपनी इज्जत बचाने के लिए महादेव को मदद के लिए पुकारती है तो गाँव वालों के पहुँचने पर अपने को निष्कलंक प्रमाणित करने के लिए बख्तावर सिंह उल्टे चमेली एवं महादेव के बीच गलत सम्बन्धों का झूठा प्रचार कर देता है। इस तरह बहन-भाई के पवित्र रिश्ते को भी अपनी दुर्भावना से कलुषित करने वाला बख्तावर सिंह चमेली के बाप दुखिया को भी कहता है – "तेरी वह जुवंटा बिटिया भी समझती है, देस के धिगरों को बुलाने के लिए रख छोड़ा है उस घर में? भतार को तो चबा गयी ब्याह होते ही, इससे नहीं समझ में आवा कि कैसी है? बैठा क्यों नहीं दिया किसी के नीचे अब तक?"[१११] बख्तावर सिंह का यह कथन उसके चरित्र की हीनता का ही प्रतीक है जो नारी की इज्जत करना तो नहीं ही जानता बल्कि उसके वैधव्य के लिए भी उसे ही दोषी ठहरता है। स्वयं दोषी होते हुए भी चमेली पर लांछन लगाने वाले बख्तावर सिंह पर 'उलटा चोर कोतवाल को डाटे' की उक्ति पूरी तरह सटीक बैठती है।

महादेव की छवि उस भोले-भाले युवक के रूप में उभरती है जो शारीरिक दृष्टि से सबल होते हुए भी जमींदार के शोषण का शिकार है। किन्तु नारी का अपमान उसकी सहन-शक्ति के बाहर है। अतः चमेली का अपमान करने वाले बख्तावर सिंह को मार-मार कर वह छठी का दूध याद दिला देता है। कसरती शरीर वाला यह युवक अन्याय सहन करना नहीं जानता, वैसे वह तमाम छल-प्रपंचों से बिलकुल अलग-थलग रहता है।

मनराखन, सीतलदीन, माधो सुकुल आदि नपुंसक चरित्र के व्यक्ति हैं जो जमींदार एवं उसके हिमायतियों की हाँ-में-हाँ मिलाने में ही अपनी कुशलता समझते हैं। "जैसा देखा है वैसा न कहें तो अपने बाप के नहीं, नास हो जाय, खाट सीधे गंगाजी जाय।"[११२] कहकर कसमें खाने वाले ये व्यक्ति जमींदार के प्रभाव से इतने ग्रसित हैं कि उसको खुश रखने के लिए दिन को रात कहने से भी नहीं चूकते। इनमें जमीर नाम की कोई चीज नहीं है। वे ठकुरसहाती कहने एवं करने में ही अपनी शान समझते हैं।

चमेली का पिता दुखिया उस भीरु निर्धन किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो युग-

युगों से शोषण का शिकार हो रहा है किन्तु अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का साहस नहीं कर पाती एवं सब कुछ जानते हुए भी अपनी युवा विधवा बेटी को ही दोषी ठहराता है।

ननकी पं० शिवदत्त राम त्रिपाठी के छोटे भाई की विधवा है। वैधव्य की मार सहने वाली इस युवती में काम-पिपासा इतनी प्रबल है कि अपने जेठ के साथ शारीरिक-सम्बन्ध बनाने में भी उसे किसी तरह का संकोच नहीं होता। यही नहीं बल्कि उनकी निगाह में ऊँचा उठने के लिए वह अपनी दिवंगत जेठानी पर भी आरोप लगाने से नहीं चूकती – "दीदी का सुभाव अच्छा न था, तुमसे आज तक मैंने नहीं कहा, यह मनोहरा तुम्हारा लड़का नहीं है, दीदी मायके से ही बिगड़ी थीं। कभी-कभी वह आता था उस पिछवाड़े वाले बाग में।"[११] ननकी एक ऐसी विधवा युवती है जो अपने वाक्-वाणों से घर में फूट डालने का काम करती है। अपनी ननद के खिलाफ वह अपने जेठ को भड़काती है – "कहे देती हूँ तुमसे, वह अब रहेंगी नहीं घर। खोदोया बिसाते से इसकी आसनाई है, सीधे तुम्हारे मुख में लगायेंगी कालिख और होंगी मुसलमानिन।"[१०] ननकी एक ऐसी विधवा युवती के रूप में चित्रित की गयी है जो कलंकित चरित्र की होते हुए भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति पूरी तरह सजग है। इसीलिए अपने जेठ को वह पूरे विश्वास से कहती है – "बाम्हन ठाकुरों के यहाँ कोई बेवा वह दबा खिलाये बिना रक्खी भी जाती है? वह गावदी होगा जो रक्खेगा। एक-आध के हमल रह जाता है, लापरवाही से।"[१०] वस्तुतः ननकी जैसी विधवा का चरित्र सामाजिक उपेक्षा की बजाय सहानुभूति का पात्र अधिक है।

कुल्ली भाट

'कुल्ली भाट' रेखाचित्र के चरित नायक कुल्ली का सही नाम वस्तुतः पं० पथवारीदीन भट्ट है। ये निराला के मित्र हैं। अपने इस मित्र के बारे में निराला का कथन है – "कुल्ली सबसे पहले मनुष्य थे, ऐसे मनुष्य, जिनका मनुष्य की दृष्टि में बराबर आदर रहेगा।"[११] इस कथन से कुल्ली की सामान्यता की ओर लेखक ने संकेत किया है। किन्तु सामान्य होते हुए भी कुल्ली के चरित्र में असामान्यता है। उनके चरित्र में दोनों ही पक्ष दिखाई पड़ते हैं। लेखक ने प्रथम साक्षात्कार के समय कुल्ली का जो रेखाचित्र प्रस्तुत किया है उससे वे एक विलासी ऐयाश किस्म के व्यक्ति के रूप में दिखते हैं। "गेट पर टिकट-कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था बना-चुना, बिलकुल लखनऊ-ठाट जिसे बंगाली देखते ही गुण्डा कहेगा। तेल से जुल्फें तर, जैसे अभीनाबाद से सिर पर मालिश कराकर आया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीला, सिर के दाहिने किनारे रक्खी। ऐंठी मूंछे, दाढ़ी चिकनी। चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्कट। हाथ में बेंत। काली मखमली किनारी की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई। पैरों में मेरठी जूते। उम्र पच्चीस के साल-दो साल इधर-उधर। देखने पर अन्दाजा लगाना मुश्किल है – हिन्दू है या मुसलमान। साँवला रंग। मजे का डीलडौल। साधारण निगाह में तगड़ा और लम्बा भी।"[१०] व्यभिचारी कुल्ली के प्रति गाँव वालों की धारणा अच्छी नहीं है। वे नवयुवक निराला को भी अपनी काम-वासना का शिकार बनाने का असफल प्रयास करते हैं। किन्तु कुल्ली का चरित्र धीरे-धीरे

जीवन की गर्हित स्थितियों से ऊपर उठता है। अछूतों के लिए पाठशाला खोलकर, मरणासन्न बिन्दा खटिक की पत्नी की सेवा कर, अछूतोद्धार आन्दोलन के अगुआ बनकर, कांग्रेस के स्वयं-सेवक बनकर तथा स्वदेशी आन्दोलन में सोत्साह भाग लेकर कुल्ली अपनी सक्रियता और जागरूकता का परिचय देते हैं। यहाँ वे एक सच्चे समाज सेवी एवं पीड़ितों तथा दलितों के मसीहा बनकर उभरते हैं। अछूत पाठशाला में जाने पर कुल्ली के इस दिव्य रूप का परिचय कथाकार ने इन शब्दों में दिया है— "मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है, व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है इतने जम्बुकों में वह सिंह है। वह अधिक पढ़ा-लिखा नहीं, लेकिन अधिक पढ़ा लिखा कोई उससे बड़ा नहीं। उसने जो कुछ किया है, सत्य समझकर।"[११८] एक मुसलमानिन को पत्नी बनाकर कुल्ली अपनी विशाल हृदयता का परिचय देते हैं। हिन्दुओं की संकीर्ण मानसिकता के वे विरोधी हैं तथापि अपनी पत्नी को पूर्ण रूप से शुद्ध करने के लिए गुरु-मन्त्र दिलवाते हैं। अछूत-पाठशाला के लिए लोगों के विरोधों का सामना करने वाले कुल्ली में मनुष्यत्व के विकास को देखकर कथाकार को लगता है— "सच्चा मनुष्य निकल आया, जिससे बड़ा मनुष्य नहीं होता।"[११९] कुल्ली की परिश्रमशीलता, उनकी कार्यकुशलता, सेवा-भाव एवं दलितों के प्रति सहानुभूति की भावना उनके विरोधियों को भी उनकी प्रशंसा करने पर मजबूर कर देती है। जिस कुल्ली की छाया-मात्र से निराला के ससुराल वाले घृणा करते थे उसी कुल्ली के सम्बन्ध में उनके परवर्ती विचार कुल्ली की चारित्रिक उच्चता को प्रकट करते हैं। जहाँ निराला की सास उन्हें देवता तथा सलहज उन्हें अवतार मानती हैं वहीं साले साहब का कथन है— 'कुल्ली अठारह घण्टा काम करते हैं। छः छः कोस पैदल जाते हैं कांग्रेस के नियम्बर (मेम्बर) बनाने के लिये। बस्ती में और बाहर सब जगह इतनी इज्जत है कि लोग देखकर खड़े हो जाते हैं।"[१२०] स्वयं कथाकार को उनके जड़ शरीर में "कविता का दिव्य रूप"[१२१] दिखाई देता है। कुल्ली की आन्तरिक निश्छलता एवं निर्मलता का ही प्रभाव है कि जीवन के अन्तिम दिनों में असाध्य रोग से ग्रस्त होने पर भी "मुख पर दिव्य कान्ति क्रीड़ा कर रही है।"[१२२] इस तरह "विद्या और अविद्या का आधा-आधा भाग कुल्ली की देह में पूर्ण रूप से प्रकाशित था।"[१२३] कुल्ली की शव-यात्रा में उमड़ा विशाल जन-समूह उनकी लोकप्रियता का साक्षी है। स्वयं कथाकार उनका एकादशाह कराते हैं।

इस तरह कुल्ली के चरित्र में एक साथ ही अवनति एवं उन्नति की पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती है। वे साधारण होकर भी असाधारण हैं। कुल्ली में मानवोचित गुण-दोष दोनों ही प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। 'कुल्लीभाट' कृति में कुल्ली के अतिरिक्त स्वयं कथाकार का अपना व्यक्तित्व अत्यन्त विस्तार से आया है। निराला का विद्रोही व्यक्तित्व, रूढ़ियों एवं जड़ संस्कारों के प्रति विद्रोह की भावना, उनका अक्खड़पन, जीवन के करुण-मधुर प्रसंग, साहित्यिक संघर्ष आदि की प्रत्यक्ष झांकी यहाँ देखने को मिलती है।

बिल्लेसुर बकरिहा

बिल्लेश्वर 'बिल्लेसुर बकरिहा' उपन्यास के नायक हैं जो बकरी पालने का पेशा अपनाने के कारण बकरिहा नाम से मशहूर होते हैं। बिल्लेसुर का जीवन और चरित्र संघर्ष का पर्याय है। संघर्षशील, कर्मठ, निर्भीक एवं दृढ़ संकल्प वाले बिल्लेसुर के चरित्र में कहीं-कहीं कथाकार का अपना व्यक्तित्व ही प्रतिभासित होता है। कान्यकुब्ज ब्राह्मण, तरी के सुकुल बिल्लेसुर जीवन-संग्राम में अडिग भाव से डटे रहने वाले एक कर्मठ योद्धा के रूप में चित्रित किए गए हैं। अर्थोपार्जन के लिए बंगाल आते समय मार्ग में जिन कठिनाइयों का सामना बिल्लेसुर करते हैं उससे उनकी सहनशीलता, धैर्य एवं कष्ट सहिष्णुता का परिचय मिलता है। यहाँ सत्तीदीन के यहाँ रहकर जिस तरह वे अविचल भाव से घर के समस्त काम-काज के साथ-साथ अर्थ प्राप्ति के लिए अन्य दूसरे कार्य करते हैं उससे उनकी परिश्रमशीलता का गुण उद्‌घाटित होता है। ''गर्मी के दिनों में दस-बारह बजे तक घर का कुछ काम करते थे, फिर चिट्ठी लगाते हुए, देर हुई सोचकर धूप में, नंगे सिर, बिना छाता, दौड़ते हुए रास्ता पार करते थे। लौटते थे, हाँफते हुए, मुँह का थूक सूखा हुआ, होंठ सिमटे हुए, पसीने-पसीने, दिल धड़कता हुआ, यहाँ का बाकी काम करने के लिए।''[illegible] सत्तीदीन से गुरु मन्त्र लेने के बाद बिल्लेसुर में आस्तिकता प्रत्यक्ष होती है। ''बिल्लेसुर की क्रिया-काष्ठा बहुत बढ़ गयी। तिलक, माला और गायत्री के धारण से उनकी प्रखरता दिन-पर-दिन निखरती गयी।''[illegible] पर सत्तीदीन से कोई स्वार्थ सिद्ध न होता देखकर बिल्लेसुर निरपेक्ष भाव से गुरु मन्त्र लौटाकर गाँव की राह पकड़ते हैं। उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी जाति के मिथ्याडम्बर का परित्याग करने वाले बिल्लेसुर किसी भी पेशे को बुरा नहीं समझते। बकरी-पालन का पेशा अपनाने के कारण गाँव-वालों की कटूक्तियों, ईर्ष्या एवं व्यंग्य के तीरों को वे एक संत के समान झेलते हैं क्योंकि ''बिल्लेसुर को जिन्दगी के रास्ते रोज ऐसी ठोकर लगी है, कभी बचे हैं, कभी चूके हैं।''[illegible] यही नहीं बल्कि गाँववालों पर जवाबी हमला भी वे करते हैं ''बकरी के बच्चों के वही नाम रखने लगे जो गाँववालों के नाम थे।''[illegible] ग्रामीणों की प्रतिक्रिया के बावजूद अपने पेशे पर डटा रहना उनकी दृढ़ इच्छा-शक्ति का प्रमाण है। परन्तु इस मोर्चे पर प्रगतिशील प्रतीत होने वाले बिल्लेसुर दूसरे मोर्चे पर संकीर्ण हैं। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की कुल मर्यादा का पालन करते हुए वे बड़े कुल के तिवारियों के यहाँ विवाह करने से इसलिए हिचकिचाते हैं क्योंकि किसी के ऐसा करने से बेटी विधवा हो गई थी। बिल्लेसुर विवाह के बारे में जहाँ संस्कार, परिवार तथा कुण्डली मिलाने जैसी कई प्राचीन भावनाओं से जकड़े हुए हैं वहीं धर्म भीरु भी हैं। लेकिन वही बिल्लेसुर तब घोर नास्तिक हो उठते हैं जब अपनी बकरियों की रक्षा का भार मंदिर के महादेव जी पर डालने के बावजूद उनकी बकरी चुरा ली जाती है। उनका रौद्र रूप उस समय देखने लायक है— ''मन्दिर की उल्टी प्रदक्षिणा करके, पीछे महावीर जी के पास गये। लापरवाही से सामने खड़े हो गये और आवेग में भरकर कहने लगे, ''देख, मैं गरीब हूँ। तुझे सब लोग गरीबों का सहायक कहते हैं, मैं इसीलिए तेरे पास आता था, और कहता था, मेरी बकरियों को और बच्चों को देखे रहना। क्या

तूने रखवाली की, बता, लिये बूचन सा मुँह खड़ा है?" कोई उत्तर नहीं मिला। बिल्लेसुर ने आँखों से आँखें मिलाये हुए महाबीरजी के मुँह पर वह डण्डा दिया कि मिट्टी का मुँह गिली की तरह टूटकर बीघे भर के फासले पर जा गिरा।"[११८] मूर्ति-भंजक बिल्लेसुर यहाँ देवी देवताओं के प्रति टूटी हुई आस्था के साथ संघर्ष करने वाले प्राणी के प्रतीक के रूप में उभरते हैं।

विवाह के प्रति बिल्लेसुर के मन में एक साधारण प्राणी की भाँति ही ललक है। विवाह-प्रसंग छिड़ने पर उनके मन की अवस्था का अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कथाकार ने किया है। अपनी दूरदर्शिता एवं व्यवहार कुशलता द्वारा वे अपने भाई मन्नी की सास को प्रभावित करने में सफल होते हैं एवं एक निर्धन परिवार की कुलीना, गृह-कुशल कन्या के साथ वे उनका विवाह सम्पन्न करा देती हैं। यह बिल्लेसुर के बौद्धिक कौशल, कूटनीतिक दृष्टि एवं व्यवहारकुशलता का ही प्रमाण है कि अपने जीते जी अपनी वास्तविक आर्थिक स्थिति का रहस्य वे किसी पर प्रकट नहीं होने देते।

बिल्लेसुर का समस्त जीवन चरित्र इस बात का साक्षी है कि अतिसाधारण स्थिति और निम्न स्तर के प्राणी होते हुए भी वे उपयोगितावादी और दूरदर्शी हैं। यद्यपि उनके पास सिद्धांत की वाणी नहीं है किन्तु उनकी सहज ग्रामीण व्यावहारिकता एवं कर्मठता उन्हें सिद्धांत-प्रतिपादकों से श्रेष्ठ सिद्ध करती है।

बिल्लेसुर के व्यक्तित्व का सुन्दर विश्लेषण डा० नगेन्द्र ने इन शब्दों में किया है – "उसे जीवन के प्रति निर्जीव मोह नहीं है। .... बाधाएँ आती हैं, उसको तकलीफ होती है परन्तु विचलित होकर हार बैठने की बात उसके मन में कभी नहीं आती। वह धैर्यपूर्वक उसको जीवन का एक अनिवार्य अनुभव मानकर फिर आगे बढ़ जाता है, और इसीलिए जीवन में एकाकी होकर भी वह व्यक्तिवादी नहीं है।"[११९]

इस तरह बिल्लेसुर भारतीय कृषक वर्ग का सच्चा प्रतिनिधित्व कर अपने अपराजेय व्यक्तित्व का प्रदर्शन करता है। उसका जीवन-संघर्ष भारतीय कृषक का जीवन संघर्ष है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' में बिल्लेसुर के अतिरिक्त जो गौण पात्र हैं उनमें बिल्लेसुर के तीन भाई मन्नी, ललई एवं दुलारे हैं। इन चारों भाइयों के संबंध में उपन्यासकार का कथन है – "बिल्लेसुर चार भाई आधुनिक साहित्य के चारों चरण पूरे कर देते हैं।"[१२०]

मन्नी का चरित्र ग्रामीण जीवन की कुत्साओं से भरा पड़ा है। धर्मानुसार विवाह को आवश्यक मानने वाले मन्नी एक विधवा की दुधमुँही बच्ची से विवाह करने के लिए लासा लगाते हैं एवं अनेक प्रकार के छल-छद्म का सहारा लेकर अन्ततः उससे विवाह करने में सफल हो जाते हैं। धर्म के नाम पर अनाचार करने वाले मन्नी का घोर नैतिक पतन हो चुका है। कट्टर सनातन धर्मी मन्नी एक पाखण्डी के रूप में ही उभरते हैं।

ललई में भी अर्थ-प्राप्ति की लिप्सा प्रबल है किन्तु वे मन्नी की अपेक्षा ईमानदार हैं इसलिए अपने मित्र के सम्पूर्ण परिवार को उदारता से अपनाते हैं। धर्म-कर्म में दृढ़ आस्था रखने वाले ललई लोक-निन्दा और यशः कथा को एक-सा समझते हैं। गाँव वालों के असहयोग की

भी वे परवाह नहीं करते। आर्थिक चिन्ता मिटने पर वे देश के उद्धार में लगते हैं एवं गाँव वालों को प्रभावित करते हैं। कुल मिलाकर ललई की छवि राजनीतिक सुधारक सामाजिक आदमी की है।

आर्य समाजी दुलारे में भी विवाहेच्छा प्रबल है। वे भी गाँव के ही बस्तीदीन सुकुल की बेवा को मनमाने तर्क द्वारा समझा-बुझा कर उससे विवाह रचाते हैं। वे आर्य समाज की वितण्डावादी शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

निराला की चरित्र सृष्टि : वैविध्य एवं वैशिष्ट्य

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला ने अपने कथा-साहित्य में विभिन्न चरित्रों की अवतारणा की है। अपने वैविध्य एवं वैशिष्ट्य के कारण निराला के ये पात्र सहज ही पाठकों को प्रभावित करते हैं। यथार्थ जगत् से अपने पात्रों का चयन कर लेखक ने इतनी कुशलतापूर्वक उनके चरित्र को सँवारा है कि वे हमारे ही बीच के से प्रतीत होते हैं। इसलिए हम सहज ही उन्हें विस्मृत नहीं कर पाते। प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने अपने एक संस्मरण में लिखा है – ''कलाकार का बड़प्पन इसी में है कि उससे अधिक पाठकों को उसके पात्रों की याद आए।''[illegible] निराला ने कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, पगली जैसे अमर चरित्रों की अवतारणा कर अपना बड़प्पन प्रमाणित किया है।

निराला के पात्र इस अर्थ में महत्वपूर्ण हैं कि वे कथा का स्वाभाविक अंग बनकर आए हैं। वे अपने रूप-ग्रहण की चेष्टा में सक्रिय प्रतीत होते हैं। वे लेखक के हाथ की कठपुतली मात्र बन कर नहीं रह गए हैं बल्कि कथाक्रम में स्वतन्त्र रूप से विचरण करते हैं।

निराला ने यों तो यथार्थ के साथ-साथ कतिपय आदर्शवादी चरित्रों की अवतारणा भी की है किन्तु वस्तुतः उनकी वृत्ति यथार्थवादी पात्रों के चरित्रांकन में अधिक रमी है। उनके आदर्शवादी पात्र स्वयं कथाकार के सिद्धान्तों एवं विचारों के संवाहक हैं। 'अप्सरा' उपन्यास का चन्दन सिंह, 'निरुपमा' का नायक कुमार 'अलका' उपन्यास के स्नेहशंकर, 'प्रभावती' की यमुना एवं वीरसिंह तथा 'अर्थ' कहानी का नायक राजकुमार आदि ऐसे ही आदर्शवादी पात्र हैं। इनकी आस्था, कर्मठता, त्यागशीलता, आत्म विश्वास एवं संकल्प जैसे गुण अन्य पात्रों में भी उत्साह एवं उत्तेजना का संचार करते हैं। अपनी बौद्धिक एवं वैचारिक सजगता के कारण ये अन्य पात्रों को भी सन्मार्ग पर ले आने का पुनीत कार्य करते हैं।

निराला ने यद्यपि स्त्री एवं पुरुष दोनों ही पात्रों का चित्रण बड़े मनोयोग से किया है किन्तु पुरुष पात्र की अपेक्षा उनके नारी चरित्र अधिक सजीव एवं सक्रिय हैं। निराला की ये नारी पात्राएँ सौन्दर्य एवं सुकुमारता की सजीव प्रतिमाएँ होते हुए भी प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने अद्भुत साहस, शौर्य, धैर्य, उत्सर्ग एवं सेवाभाव से पाठकों को अभिभूत कर देती हैं। यहाँ तक कि परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के कारण निराश एवं कमजोर हो गए पुरुष वर्ग को भी ऊपर उठाने का कार्य करती हैं। कहानियों में 'क्या देखा' की शान्ता, 'कमला' की कमला एवं वेदवती,

'सुकुल की बीवी' की पुष्कर कुमारी तथा उपन्यासों में 'अप्सरा' की कनक, 'अलका' की अलका 'प्रभावती' की प्रभावती एवं यमुना, 'चोटी की पकड़' की मुन्ना बाँदी ऐसी ही नारियाँ हैं।

निराला के आदर्श पुरुष पात्रों के चरित्र में सामाजिक जड़ मान्यताओं एवं रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित दिखाई देती है। वे अपने कार्य एवं व्यवहार से कुसंस्कारों से संघर्ष करते नजर आते हैं। 'निरुपमा' का कुमार उच्चकुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण होते हुए भी जूते पालिश का पेशा अख्तियार करता है, 'अप्सरा' का नायक राजकुमार समाज में अत्यन्त पतित मानी जाने वाली वेश्या-पुत्री कनक से विवाह करता है। 'पद्मा' कहानी का नायक, राजेन्द्र आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेता है, 'श्यामा' का बंकिम लोध-कन्या श्यामा से विवाह करता है एवं 'सुकुल की बीवी' के सुकुल मुसलमान कन्या पुष्करकुमारी से विवाह रचाते हैं।

निराला के नारी पात्र भी परंपरागत बंधन तोड़ने को आतुर दीखते हैं। ये नारियाँ अत्यन्त साहसपूर्वक अपने अधिकारों की रक्षा में संलग्न दिखाई देती हैं। इनमें नारी-सुलभ लज्जा, विनय, क्षमा, सहनशीलता के साथ-साथ पुरुषोचित साहस, धैर्य, वाक्पटुता, स्वाभिमान, तात्कालिक बुद्धि आदि गुणों का समन्वय मिलता है। 'अप्सरा' की कनक एवं तारा, 'अलका' की अलका, 'निरुपमा' की सावित्री देवी एवं निरुपमा, 'प्रभावती' की प्रभावती, यमुना एवं रत्नावली, 'काले कारनामे' में मनोहर की माता, 'चोटी की पकड़' की मुन्ना बाँदी, 'चमेली' की चमेली, 'पद्मा' की पद्मा, 'ज्योतिर्मयी' की ज्योति, 'कमला' की कमला एवं वेदवती, 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' की सुपर्णा एवं 'सुकुल की बीवी' की पुष्कर कुमारी आदि ऐसी ही नारियाँ हैं। अपनी-अपनी भूमिकाओं के अनुसार उनमें पारंपरिकता, रूढ़िवादिता, निर्ममता, कठोरता, कोमलता, ममता, सशक्तता, गरिमा, आधुनिकता, पुरातनता, संस्कारहीनता, प्रगतिशीलता, विलासिता आदि गुण परिलक्षित होते हैं।

निराला के सभी पात्र मनोविज्ञान के अनुरूप आचरण करते हैं। उनका मनोविश्लेषण कथाकार ने बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। निराला ने वर्गगत एवं व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के चरित्रों की अवतारणा की है। इनके वर्ग-चरित्र अपने वर्ग की अच्छाइयों-बुराइयों का प्रतिनिधित्व करते नजर आते हैं तो व्यक्ति चरित्र अपने वैशिष्ट्य के कारण कथा-साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते नजर आते हैं। कुछीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, स्वामी सारदानन्द जी महाराज, पगली आदि व्यक्ति पात्र हैं। वे लेखकीय कल्पना-प्रसूत न होकर सजीव एवं यथार्थवादी पात्र हैं। अपने वैशिष्ट्य के कारण ये निराला के अमर-चरित्र हैं।

जमींदारी सभ्यता के प्रतीक शोषक एवं शोषित दोनों ही वर्गों के पात्रों का चरित्र चित्रण कथाकार ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। जमींदारी एवं महाजनी सभ्यता के शोषक वर्ग के अन्तर्गत 'अप्सरा' के कुँवर प्रताप सिंह, 'अलका' के मुरलीधर एवं कृपानाथ, 'निरुपमा' के यामिनीहरण एवं योगेश बाबू, 'काले कारनामे' के रामसाखन, यमुना-प्रसाद एवं माधव मिश्र आदि पात्र आते हैं। इनमें जमींदारी सभ्यता के समस्त छल-छद्म, प्रपंच, क्रूरता, अत्याचार, शोषण, विलासिता जैसे गुण विद्यमान हैं। ये सभी शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। शोषित

वर्ग के प्रतिनिधि चरित्रों में 'चमेली' का दुखिया, 'श्यामा' का बुधुवा, 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' का विश्वम्भर आदि आते हैं।

निराला के अधिकांश पात्रों के नाम उनके गुणों के द्योतक रहे हैं। संस्मरणात्मक कहानियों में पात्र के रूप में स्वयं निराला भी उपस्थित रहे हैं। यों अपनी सभी कृतियों में किसी न किसी पात्र के माध्यम से निराला के विद्रोही तेवर प्रकट हुए हैं।

भाषा - शैली

किसी कृति के रचना-तत्वों में भाषा-शैली महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि इसी के माध्यम से रचनाकार अपने भावों एवं विचारों को संप्रेषित करता है। विचारों एवं भावनाओं की संवाहिका होने के कारण रचनाकार के वर्ण्य-विषय को पाठकों तक पहुँचाने में भाषा-शैली महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सहज-सरल, प्रभावपूर्ण, कहावतों-मुहावरों से ओत-प्रोत एवं पात्रानुकूल भाषा कृति की कला में निखार ला देती है। भाषा के परिधान से सुसज्जित होकर ही साहित्यकार की भावनाएँ एवं विचार आकर्षक रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं। अतः कृति की सफलता-असफलता का गुरुतर दायित्व भाषा-शैली की सामर्थ्य पर ही निर्भर करता है।

भाषा एवं शैली का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। भाषा में भावाभिव्यक्ति की जो पद्धति लेखक अपनाता है उसे ही शैली कहा जाता है। उपन्यास की श्रेष्ठता एवं कलात्मकता शैली की सहजता पर निर्भर करती है। रचनाकार के धैर्य एवं कलात्मक क्षमता की द्योतक शैली ही होती है। सामान्यतः अधिक लिखने वाले रचनाकार शैली की उपेक्षा करते हैं। इसलिए शैली का विषयानुरूप एवं कृति में अभिव्यक्त जीवन के उपयुक्त होना अत्यावश्यक है।

इसी तरह भाषा का भी पात्रानुकूल होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि किसी कृति का कोई ग्रामीण अशिक्षित पात्र प्रबुद्ध व्यक्ति या साहित्यकार की भाँति उच्चस्तरीय परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग करे तो रचना में अस्वाभाविकता उत्पन्न हो जाती है। पात्रों के सामाजिक स्तर, परिवेश एवं विद्या-बुद्धि के स्तर के अनुरूप भाषा का प्रयोग पात्रानुकूल माना जा सकता है। व्यक्ति एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ भाषा भी परिवर्तित होती है। अतः देश कालानुरूप भाषा का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यथार्थ का चित्रण करने वाली रचना की भाषा जन-जीवन से जुड़ी होने के कारण अधिक सहज एवं बोध-गम्य होती है। कुछ साहित्यकारों की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट एवं दुरूह होती है। इस तरह की भाषा परिमार्जित अथवा परिनिष्ठित भाषा की कोटि में परिगणित की जाती है किन्तु क्लिष्टता के कारण यह सहज बोधगम्य नहीं होती। रचनाकार के कथ्य को प्रभविष्णुता के साथ व्यक्त करने वाली एवं जन-सामान्य से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने वाली भाषा ही समर्थ साहित्यिक भाषा मानी जा सकती है। ऐसी आदर्श भाषा पाठक और रचनाकार के आत्मीय संबंध को और दृढ़ता प्रदान करती है। सामान्य अथवा परिमार्जित भाषा का चयन रचनाकार की अपनी रुचि पर निर्भर करता है।

निराला के कथा-साहित्य का भाषिक सौन्दर्य

निराला के कथा-साहित्य में भाषा के विविध रूप परिलक्षित होते हैं। वे मानते थे कि "भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छा मात्र से बदलने वाली देह है। रचना युद्ध कौशल है और भाषा तदनुरूप अस्त्र। इस शास्त्र का पारंगत वीर साहित्यिक ही यथासमय समुचित प्रयोग कर सकता है।"[१११] भाषा को रचना-युद्ध का अस्त्र स्वीकार करते हुए निराला उसकी स्वाभाविकता पर बल देते थे। उनका स्पष्ट मत था कि "प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय, शक्ति-सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुशयता, मृदुलता और छन्द-लालित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जायगा कि प्राणशक्ति उस भाषा में है।"[११२] इस तरह भाषा को जातीय जीवन से जोड़कर निराला उसकी सहज बोधगम्यता की ही पक्षधरता करते थे।

निराला के कथा-साहित्य की भाषा प्रेमचन्द-स्कूल की ही भाषा है। प्रेमचन्द की भाँति निराला के कथा-साहित्य में भी ग्राम्य जीवन एवं नगर-जीवन दोनों के विशद चित्र मिलते हैं। उनके कथा-साहित्य में समाज के विभिन्न वर्गों के पात्र मिलते हैं। एक ओर कनक एवं अलका जैसी सुशिक्षिता प्रगल्भ आधुनिकाएँ हैं वहीं दूसरी ओर बिल्लेसुर एवं चतुरी जैसे ग्रामीण अशिक्षित पात्र। इन दोनों वर्गों के जीवन स्तर, रहन-सहन एवं बुद्धि-विवेक के अनुरूप भाषा का प्रयोग निराला ने बड़ी कुशलता से किया है।

निराला का कथा-साहित्य विविध विषयों से संबद्ध है। उनके उपन्यास एवं कहानियों में कुछ सामाजिक हैं, कुछ ऐतिहासिक हैं, कुछ संस्मरणात्मक हैं तो कुछ में रेखाचित्रधर्मिता है। विषय के अनुरूप कहीं उनमें समाज की जटिल समस्याओं का निरूपण किया गया है, कहीं सामन्ती परिवेश का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है, कहीं राजा-रजवाड़ों की संस्कृति को प्रकट करने वाली ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि है तो कहीं अध्यात्म-चिन्तन की गहनता का वर्णन है। इन विविध भाव-भूमियों को अपने भाषायी-कौशल से निराला ने अत्यन्त सफलतापूर्वक अंकित किया है।

निराला के कथा साहित्य में पात्र भी विविध जातियों, समुदायों, वर्गों तथा भिन्न-भिन्न संस्कारों वाले हैं। उनकी भाषा का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर पता चलता है कि निराला में पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग की अद्भुत क्षमता है। पात्रों के अनुसार तत्सम, तद्भव, संस्कृतनिष्ठ, उर्दू-मिश्रित तथा अंग्रेजी शब्दों से युक्त भाषा की विविधता निराला के कथा साहित्य में देखी जा सकती है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' एवं 'कुल्लीभाट' जैसे संस्मरणपरक रेखाचित्रों में आंचलिक भाषा की छटा देखने को मिलती है तो 'अप्सरा' 'अलका' जैसे उपन्यासों में छायावादी-काव्य-भाषा का लालित्य दृष्टिगोचर होता है। 'प्रभावती' तथा 'चोटी की पकड़' में भाषा का परिमार्जित रूप देखने को मिलता है तो 'अर्थ', 'भक्त और भगवान' एवं 'देवी' जैसी कहानियों में भाषा का गंभीर

और दार्शनिक रूप परिलक्षित होता है। उनके सामाजिक उपन्यासों, कहानियों में भाषा का सहज, सरल रूप प्रकट हुआ है।

निराला के कथा-साहित्य का पृथक विवेचन उनकी भाषा-शैली की विशेषताओं को उद्घाटित करेगा –

अप्सरा

'अप्सरा' उपन्यास में वेश्या पुत्री को वैवाहिक बंधन में बंधते एवं पत्नीत्व की मर्यादा निभाते हुए दिखाया गया है। वेश्या जीवन के वैभव-विलास एवं दाम्पत्य जीवन के गरिमामय चित्र उपस्थित करने में निराला की भाषा-शैली का महत्वपूर्ण योगदान है। इस उपन्यास की भाषा में यथाप्रसंग छायावादी-काव्यात्मकता, अलंकृति, सहजता-सरलता, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का समावेश एवं व्यावहारिकता परिलक्षित होती है। सफल भावाभिव्यक्ति के लिए लेखक ने मन में जब जो शब्द उभर आए, उनका निस्संकोच प्रयोग किया है। इसलिए इसमें एक ओर श्रमित, पूजार्घ्य, प्रतिहत जैसे संस्कृत शब्द और आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ, पुष्प-विसर्जनोत्सव, श्रुति-सुखद जैसी सामासिक शब्दावली का प्रयोग मिलता है वहीं दूसरी ओर महफिल, पैदायशी, तहकीकात, नफरत, कुसूर जैसे अरबी-फारसी के शब्द एवं स्टेज, गेट, सेन्चुरी, एक्सेप्ट, ट्वेंटीवन जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। दृश्य-वर्णन एवं पात्र-वर्णन में जहाँ निराला का कवि हृदय भाव-विभोर हो उठा है वहाँ भाषा संस्कृतनिष्ठ, कवित्वपूर्ण हो गयी है। कनक के रूप-वर्णन में छायावादी-कवियों सी अलंकृत, सांकेतिक एवं ध्वनिमयी भाषा का उदाहरण द्रष्टव्य है –

"अपार अलौकिक सौन्दर्य, एकान्त में, कभी-कभी अपनी मनोहर रागिनी सुना जाता। वह कान लगा उसके अमृत-स्वर को सुनती पान किया करती। अज्ञात एक अपूर्व आनन्द का प्रवाह अंगों को आपाद-मस्तक नहला जाता। स्नेह की विद्युल्लता काँप उठती। ....अपनी देह के वृन्त अपलक खिली हुई ज्योत्स्ना के चन्द्र-पुष्प की तरह, सौन्दर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु डोल उठती।" (अप्सरा, नि.र., तृतीय खण्ड पृष्ठ २२)

"वह शुभ्र-स्वच्छ निर्झरिणी विद्या के ज्योत्स्ना-लोक के भीतर से मुखर शब्द-कलरव करती हुई ज्ञान के समुद्र की ओर अबाध बह चली।" (वही, पृष्ठ २३)

ग्रामीण स्त्रियों के भाषण में अवधी की सुकुमारता एवं प्रवाहमयी शैली द्रष्टव्य है –

"एक भावज ने कहा, 'देखो न, मारे ठसक के किसी से बोली ही नहीं। प्रभु से गरब कियो, सौ हारा, गरब किये वे बन को घुँघची, मुख कारा कर डारा। हमें तो बड़ी गुस्सा लगी पर हमने कहा, कौन बोले इस बेहूदी से।' दूसरी बोल उठी, इसी तरह तो औरत बिगड़ जाती है। जुबंटा है, ब्याह नहीं हुआ और अकेली घूमती है।" (वही, पृष्ठ १०७)

पात्रों की भाषा विविध भावों के अनुरूप वैविध्यपूर्ण है। कनक से वार्तालाप के समय जहाँ राजकुमार की भाषा भावपूर्ण है, वहीं हैमिल्टन साहब से तर्क करते समय उसकी भाषा स्वभावतः ओजमयी हो गयी है।

छायावादी कवि होने के नाते निराला ने अनेक नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। यथा:

(क) "कनक कमल की कली की तरह संकुचित खड़ी रही।" (अप्सरा, पृष्ठ ९१)

(ख) "शहद की मक्खियों की तरह दारोगा की आँखें उससे लिपट गईं।" (अप्सरा, पृष्ठ २८)

(ग) "सबकी आँखों के सन्ध्याकाश में जैसे सुन्दर इन्द्रधनुष अंकित हो गया।" (अप्सरा पृष्ठ २६)

निराला ने प्रसंगानुकूल हास्य-व्यंग्य-शैली, चित्र-शैली आदि अनेक शैलियों का प्रयोग किया है किन्तु काव्यात्मक शैली के प्रति वे अधिक आग्रही रहे हैं लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से व्यंग्य-प्रधान-शैली की चमत्कृति द्रष्टव्य है।

चन्दन राजकुमार से कहता है – "उठो, अघोर-पंथ से घिनवाकर लोगों को भगाओगे क्या? जैसा पाला साबुन और एसेंस पंथियों से पड़ा है, तुम्हारे अघोर-पंथ के भूत उतार दिए जाएँगे।" (अप्सरा - पृष्ठ १०२)

इसी तरह रंगमंच पर अभिनय के लिए आई हुई कन्याओं के संदर्भ में चित्र-शैली सजीव हो उठी है – "कोई छः फीट ऊँची, तिस पर नाक सदारद। कोई डेढ़ ही हाथ की छटंकी, पर होंठ आँखों की उपमा लिये हुए आकर्ण-विस्तृत। किसी की साढ़े तीन हाथ की लम्बाई चौड़ाई में बदली हुई – एक-एक कदम पर पृथ्वी काँप उठती। किसी की आँखें मक्खियों-सी छोटी और गालों में तबले गढ़े हुए। किसी की उम्र का पता नहीं, शायद सन् ५७ के गदर में मिस्टर हडसन को गोद खिलाया हो।" (अप्सरा - पृष्ठ २६)

निराला की प्रथम औपन्यासिक कृति 'अप्सरा' की भाषा में लाक्षणिकता है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार – "निरालाजी का यह उपन्यास काव्यत्व के भार से दबा हुआ है।"[५४] वस्तुतः एक सफल एवं समर्थ कवि होने के कारण निराला के उपन्यास काव्यात्मक कल्पना की अतिशयता से मुक्त नहीं हो पाए हैं।

अलका

'अलका' उपन्यास की भाषा शैली पर विचार करते हुए कहा जा सकता है कि निराला वाणी के धनी रहे हैं। छायावादी प्रभाव से युक्त होते हुए भी अप्सरा की अपेक्षा अलका की भाषा अधिक स्वाभाविक प्रतीत होती है। इसमें काव्यात्मकता अपेक्षाकृत कम है एवं वाक्य-विन्यास में भी संक्षिप्तता तथा व्यावहारिकता को प्रमुखता दी गयी है। भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी आदि भाषाओं के प्रचलित शब्दों का तो उदारता पूर्वक प्रयोग किया ही है साथ ही तद्भव एवं देशज शब्दों का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग कर कृति की स्वाभाविकता की रक्षा की है। उदाहरणतः उपन्यास में स्टेशन, टिकट, कमिश्नर, रैकेट आदि अंग्रेजी शब्द, मंजिल, ताजुब, मुनाफा, खिजाँ आदि अरबी-फारसी के शब्द तथा तड़के, पाहुना, पैठना जैसे ग्रामीण दैनिक बोलचाल के शब्दों का प्रयोग हुआ है। शुभ्र, निक्वणों, ज्योत्स्ना, स्निग्ध जैसे संस्कृत शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया गया है यद्यपि संस्कृत शब्दों की मात्रा

'अप्सरा' की अपेक्षा कम है। उमड़-उमड़कर, घूम-घूमकर, सहस्र-सहस्र जैसे आवृत्तिमूलक शब्दों का प्रयोग करने से भाषा के अर्थ-गौरव में अभिवृद्धि हुई है।

रूप-वर्णन एवं प्रकृति-वर्णन में जहाँ निराला का कवि-हृदय प्रबल हो उठा है वहाँ भाषा संस्कृतनिष्ठ हो गई है तथापि वहाँ भी भाषा की सरसता, मोहकता एवं रमणीयता द्रष्टव्य है :

''बाल खोले दिन में शिशिर की स्नात-ज्योत्स्ना रात-सी स्निग्ध, शुभ्र-वसना, सुकेशा शोभा उदार, अपलक दृष्टि से न जाने क्या मन ही मन देख रही थी, किसी दूरतर लक्ष्य की ओर क्षिप्र दृष्टि, ऐसे समय एक बार फिर इस गायत्री हो, विद्या ही-सी चमकती, जल-जड़ से उभड़कर आयी चिन्मयी मूर्ति को स्नेहशंकर ने देखा – मुख की प्रभा तथा सघन केशों के अन्धकार में दिन और रात का दिव्यार्थ रूपक।'' (अलका - पृष्ठ १४९)

''वर्षा के धुंधले, काले-काले दिगन्त तक फैले हुए बाल धीमी-धीमी हवा में लहरा रहे हैं। उसने सारे संसार को सुख के आलिंगन में बाँध लिया है। प्रसन्न मुख जड़ और चेतन प्रतिक्षण प्रणय के सुख में तन्मय हैं। पक्षियों के सहस्रों वरभंग निस्तरंग शून्य-सागर को क्षुब्ध कर-कर उसी में तरंगाकार लीन हो रहे हैं। गुच्छों में खुली अधखुली किरणों की कलियों-सी युवती-तरुणी-बालिकाएँ, जगह-जगह हिंडोरों पर झूलती हुई, इसी प्रकार जनता के समुद्र को सुहावने सावन, मल्हार, कजली और बारामासियों से समुद्वेल कर रही हैं। सुप्ति के स्वप्न में भारत जगने का दुःख भूल गया है।'' (अलका - पृष्ठ १९८)

ऐसे वर्णनों में उपमा-रूपक की छटा एवं शैली की चित्रात्मकता देखते ही बनती है।

परिमार्जित एवं परिनिष्ठित भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

''मुरलीधर के रस की रास-लीला ऐश्वर्य की शुभ्र शारद ज्योत्स्ना में सारंगी में सप्त स्वरों, नूपुर-निक्वणों और नेत्रवीक्षणों से मधुमय क्षण-क्षण मर्त्य को लोगों की चिर कामना के स्वर्ग में बदलने लगी।'' (अलका- पृष्ठ १४४)

ग्रामीण पात्रों की भाषा में आंचलिकता का पुट जिनमें अवध का रंग निखर उठा है –

''बड़ी बातें न बघार'' सुक्खू के भाई लक्खू ने कहा, 'सरकार ने तोप के बल हिन्दुस्तान फते किया है, जबानी कैफियत से न छोड़ देगा, साले, कर देगा रपोट चौकीदार, तो चूतड़ की खाल निकाल ली जायगी, बकने दो इनको आर्य-वॉय अभी शेर हैं, जमींदार के सामने चूहे बन जाएंगे, नहीं तो चलेगा हण्टर डिल्लीवाला।' (अलका- पृष्ठ १५६)

ऐसे वर्णनों में भाषा का मिश्रित रूप उभरा है। सुराज, रपोट, कम्पू जैसे तद्भव शब्दों के प्रयोग से भाषा में सरलता एवं स्वाभाविकता आ गई है। देवता कूच कर गए, टेढ़ी उँगलियों से घी निकालना, जिसकी लाठी उसकी भैंस आदि मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में रोचकता की सृष्टि हुई है।

शैली की दृष्टि से इसमें वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, काव्यात्मक आदि शैलियों का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। इनके साथ-ही-साथ यथाप्रसंग अलंकार शैली, सूक्ति शैली एवं

व्यंग्य शैली भी प्रयुक्त हुई है। लेखक ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी', 'पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः' जैसी संस्कृत सूक्तियों का तो प्रयोग किया ही है साथ ही स्वयं भी सूक्तियों की रचना कर अपने भाषायी-ज्ञान का वैभव प्रकट किया है – "शक्ति के संयम में जितना दुःख, जितनी साधना है, उतना दुःख, उतनी साधना बेमेल शक्तियों की प्रतिक्रिया में नहीं।"

व्यंग्य-शैली के प्रयोग से भाषा में रोचकता एवं पैनापन आ गया है। यथा –

"सुना है, गिरगिट दिन-भर में बहुत से रंग बदलता है, आप तो आदमी हैं, एक रोज कोट उतारकर कमीज पहने हुए खेल लीजिए, हम लोग खिजां को बहार समझ लेंगी।"

"कांग्रेस का हाल पूछो मत। यहाँ जो महाशय त्रिवेणीप्रसाद हैं वह दोनों तरफ रंगते हैं, ऐसे जीव हैं।" (अलका, पृष्ठ १५६)

"गृहिणी ने पति से पूछा – ये नेता कौन जात के होते हैं? कोई जात है इनके? रंगे स्यार हैं, पेट का धंधा एक कर रखा है। गंभीर उत्तर मिला।" (अलका, पृष्ठ १६४)

वर्णन-शैली में आलंकारिकता के प्रयोग से प्रभावोत्पादकता उत्पन्न हो गई है। यथा–

"प्रणाम कर बीरन बुधुवा का हाल बयान करने लगा। कवि न होने पर भी प्रहार के वर्णन में उसने पूरा कवित्व प्रदर्शित किया – रूपक से रूप बाँधकर अत्युक्ति में समाप्त किया। आवेश में उसे यह भी न सूझा कि इतनी मार का वर्णन जिह्वाग्र द्वारा होता है, या कोई मनुष्य वास्तव में इतनी मार सह सकता है।" (अलका, पृष्ठ १५२)

प्रसंगानुसार तर्क वितर्कमयी शैली एवं व्यवहारोचित शैली का प्रयोग भी लेखक ने किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल एवं भावानुकूल भाषा-शैली के प्रयोग से 'अलका' उपन्यास की यथार्थवादिता की रक्षा की गयी है।

प्रभावती

'प्रभावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित रोमैण्टिक उपन्यास है। निराला ने अपने भाषा-कौशल से तत्कालीन जीवन तथा सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियों का सजीव चित्र उपस्थित किया है। इसमें इतिहास एवं कल्पना के मिश्रण से ऐसी भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है कि कथा में रोचकता एवं मनोरंजकता बनी रहती है एवं कोरे इतिहास की शुष्कता कृति में परिलक्षित नहीं होती। ऐतिहासिक रोमांस को सजीव बनाने में कृति के भव्य वर्णन पर्याप्त सहायक हुए हैं। 'प्रभावती' की भाषा-शैली के सम्बन्ध में प्रथम संस्करण की भूमिका में निराला ने स्वयं लिखा है –

"भाषा खड़ी बोली, खिचड़ी-शैली में होने पर भी, कुछ अधिक मार्जित है, प्राचीनता का वातावरण रखने के लिए। अपढ़ लोगों के वार्तालाप में अवधी मिली है। उस समय की भाषा का प्रयोग वर्तमान साहित्य में नहीं किया जा सकता।" (प्रभावती, पृष्ठ २२९)

भाषिक संरचना की दृष्टि से 'प्रभावती' उपन्यास निराला के प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' के अधिक निकट है। छायावादी आलंकारिकता एवं सुकुमारता अपनी पूर्ण साज-सज्जा के साथ यहाँ प्रकट हुई है। नारी एवं प्रकृति के सौन्दर्य-चित्रण में स्वच्छन्दतावादी रचनाओं की सी अतिशय कल्पना एवं भावुकता के दर्शन होते हैं। यथा – "पृथ्वी के हरे तरंगित वृक्षों की सब्ज जल-राशि के भीतर यह कमला-सी खुली स्वरूपा कुमारी, अकृत अज्ञात भी कैसे मौन इंगित से, प्रतिक्षण आमंत्रण दे रही है। नयनों की मौन महिमा में भी असंख्य गहरे अर्थ छिपे हुए हैं। बिना शब्द के, सौन्दर्य की कैसी कर्मवेधिनी व्याख्या है। कोमल पद पीनोरु दीर्घ मध्य को धारण किये, क्षीण कटि, सुमुन्नत विशाल वक्ष-कर्म को भेदकर पुष्ट मांसलता स्पष्ट होती हुई, लम्बित भुजाएँ, कपोत-ग्रीवा, पक्ष्मल रहस्यमयी बड़ी-बड़ी तिर्यक आँखें, चितवन बहुत दूर आकाश की ज्योत्सना की तरह किसी के तृषित हृदय-चकोर के लिए उतर रही है। यह वीरवेश इस विजयिनी छवि के रक्षक की तरह।" (प्रभावती, पृष्ठ २३४)

ऐसा प्रभावशाली रूप-चित्रण संस्कृत कवियों का स्मरण करा देता है। तत्सम शब्दों के आधिक्य के कारण कहीं-कहीं भाषा में अस्पष्टता एवं क्लिष्टता का समावेश भी हो गया है। उदाहरणतः –

"सर्वैश्वर्यमयी स्वर्ग की लक्ष्मी भक्त पर प्रसन्न होकर स्वर्ग से उतरना चाहती है, मौन हिमाद्रि किरण-विच्छुरितच्छवि गौरी को परिचारिकाओं के संग बढ़ाकर आकाश-रूप शंकर को समर्पित करना चाहता है, विश्वप्लाविनी इस मौन ज्योत्सना-रागिनी की साकार प्रतिमा अपनी मूर्त झंकारों के साथ निष्पन्द खड़ी जीवन-रहस्य का ध्यान कर रही है।" (प्रभावती, पृष्ठ २४५)

प्रकृति-वर्णन के प्रसंगों में भाषा की कलात्मकता एवं रमणीयता के दर्शन होते हैं –

"दिन का तीसरा प्रहर है। गोमती धीरे-धीरे बह रही है। सामने वन की हरियाली दूर तक फैली हुई और जगह-जगह झाड़, छोटे-बड़े पेड़, ढाक और जंगली वृक्षों का वन। चिड़ियाँ एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को पार करती हुई। मधुर-मधुर हवा संसार के स्थावर और जंगम सभी को हृदय से लगाकर शान्त करती थी। सूर्य की स्वर्णिम किरणें सुनहली दृष्टि से विश्व के प्रतिचित्र को देखती हुई।" (प्रभावती, पृष्ठ ३३०)

ग्रामीण पात्रों की भाषा में ठेठ अवधी का रूप निखरा है। यथा –

"बीच में न टोक, यह कह कि तेरे बड़े भाग रहे जो प्रातः काल उठकर बराँभन का मुँह देखेगी। हैं, चिड़िया का मरना, लड़कों का खेलवाड़। बड़ी समझदार बनी घूमती हैं। पड़ी होती आज वाले चक्कर में तो मक्कर भूल गये होते।" (प्रभावती, पृष्ठ २७५)

इस तरह पात्र एवं प्रसंग के अनुकूल कहीं संस्कृत के क्लिष्ट एवं तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है तो कहीं कैफियत, तलब, मंजिल, फासला आदि अरबी-फारसी के शब्दों का, कहीं आसिरवाद, बराँभन, ससप, सोहाग जैसे तद्भव शब्दों के प्रयोग से आंचलिकता का रंग उभरा है। तीन-पाँच करना, पैर जमना, एक पन्थ दो काज एवं सूई के छेद से हाथी निकलना जैसे

मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में अर्थ-गाम्भीर्य उत्पन्न हुआ है। पात्रों के स्तर के अनुरूप भाषा में विभिन्नता प्रकट होती है। सामान्य पात्रों की भाषा में देशज एवं तद्भव शब्दों की बहुलता है तो राजकुमार देव एवं प्रभावती जैसे उच्चवर्गीय पात्रों की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं परिमार्जित है।

प्रसंगानुसार उपन्यास में काव्यात्मक, आलंकारिक, वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, चित्रात्मक व्यंग्य एवं संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

राजप्रासादों की भव्यता के चित्रण में शैली वर्णनात्मक एवं चित्रात्मक है। उदाहरणतः "मणि-फलित सहस्रों दीप के आलोक से प्रमोद-भवन झलमला रहा है। देहरी, द्वार, खम्भे पटाव से लेकर समस्त वस्तुएँ, राजासन आदि भारत की श्रेष्ठ कारीगरी के आदर्श। चारों ओर से द्वार मुक्त। ....भीतर और बाहर की समस्त दृश्यावली, तारकाखचित आकाश तक, जैसे इस महाशक्ति को मानकर नत होती हुई आज्ञापूर्ति के लिए सन्नद्ध है – महाराजाधिराज के मनोरंजन के लिए उद्यत। सारे पर मुख-स्पर्श बिस्तर लगा। पान और पात्र राजासन के सामने मणिपीठ पर रक्खे हुए। प्रवेश द्वार पर सशक्त सिपाहियों का पहरा।' (प्रभावती, पृष्ठ २९०)

व्यंग्य शैली एवं संवाद शैली का सरस समन्वय निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है –

"युवती ने पानों की तश्तरी महाराज की ओर बढ़ाई। महाराज ने हाथ जोड़कर खिंचते हुए कहा – हम पर तो दूर से दया करो। 'अच्छा' युवती महाराज की भाषा से प्रान्त-देश का निश्चय कर हँसती हुई बोली, 'आँख' लड़ाते वक्त दूरी का ख्याल न था। महाराज ने जनेऊ निकालकर कहा – 'यह देख लेव। ...छानबे की कसम कहीं बिना जाने पान नहीं खाते।' युवती वैसी ही हँसती आँखों देखती हुई बोली – लेकिन हमारे हाथ के तो दाना-पानी दोनों चलते हैं।"

(प्रभावती, पृष्ठ २७३)

इस तरह प्रभावती की भाषा-शैली रोचक, सरस है। इसकी भाषा-शैली के सम्बन्ध में डा० गोपाल राय का मन्तव्य है – "काव्यात्मक और अलंकृत वर्णनों को इतना अधिक महत्व मिला है कि इसे ऐतिहासिक उपन्यास की अपेक्षा ऐतिहासिक गद्य-काव्य कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।"[१०]

निरुपमा

'निरुपमा' सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास है जिसमें दो भिन्न समाजों (बंगला भाषी एवं हिन्दी भाषी) के विषय को एक कथा-सूत्र में पिरोया गया है। उपन्यास में नगर एवं ग्राम्य दोनों के जीवन का विशद वर्णन है। इस भिन्नता की रक्षा करने में उपन्यास की भाषा-शैली का विशिष्ट स्थान है।

इस उपन्यास में भाषा की सरलता एवं स्वाभाविकता के प्रति निराला सजग रहे हैं। ग्राम्य जीवन के चित्रण में जहाँ प्रेमचन्द स्कूल की भाषा का प्रयोग किया गया है वहीं निरुपमा के रूप

वर्णन में प्रसाद स्कूल की भाषा का आश्रय ग्रहण किया गया है किन्तु ऐसे स्थल अत्यल्प हैं। भाषा-शैली पर कहीं-कहीं बंगला का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। विचलित, स्खलित, समुद्भासित, कुटिल भ्रू-क्षेप जैसे तत्सम शब्दों का कहीं-कहीं प्रयोग अवश्य हुआ है किन्तु इससे कथा-शिल्प प्रभावी ही हुआ है। अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग लेखक ने खुलकर किया है। चान्सलर, वाइस चान्सलर, प्रोफेसर, थीसिस, कलक्टर, रजिस्ट्री, ग्राउण्ड, यूनिवर्सिटी, लेक्चरर जैसे अंग्रेजी भाषा के शब्दों के अलावा कहीं-कहीं अंग्रेजी वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है। उच्च शिक्षित पात्रों के मुख से इस प्रकार की भाषा का प्रयोग होने के कारण कृति की स्वाभाविकता में वृद्धि ही हुई है। यत्र-तत्र इख्तियार, मुख्तारआम, दुश्वार, शिद्दत जैसे उर्दू-शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। ग्राम्य-जीवन एवं समाज के चित्रण में पलागों, धरम, दच्छिना, जिमींदार, बरम भोज जैसे तद्भव एवं गड़ही, सीर, उबहनी, फैंटिया, गुइयाँ जैसे देशज शब्दों के प्रयोग से वातावरण सजीव एवं साकार हो उठा है। संस्कृत के कठिन तत्सम शब्दों एवं सामासिक शब्दावली का प्रयोग यद्यपि नहीं के बराबर हुआ है तथापि स्थान-स्थान पर भाषा अलंकृत अवश्य है। इससे कथाकार के परिनिष्ठित गद्य का रूप ही उभरा है।

ग्रीष्म की भयानकता का वर्णन करने के लिए परिमार्जित भाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है –

''लखनऊ में शिद्दत की गर्मी पड़ रही है। किरणों की लपलपाती दुबली-पतली असंख्यों नागिनें तरु लता-गुल्मों की पृथ्वी से लिपटी हुई कण-कण को डस रही हैं। उन्हीं के विष की तीव्र ज्वाला, भाप में उड़ती हुई, हवा में लू होकर झुलसा रही है। तमाम दिन बड़े-बड़े लोग खस-खस की तर टट्टियों के अन्दर बन्द रहकर काम और आराम करते हैं।'' (निरुपमा, पृष्ठ ३४१)

नारी के हाव-भावादि के अंकन में भाषा की भावात्मकता एवं प्रतीकात्मकता स्फुटित हुई है। यथा –

''मकान के भीतर से मधु-माधवी की एक लता ऊपर तक चढ़ी हुई प्रभात के वायु से हिल-हिलकर फूलों में हँस रही थी। उसी की फूली दो शाखाओं के अर्द्धवृत्त के भीतर से देखती हुई दो आँखें कुमार की आँखों से एक हो गईं – उसकी कल्पना जैसे सजीव, परिपूर्ण आकृति प्राप्त कर सामने खड़ी हो। ...सारी देह लता की आड़ में छिपी हुई, मुख लता के दो भुजों के बीच, जैसे छिपने का पूरा ध्यान रखकर खड़ी हुई हो।'' (निरुपमा, पृष्ठ ३४३)

मधुर-प्रसंगों के समय भाषा में माधुर्य गुण, लक्षणा और व्यंजना शक्ति तथा प्राकृतिक उपमानों की अनुपम छटा देखते ही बनती है –

''कुमार के देखते ही युवती लजा गयी ....आँखें झुक गईं, होंठों पर पकड़ में आने की सलाज मुस्कराहट फैल गयी। सामने मधु-माधवी की लता हवा में हिलने लगी। पीछे सूर्य अपने ज्योतिमंडल में मुख को लेकर स्पष्टतर करता हुआ चमकता रहा.... वहाँ एक रूप ने दूसरे रूप को – आँखों ने सर्वस्व-सुन्दर आँखों को चुपचाप क्या दिया ...मौन के इतने बड़े महत्व को मुखर भाषा कैसे व्यक्त कर सकती है।'' (निरुपमा, पृष्ठ ३४३)

ग्राम्य जीवन के चित्रण में पात्रानुकूल अवधी भाषा के प्रयोग से स्थानीय रंग उभरा है –

"गुरुदीन गर्म पड़कर बोले, 'धिक्कार है उसको, जो धर्म छोड़कर जिया।' गाँव में रहना मोहाल न कर दिया तो छानबे नहीं।" (निरुपमा, पृष्ठ ३६६)

"फिर बेटा जूता गाँठे, अम्मा खाल सेहलावे।" (निरुपमा, पृष्ठ ३६६)

संस्कृत उद्धरणों एवं मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा भाषा में चारुता की सृष्टि भी दर्शनीय है। यथाप्रसंग 'कर्मण्येवाधिकारस्ते', 'यां चिन्तयामि सततम्', 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत', 'आपतकाले मर्जादा नास्ति' जैसे संस्कृत के एवं 'राजा जोगी अगिन जल इनकी उलटी रीति', 'आए थे हरि भजन को ओटन लगे कपास', जैसी लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा अधिक रोचक एवं सजीव हो उठी है।

उपमानों के प्रयोग में लेखक को कमाल हासिल है। यथा –

"हटाई हुई काई की तरह स्त्रियाँ फिर सिमट आईं।" (निरुपमा, पृष्ठ ३७२)

"निरू पालतू चिड़िया की तरह बैठी रही।" (निरुपमा, पृष्ठ ४१२)

"कमल सन्ध्या के पश्चिमाकाश की तरह रंग गई।" (निरुपमा, पृष्ठ ३६२)

इस तरह के उपमान बिम्ब-निर्माण में सहायक रहे हैं।

शैली की दृष्टि से इसमें वर्णनात्मक, व्यंग्य-विनोद, आलंकारिक एवं मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है। व्यंग-शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

"गाना तो तुम लोगों का है, यानी स्वर जिन्हें स्वर्गीय दान के तौर पर बारीक मिला हुआ है, पुरुषों का गाना तो - बात यह है कि ईश्वर ने स्त्रियों के कण्ठ में वीणा बाँधकर उन्हें पृथ्वी पर उतारा है और पुरुषों के गले में हण्डी।" (निरुपमा, पृष्ठ ३९९)

मनोविश्लेषणात्मक शैली के प्रयोग द्वारा मन में उठने वाले भावों का शृंखलाबद्ध चित्रण किया गया है –

"देवी सावित्री के मन में अनेक प्रकार के भाव आए। उन्होंने निरू को स्नेहवश होकर बुलाया था, वह जमींदार है यह सोचकर नहीं। पर वह नहीं आई। तो क्या रामचन्द्र के लिए उसने कल जो कुछ कहा था, उसे सहायता देने की जो उदारता दिखाई थी, वह इसलिए कि रामचन्द्र एक गरीब विद्यार्थी है, और वह उस पर दया करने वाली उसके गाँव की मालकिन। ....मुमकिन उसके भाई ने उसे रोका हो।" (निरुपमा, पृष्ठ ३८१)

इसी तरह निरुपमा और यामिनी बाबू के वार्त्तालाप में वाक्य-वैदग्ध्य परिलक्षित होता है–

"बराबर आकर निरू की ऊँगलियाँ, देखते हुए बोले, खूबसूरत ऊँगलियों की चम्पे से उपमा दी जाती है।"

"हाँ उसी वक्त मुँह फेरकर निरू ने कहा, देह के रंग से भी, पर मुझे बड़े चमगादड़ के पंजे-सा लगता है।" (निरुपमा, पृष्ठ ३४८)

भाषा शैली की दृष्टि से 'निरुपमा' अधिक यथार्थवादी रचना बन पड़ी है। पात्रानुकूल, भावानुकूल एवं प्रसंगानुकूल भाषा-शैली के प्रयोग के कारण यह उपन्यास सफल ठहरता है।

चमेली

'चमेली' निराला का अपूर्ण उपन्यास है जो ठेठ हिन्दुस्तानी भाषा के प्रयोग के कारण विशिष्ट माना जाता है। यह घोर यथार्थवादी रचना है जिसमें ग्रामीण जीवन की दुर्बलताओं एवं कुत्सा का नग्न चित्र उपस्थित किया गया है। ठेठ ग्रामीण जीवन की आत्मा का सजीव चित्र उपस्थित करने में 'चमेली' की भाषा शैली का महत्वपूर्ण योगदान है।

'अलका', 'प्रभावती' जैसे उपन्यासों में भी लेखक ने ग्रामीण भाषा का यथा-स्थान प्रयोग किया है किन्तु उनकी अपेक्षा 'चमेली' में देशज शब्दों की बहुलता है। घोड़िवा, औगी, मड़नी, रास, सीला, गूला, पट्ठा, तेलवाई, कुंवटा, धिंगरी, लतखोरे, लिसाही, संपटी, फटके, देहरी, कनवा, टेटर, आसनाई जैसे देशज शब्द नागरिक समाज में अप्रचलित होने के कारण सहज बोध-गम्य नहीं है। इनके अतिरिक्त उपन्यास में खड़ी बोली के देशज शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। जैसे – सुभाव, उजाली, लच्छिमी, सुद्द, सुरों आदि। यथा-कदा उर्दू के कर्ज, मर्तबे, दफा, ताअज्जुब, बुलन्द, तमस्सुख, खिलाफ जैसे अत्यन्त प्रचलित शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया गया है।

उपन्यास में कहीं-कहीं पूरा वाक्य ही देहाती भाषा का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे स्थलों पर स्थानीय रंग पूरी गहराई से प्रकट हुआ है। भैरू का निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य है –

"अपनाव से बोलीं, तुम्हें नहीं जाना वहाँ, जमींदार का मामला है। इसकी बेटी चमेलिया को महादेवना ने ऽाय दोख लगा है। सिपाही बखतावर सिंह ने देखा था, महादेवना ने मारा है, जिमींदार ने रपोट लिखवायी है, कल थानेदार की अवाती है।" (चमेली, पृष्ठ २५७)

संज्ञा-शब्दों के पीछे 'आ' लगाकर लेखक ने ग्रामीण भाषा की स्वाभाविकता को उभारा है। गालियों एवं मुहावरों का प्रयोग स्वाभाविक व्यंजना के लिए किया गया है।

उपन्यास में प्रसंगानुसार वर्णनात्मक, चित्रात्मक एवं व्यंगात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

इस उपन्यास में काव्यात्मक-भाषा-प्रयोग के मोह से पूरी तरह उबरकर निराला ने अलंकारविहीन मुहावरेदार भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। पंत जी के शब्दों में "इसमें निराला जी एक समाज का अपनी सीधी बामुहावरे और कहीं-कहीं व्यंजनापूर्ण ठेठ हिन्दुस्तानी भाषा में सच्चा चित्र उपस्थित करने में पूरी तरह से सफल हुए हैं।

कला की दृष्टि से भी वे अपनी शैली को निबाहने में पूर्णतः सफल हुए हैं।"[१३८]

इसी भाषा-शैली का परवर्ती विकास रांगेय राघव की 'गदल' कहानी एवं 'कब तक पुकारूं' जैसे उपन्यास में देखा जा सकता है।

चोटी की पकड़

'चोटी की पकड़' यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें समाज के विभिन्न वर्गों के पात्रों का

चित्रण हुआ है। अत: इसकी भाषा में भी व्यावहारिकता एवं सरलता का समावेश हुआ है। अपने पूर्ववर्ती 'अप्सरा' 'अलका' आदि उपन्यासों में निराला ने जहाँ संस्कृतनिष्ठ, सामासिक शब्दावली से युक्त मधुर काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया था वहीं इस उपन्यास में अतिशय व्यावहारिक भाषा प्रयुक्त हुई है।

उपन्यास में मुसलिम पात्रों की बहुलता होने के कारण उर्दू के शब्दों का आधिक्य है किन्तु वे सहज बोधगम्य हैं एवं उनसे सामन्ती परिवेश की विलासिता एवं नजाकत सजीव रूप में अभिव्यक्त हुई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है – 'यूसुफ फतहयाब थे - उनकी शर्तें कुबूल कर ली गयीं। गुरूर से कदम उठ रहे थे।' (चोटी की पकड़, पृष्ठ १३३)

निम्न मध्यवर्गीय पात्रों की भाषा में मनीजर, घन, मिहनताना जैसे तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा को पात्रानुकूल तथा व्यावहारिक बनाने के प्रयास में कहीं-कहीं रंडी, भड़ुवा, उल्लू जैसे शब्दों का प्रयोग भी कथाकार ने खुलकर किया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का अतिशय प्रयोग इस उपन्यास की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है। बोल नहीं फूटना, पानी उतारना, आँख बचाकर चलना, साँप भी मर जाए लाठी भी न टूटे आदि मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा अधिक सजीव एवं स्वाभाविक हो उठी है। कुछ स्थलों पर भाषा का आलंकारिक प्रयोग दर्शनीय है। यथा :

"सूरज की मीठी किरणें शबनम के फर्श पर जोत का समन्दर लहरा रही थीं।"

(चोटी की पकड़, पृष्ठ १४६)

"धीमी-धीमी हवा चल रही थी जैसे साक्षात् कविता बह रही हो।"

(चोटी की पकड़, पृष्ठ १५५)

'चोटी की पकड़' में वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली की प्रधानता है। वातावरण चित्रण में विश्लेषणात्मक एवं व्यंगात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। नारी सौन्दर्य के अंकन में रेखाचित्र-शैली अपने यथार्थ रूप में अंकित है।

"बुआ की उम्र पच्चीस होगी। लम्बी सुतारवाली बँधी पुष्ट देह है। सुदर गला, भरा उर। कुछ लम्बे मांसल चेहरे पर छोटी-छोटी आँखें, पैनी निगाह।" (चोटी की पकड़, पृष्ठ १२१)

सम्पूर्णत: कहा जा सकता है कि 'चोटी की पकड़' की भाषा-शैली निराला के अभिव्यंजना शिल्प में एक नवीन मोड़ की सूचना देती है। इसी प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग निराला ने अपने रेखाचित्रों में किया है।

काले कारनामे

'काले कारनामे' ग्राम्य-जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित एक यथार्थवादी उपन्यास है। जमींदारों एवं महाजनों के छल-कपट, झूठे दाँव-पेंच एवं उनके काले कारनामों का पर्दाफाश करने में उपन्यास की भाषा-शैली का महत्वपूर्ण योगदान है।

'काले कारनामे' उपन्यास की भाषा-शैली की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सहजता, सरलता, स्वाभाविकता एवं व्यावहारिकता है। काव्यमयी भाषा, एवं अलंकृत वर्णनों के व्यामोह से निराला यहाँ पूरी तरह मुक्त दिखायी देते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अत्यन्त नगण्य है। ग्रामीण कथा के अनुरूप इसमें देशज एवं तद्भव शब्दों की बहुलता है। चूँकि तत्कालीन लोक जीवन में उर्दू भाषा पूरी तरह घुल-मिल गई थी, इसलिए अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्राधान्य उपन्यास में दिखायी देता है। हमराम, हकीकत, मामला, हैसियत, बर्ताव, मातहत, गर्ज, तौहीन, रिश्ता, कौम, जाहिर, बगावत, जब्त, दहशत, तजवीज, दर्ज, बेलज्जत, पशोपेश, तअल्लुक, लिहाजा, गैरहाजिरी जैसे उर्दू शब्द भाषा का स्वाभाविक अंग बन कर आए हैं। इनसे भाषा की व्यावहारिकता प्रकट होती है।

ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित करने के लिए तद्भव एवं देशज शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया गया है। रपोट, मरजाद, डाँड़ जैसे तद्भव शब्दों के अलावा, लहालोट, पिसान, बिछलहर, धूनिया, पुरवैया, सुभीता, गोजाह, लुच्चई, पछाँह, बमचख, गोड़इत जैसे देशज शब्दों के प्रयोग से स्थानीय रंग उभरा है।

मुहावरों का कथाकार ने खुलकर प्रयोग किया है। दिल धड़कना, माथा ठनकना, आँखें चार होना, टेढ़ी खीर, अकेले चने का भाड़ फोड़ना, करवटें बदलना, उधेड़-बुन में रहना, तारे गिनना, दूध की लाज रखना, समाँ बदलना, पेट ऐंठना जैसे मुहावरों के प्रयोग से भाषा की जन-जीवन से संपृक्ति का पता चलता है। उपन्यास की भाषा में प्रसाद और ओज गुण की प्रधानता है। सामान्य बोलचाल में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

शैली की दृष्टि से इसमें वर्णनात्मक, विवरणात्मक, चित्रात्मक, विश्लेषणात्मक एवं संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। ग्रामीण परिवेश को जीवन्त करने के लिए चित्रात्मक शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है –

"दोनों पगडण्डी पकड़े हुए बढ़ते गये। एक बगल बागों की कतार, दूसरी बगल खेत। बागों से चिड़ियों की चहक सुन पड़ती हुई। गलारें, तोते, बुलबुलें, पिड़कियाँ, रुक्मिनें, सतभैये, कौवे, पपीहे और कोयलें अपनी-अपनी डाल से अपनी-अपनी बोली सुनाती हुई। खेतों पर कहीं-कहीं हिरणों के झुण्ड भगते हुए। कहीं ढोर चरते हुए। कहीं नाले कहीं बरसाती नदी। किनारों में बबूलों के बेशुमार पेड़। काँटों से कहीं-कहीं रूँधी हुई। बूहड़ के पेड़ बागों की खाई के चारों तरफ लगे शोभा बढ़ाते हुए।" (काले कारनामे, पृष्ठ २३१)

अन्ततः कहा जा सकता है कि भाषा-शैली की दृष्टि से 'काले-कारनामे' उपन्यास पूर्ण यथार्थवादी रचना है। यह ऐसी प्रथम कृति है जिसमें निराला छायावादी प्रभाव से पूर्णतः मुक्त यथार्थवादी कलाकार बन गए हैं।

इन्दुलेखा

'इन्दुलेखा' अपूर्ण उपन्यास होते हुए भी निराला की अपनी विशिष्ट भाषा-शैली के

कारण महत्वपूर्ण है। ग्राम्य एवं नगर जीवन की मिली-जुली कथा होने के कारण भाषा का भी मिश्रित रूप यहाँ देखा जा सकता है।

पिछौड़ा, मेंड, डलिया, गट्टे, दक्खिनाव, झंझरीदार, तुर्त-फुर्त, जद्दद-बद्दद, खुत्था, हेठा, ख्वारी, सुभीते, गूल जैसे देशज शब्दों के प्रयोग से ग्रामीण जीवन सजीव साकार हो उठा है। शताधिक, स्नातक, पारंगत जैसे कुछ तत्सम शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं किन्तु इनकी तुलना में उर्दू शब्दों के प्रयोग की बहुलता दृष्टिगत होती है। नतीजा, साबित, शुमार, बगैरह, तमीज, हकीकत, नजीर, जिन्दगी, बुजदिली, बनिस्बत, कारगुजार जैसे प्रचलित उर्दू शब्द भाषा का स्वाभाविक अंग बनकर आए हैं। दाल में काला होना, चूल बैठना, कमर कसना आदि मुहावरों के प्रयोग से ग्रामीण भाषा की स्वाभाविकता प्रकट होती है।

समर और इन्दु जैसे शिक्षित पात्र अपनी सामान्य बोलचाल की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का खुलकर प्रयोग करते हैं। इनके वार्तालाप में क्लास, लेक्चर, पीरियड, बेंच, हैण्डराइटिंग, मैच मेकर, लेडी-प्रोफेसर जैसे अंग्रेजी शब्दों के अलावा रोमन लिपि के अंग्रेजी वाक्य भी प्राप्त होते हैं। यही नहीं बल्कि शेली के 'स्काई-लार्क' कविता की चार पंक्तियाँ रोमन लिपि में उद्धृत की गयी हैं। ये लेखक के विविध भाषा-ज्ञान का परिचय देती हैं।

शैली की दृष्टि से इसमें वर्णनात्मक, विवरणात्मक, संवाद एवं व्यंग्य शैली का प्रयोग किया गया है। हास्य-मिश्रित व्यंग्य शैली का एक उदाहरण निम्नलिखित है–

"लड़की के बाप ने कहा, यह क्या उसके घर गूल (भट्टी) खोदेगी। एक-एक आधे सन्देश और रसगुल्ले मार गया। मैं खड़ा देखता था कि पूछेगा, मगर हरामजादे ने जैसे मुझको देखा न हो, अपनी बोली सुनाता गया और एक-एक टप्पा-टप मारता रहा।" घटक ने कहा, 'कुछ बिटिया रानी को...। पलकें मूंदकर उसने जवाब दिया, वह फूल सूंघती है। एक सन्देश और एक रसगुल्ला घटक को दिया और हण्डी उठाके भीतर रख दी।' (इन्दुलेखा, पृष्ठ २६२)

अपूर्ण होते हुए भी 'इन्दुलेखा' रचना का जितना अंश उपलब्ध है उससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि निराला की पूर्ववर्ती यथार्थवादी रचनाओं की भाषा-शैली की विशिष्टता इस उपन्यास की भाषा-शैली में भी निहित है।

कुल्लीभाट

भाषा-शिल्प की दृष्टि से 'कुल्लीभाट' निराला के सम्पूर्ण साहित्य में बेजोड़ कृति है। संस्मरण एवं रेखाचित्र के गुण-धर्म से समन्वित इस कृति की भाषा सरल, चुस्त एवं सधी हुई है। व्यक्तिगत जीवन प्रसंगों का वर्णन करते समय बैसवाड़ी भाषा के प्रयोग से जहाँ अवध की संस्कृति मूर्तिमान हो उठी है वहीं कुल्ली का रेखाचित्र प्रस्तुत करते समय अवधी, अरबी-फारसी आदि शब्दों के प्रयोग से मिश्रित भाषा का रूप उभरा है।

इस कृति के कतिपय उदाहरण रचना की भाषा-शैली की विशिष्टता को उद्घाटित करने में सहायक होंगे।

अपनी ससुराल-यात्रा के प्रसंग में स्टेशन पहुँचने का वर्णन लेखक ने सजीव, रोचक एवं विस्तृत ढंग से किया है। अवधी भाषा के साथ फारसी, संस्कृत आदि के उद्धरणों का पुट देकर कथाकार ने सम्पूर्ण प्रसंग को अत्यन्त रोचक एवं जीवन्त बना दिया है। यथा –

"पिताजी ने कहा, 'ससुरार जाव लेकिन वहाँ से तिगुना खाना।'' ....मैं पिताजी के उपदेश धारण कर ढाई बजे के करीब रवाना हुआ। ठाट बंगाली, धोती, शर्ट, जूता, छाता। ...बाहर खाई पार करते ही लू का ऐसा झोंका आया कि एक साथ कुण्डलिनी जैसे जग गयी... फिर भी पैर पीछे नहीं पड़े, बंगाल की वीरता और प्रेमाशक्ति बैक कर रही थी। पैर उठाकर सामने रखते ही, लीक के खड्ड में डेढ़ हाथ खाले गया, और मैं गुड़ीगुडन्ता के डण्डे की तरह गुड़ा, लेकिन स्पोर्टसमैन था, झड़बेर की झाड़ी तक पहुँचते-पहुँचते अड़ गया। देह गर्दवर्द हो गयी। मुँह में क्रीम लग गया था, घाव पर जैसे आयडोफार्म पड़ा। ....कालिदास को पढ़ रहा था, याद आया –

"अजयदेकरबेन स मोदिनीम", कड़ाई से पैर आगे बढ़ाया, ठकाका जूते ने कांकर से धोके से ठोकर ली, और मुँह फैला दिया। ....एक झोंका और आया। अबके छाता उलटकर दूसरी तरफ तना। ....धोती कोंछदार बंगाली पहनी थी। एक जगह उड़ी, और, बेर की बाँहों से आलिंगन किया, न अब छोड़े, न तब – 'गुलों से खार बेहतर हैं, जो दामन थाम लेते हैं' याद तो आया, पर बड़ा गुस्सा लगा। सैकड़ों काँटे चुभे हुए। धोती छप्पनछुरी हो रही थी। छुड़ाते नहीं बनता था। देर हो रही थी। आखिर मुट्ठी से कोंछें को पकड़कर खींचा। धोती में सहस्र धार गंगा बन गयी, उधर बेर सहस्र विजय-ध्वज। (कुल्लीभाट, पृष्ठ २६, २७)

इसी तरह प्रथम दर्शन के समय कुल्ली का जो रेखाचित्र निराला ने प्रस्तुत किया है उससे उनकी भाषा की कल्पना-विधायिनी शक्ति, चित्रात्मकता एवं सहजता स्वाभाविकता का पता चलता है।

"गेट पर टिकट-कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था बना-चुना, बिलकुल लखनऊ-ठाट, जिसे बंगाली देखते ही गुण्डा कहेगा। तेल से गुल्कें तर, जैसे अमीनाबाद से सिर पर मालिश कराकर आया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीली, सिर के दाहिने किनारे रक्खी। ऐंठी मूँछें। दाढ़ी चिकनी। चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्कट। हाथ में बेंत। काली मखमली किनारी की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई। पैरों में मेरठी जूते। उम्र पच्चीस के साल-दो साल इधर-उधर। देखने पर अन्दाजा लगाना मुश्किल है – हिन्दू है या मुसलमान। साँवला रंग। मजे का डीलडौल। साधारण निगाह में तगड़ा और लम्बा भी।"

(कुल्लीभाट, पृष्ठ २८)

इस तरह सम्पूर्ण रेखाचित्र में अंग्रेजी, अरबी-फारसी, तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों के प्रयोग से मिश्रित भाषा का रूप निखरा है। प्रसंगानुकूल स्थानीय शब्दों का प्रयोग बहुलता के साथ किया गया है। गँवही, गुम्मड़, झोल, तिड़का, खुडढी, छोकड़ा, पतुरिया, कोठीदार, गवैड़, उछाह, लखमेड़ा, हिजार, जैसे देशज शब्दों के साथ-साथ मुहावरों और लोकोक्तियों के

प्रयोग से भाषा में स्वाभाविकता आ गयी है। धोखे की टट्टी, होश दुरुस्त होना, हवा के प्रतिकूल चलना, मक्खी नहीं भजाय, सब से अधिक जाति-आमामा जैसे मुहावरों एवं लोकोक्तियों के साथ-साथ शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार, का ते कान्ता कास्ते पुत्र, दरिद्राणां मनोरथः, यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते, महाजनो येन गतः स पन्थाः, मासानां मासोत्तमें जैसे संस्कृत उद्धरणों के प्रयोग से कथाकार की भाषिक क्षमता का पता चलता है।

अपने भाषा-ज्ञान के सम्बन्ध में इस कृति में लेखक ने स्वयं रोचक तथ्य प्रस्तुत किया है–

"वह समझती थीं, मैं ओर जो कुछ भी जानता होऊँ, हिन्दी का पूरा गँवार हूँ, हिन्दी का वैसा गँवार नहीं, जैसा पढ़े-लिखे सैकड़ा पीछे निन्यानवे होते हैं – बिल्कुल ठोस मूर्ख। ....उन्होंने कहा, यह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाड़ी बोले लेते हो, तुलसीकृत रामायण पढ़ी है, बस। तुम खड़ी बोली का क्या जानते हो?"

तब मैंने खड़ी बोली का नाम भी नहीं सुना था। पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त आदि तब मेरे लिए स्वप्न में भी नहीं थे, जैसे आज हैं। (कुल्लीभाट, पृष्ठ ४८)

पत्नी की प्रेरणा से जिस परिश्रम और लगन से निराला ने हिन्दी भाषा सीखी उसका भी वर्णन बड़ी ईमानदारी से उन्होंने किया है –

"एक आग दिल में लगी थी – मैंने हिन्दी नहीं पढ़ी। बंगाल में हिन्दी का जानकार नहीं था, जहाँ मैं था - देहात में। राजा के सिपाही जो हिन्दी जानते थे, वह मुझे मालूम थी - ब्रजभाषा। खड़ी बोली के लिए अड़चन पड़ी। तब हिन्दी की दो पत्रिकाएँ थीं - सरस्वती और मर्यादा दोनों मंगाने लगा। ....पढ़कर भाव अनायास समझने लगा। पर लिखने में अड़चन पड़ती थी। ब्रजभाषा या अवधी, जो घर की जबान थी, खड़ी बोली के व्याकरण से भिन्न है। 'उइ कहेन' और 'उन्होंने कहा' एक नहीं। यह ने खटकता था। जो केवल भारतीय संस्कृति के शिक्षित हैं, उनके लिए 'ने' शूल है। 'ने' के प्रयोग भी मालूम न थे। लेकिन मिहनत सब कुछ कर सकती है। मैं रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक 'सरस्वती' लेकर एक-एक वाक्य संस्कृत, अंगरेजी और बंगला-व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने लगा। .....आचार्य द्विवेदी जी को गुरु माना, लेकिन शिक्षा अर्जुन की तरह नहीं - एकलव्य की तरह पायी।" (कुल्लीभाट, पृष्ठ ५१)

एकलव्य की तरह हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करने वाले निराला ने 'कुल्लीभाट' में अपने भाषा-कौशल के जो जौहर दिखलाए हैं, वे सचमुच अनूठे हैं।

शैली की दृष्टि से कुल्लीभाट रचना हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसकी अकृत्रिम शैली में सजीवता एवं रोचकता का मिश्रण होने के साथ-साथ हास्य एवं करुण प्रसंगों को उद्घाटित करने की अपूर्व क्षमता है। प्रसंग के अनुसार लेखक ने अभिनयात्मक, विश्लेषणात्मक एवं व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है। किन्तु इस कृति की सबसे बड़ी सफलता व्यंग्य शैली के सहज प्रयोग में है। जैसे –

"कलम हाथ लेते ही किसने कवियों की आँख की परी विश्व-साहित्य के सातवें आसमान पर मारती है, कितने कर्मवीर दलिया खाते हुए, कमर कमान किये, जान पर खेल रहे हैं, कितने आधुनिक बेधड़क समाजवाद के नाम से पूरे उत्तानपाद।" (कुल्लीभाट, पृष्ठ २३)

परिहास पूर्ण व्यंग्य शैली का एक उदाहरण निम्नलिखित है –

"अपने राम के लकड़दादा के लकड़दादा के लकड़दादा राजा वीरबल त्रिपाठी अकबर के चेले थे, अपनी बेटी खाले के बाजपेयियों के घर ब्याही, तब से बाजपेयी वंश में भी महापुरुषत्व का असर है, यों ट्रिपल लकड़दादा का प्रभाव कुल कनवजिया कुलीनों पर पड़ा। खैर, महापुरुष पुरुष का बहा हुआ रंगा हिस्सा लेकर है, उसी तरह उसके चरित्र में एक सत् और जुड़ गया है। साहित्यिक की निगाह में वह साबुन का उपयोगितावाद है, अर्थात् सिर्फ साफ होता है, वह भी कपड़ा, रास्ता घर या दिमाग नहीं।" (कुल्लीभाट, पृष्ठ २३)

इसी तरह निराला एवं उनकी सास के वार्त्तालाप के प्रसंग में शुद्ध हास्य की झलक दिखाई देती है। जैसे –

"मेरे ऐसे ही स्वभाव से शायद प्रसन्न होकर सासुजी ने पूछा, अच्छा, भैया, मेरी लड़की तुम्हें कैसी सुन्दरी लगती है?"

मौखिक इम्तहान में मैं बराबर पहला स्थान पाता रहता हूँ। कहा, "मैंने आपकी लड़की को छुआ तो है, बातचीत भी की है, लेकिन अभी तक अच्छी तरह देखा नहीं, क्योंकि जब मेरे देखने का समय होता था, तब दिया गुल कर दिया जाता था। दूसरे दिन दियासलाई ले तो गया, जलाकर देखा भी, लेकिन सलाई के जलते ही आपकी लड़की ने मुँह फेर लिया, और झोंपड़े के अगल-बगलवाले लोग खाँसने लगे। फिर जलाकर देखने की हिम्मत न हुई।"

(कुल्लीभाट, पृष्ठ ३०)

अभिनयात्मक एवं मनोविश्लेषण शैली का मिश्रित रूप निम्न प्रसंग में देखा जा सकता है।

"मैं अज्ञात यौवन युवक की तरह कुल्ली को देखने लगा। ....मैंने देखा, कुल्ली का चेहरा बहुत विकृत हो गया है। मतलब कुछ मेरी समझ में न आया। कुल्ली अधीरता से एक दफा उचके, लेकिन उचककर वहीं रह गये। .....कुल्ली ने एक दफा भरसक प्रेम की दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा, तो मैं दरवाजा बन्द करता हूँ।"

लेकिन आवाज के साथ जैसे लरबराकर रह गये। ....मैं बैठा सोच रहा था कि कुल्ली की इस ऐंठन से मेरी निठुरता का क्या सम्बन्ध है। ....कुल्ली एकाएक उचके, अबके भरसक जोर लगाकर, यह कहते हुए, 'मैं जबरदस्तों....।' मुझे हँसी आ गई, खिलखिलाकर हँसने लगा। कुल्ली जहाँ थे, वहीं फिर रह गये। ....कुल्ली पस्त, जैसे लत्ता हो गये। (कुल्लीभाट, पृष्ठ ४६)

'कुल्लीभाट' की रचना पूर्व-दीप्ति पद्धति पर हुई है। निम्नलिखित उद्धरण इसी आशय को स्पष्ट करता है।

'सुनकर कुल्ली बहुत खुश हुए... स्नेह की दृष्टि से देखते हुए बोले, हाँ, करते की विद्या है,

जब आप गौने के साल आये थे, क्या थे? कहकर कुछ झेंपे। झेंपने के साथ उनके मनोभाव कुल हाल-बेहाल के तार से मुझे समझा गये। पच्चीस साल पहले की घटना, जो उस समय समझ में न आयी थी, पल-मात्र में आ गयी। सारे चित्र घूम गये, और उनका रहस्य समझा। वहीं कुल्ली से पहली मुलाकात है, वहीं से श्री गणेश करता हूँ।' (कुल्लीभाट, पृष्ठ २५)

निष्कर्षतः भाषा-शैली की दृष्टि से 'कुल्लीभाट' निराला साहित्य में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में बेजोड़ कृति है।

बिल्लेसुर बकरिहा

'बिल्लेसुर बकरिहा' में निराला ने अपनी पूर्ववर्ती यथार्थवादी रचनाओं की भाँति सहज, सरल, अकृत्रिम एवं चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है। रोजी-रोटी की समस्या से जूझने वाले व्यक्ति का रेखाचित्र उपस्थित करने के साथ-साथ अपने भाषिक कौशल से तद्युगीन ग्रामीण संस्कृति एवं जीवन को भी जीवन्त बना दिया है। इसलिए इसमें स्थानीय शब्दों के आधिक्य के साथ-साथ उर्दू, तद्भव, संस्कृत एवं अंग्रेजी शब्दों के मेल से मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है। संस्कृत के तद्भव शब्दों यथा सरल, आसिरबाद, दरपन, जोबन, दोख, भेस का प्रयोग प्रचुरता के साथ हुआ है। ग्रामीण वातावरण के निर्माण के लिए स्थानीय बैसवाड़ी भाषा एवं देशज शब्दों के व्यापक प्रयोग ने कृति को स्वाभाविकता प्रदान की है। ढूह, टूंग, टोये, डेहरी जपाटे, लग्गा, लगुसी, डोंगरा, गड़ही, बौड़ी जैसे शब्द शिक्षित समाज के लिए भले ही अपरिचित हों पर इनसे ग्रामीण जीवन की आत्मा सजीव साकार हो उठी है। कतिपय उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करेंगे। जैसे –

"बिल्लेसुर-नाम का शुद्ध रूप बड़े पते से मालूम हुआ - बिल्वेश्वर है। पुरवा डिवीजन में, जहाँ का नाम है, लोकमत बिल्लेसुर शब्द की ओर है। कारण, पुरवा में उक्त नाम के प्रतिष्ठित शिव हैं। अन्यत्र यह नाम न मिलेगा, इसलिए भाषा तत्व की दृष्टि से गौरवपूर्ण है।"

(बिल्लेसुर बकरिहा, पृष्ठ ८५)

"बकरियाँ एक-एक पत्ती टूंग चुकी थीं। सपाटे से बढ़कर लग्गा उठाया और हाँककर दूसरी तरफ ले चले। पड़ती जमीन से ऊँचे बाग की तरफ चलते हुए कुछ रियाँ की लच्छियाँ छाँटी।" (बिल्लेसुर बकरिहा, पृष्ठ ९६)

"उसमें जब कोई दोष नहीं है तब ब्याह बनेगा कैसे नहीं? ....लड़की की अम्मा को मनाकर कुण्डली लेकर बिचखाने गये, फट से बन गया। ....पर सिस्टा की बात, लड़की की अम्मा ने कहा, मेरी बिटिया को परदेश ले जायेंगे, फिर कभी इधर झाकेंगे नहीं, बिमारी अरामी बूँद-भर पानी को तरसूँगी, रुपये लेकर मैं क्या करूँगी?" (बिल्लेसुर बकरिहा, पृष्ठ १११)

लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग ने स्थानीय रंग को पूरी गहराई से उभारा है।

शैली की दृष्टि से इस कृति में नवीनता इस अर्थ में निहित है कि इसमें हास्य व्यंग्य को उभारने के लिए लेखक ने विभिन्न शैलियाँ अपनाई हैं। वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, चित्रात्मक

एवं हास्य-व्यंग्य प्रधान शैली के प्रयोग ने वर्ण्य-विषय को अत्यन्त रोचक बना दिया है। इनमें व्यंग्य शैली का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। उदाहरणतः –

"बिल्लेसुर जाति के ब्राह्मण, तरी के सुकुल हैं, खेमेवाले के पुत्र खैयाम की तरह किसी बकरीवाले के पुत्र बकरीहा नहीं। लेकिन तरी के सुकुल को संसार पार करने की तरी नहीं मिली तब बकरी पालने का कारोबार किया।" (बिल्लेसुर बकरीहा, पृष्ठ ८५)

"हिन्दी-भाषा-साहित्य में रस का अकाल है, पर हिन्दी बोलनेवालों में नहीं, उनके जीवन में रस की गंगा-जमुना बहती हैं, बीसवीं सदी-साहित्य की धारा उनके पुराने जीवन में मिलती है।" (बिल्लेसुर बकरीहा, पृष्ठ ८५)

अपनी विशिष्ट शैली में शुद्ध हास्य की अवतारणा लेखक ने निम्न प्रसंग में की है।

"सास को दिखाने के लिए बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे। भोजन करके उठते वक्त हाथ में ले लेते थे और रखकर हाथ-मुँह धोकर कुल्ले करके बकरी के बच्चे को खिला देते थे। अगरासन निकालने से पहले लोटे से पानी लेकर तीन दफे थाली के बाहर से चुवाते हुए घुमाते थे। अगरासन निकालकर टुनकियाँ देते हुए लोटा बजाते थे और आँखें बन्द कर लेते थे।"

(बिल्लेसुर बकरीहा, पृष्ठ ११०)

इसी तरह विवाह के लिए लड़की देखने जाते समय की तैयारियों का अत्यन्त रोचक एवं सजीव वर्णन शुद्ध हास्य की अपूर्व छटा बिखेरता है –

"थोड़ी देर पूजा की। रोज पूजा करते रहे हों, यह बात नहीं। पूजा करते समय दरपन कई बार देखा, आँखें और भौंहें चढ़ाकर उतारकर गाल फुलाकर चिपकाकर होंठ, फैलाकर-चढ़ाकर। चन्दन लगाकर एक दफा फिर मुँह देखा। आँखें निकालकर देर तक देखते रहे कि चेचक के दाग कितने साफ दिखते हैं। ....मोजे के नीचे तक उतारकर धोती पहनी फिर कुर्ता पहनकर चारपाई पर बैठे, साफा बांधने लगे। बाँधकर एक दफे फिर उसी तरह दरपन देखा और तरह-तरह की मुद्राएँ बनाते रहे। फिर जेब से छोटा सा दरपन और गले में मैला अंगोछा और घुस्सा डालकर लाठी उठायी। जूते पहले के तेलवाये रक्खे थे, पहन लिये। दरवाजे से निकल कर मकान में ताला लगाया, और दोनों नथनों में कौन चल रहा है, दबाकर देखकर, उसी जगह दायाँ पैर तीन दफे दे-दे मारा, और दूधवाली हण्डी उठाकर निगाह नीची किये गम्भीरता से चले।"

(बिल्लेसुर बकरीहा, पृष्ठ ११२)

इस तरह के कृत्यों द्वारा व्यक्तित्व की रेखाओं को उभारने एवं उसे जीवन्त बनाने में लेखक की भाषा-शैली ने अपनी खास भूमिका निभायी है। निष्कर्षतः भाषा शैली की दृष्टि से 'बिल्लेसुर बकरीहा' एक सफल कृति है।

निराला के उपन्यासों एवं रेखाचित्रों की भाँति इनकी कहानियों में भी भाषा का सहज, सरल प्रवाह एवं शैली की मौलिकता लक्षित की जा सकती है। पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग में उन्हें दक्षता हासिल थी। इनकी कहानियों के शिक्षित एवं नागरी पात्र जहाँ परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग

करते हैं वहीं ग्रामीण एवं अशिक्षित पात्रों की भाषा में स्थानीय शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। भाषा के इसी अकृत्रिम एवं स्वाभाविक प्रयोग के कारण निराला की कहानियों के पात्र विश्वसनीय एवं जीवन के निकट लगते हैं।

पात्रानुकूल होने के साथ-साथ भाषा देश-काल एवं परिस्थिति के अनुकूल है। निराला की कहानियों की भाषा भावानुगामिनी है एवं सजीव तथा चित्रात्मक व्यंजना में समर्थ है। भाषा के विविध रूप इनकी कहानियों में देखे जा सकते हैं। पात्र एवं प्रसंग के अनुकूल, संस्कृत-निष्ठ तत्सम शब्दों से युक्त कोमलकान्त पदावली से परिपूर्ण अलंकृत एवं कवित्वमयी, तद्भव एवं देशज शब्दों की छटा के साथ लोकोक्तियों मुहावरों से जड़ित, अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग निराला ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है।

इसी तरह शैली की दृष्टि से भी निराला की कहानियाँ अनूठी हैं। निराला ने भावाभिव्यंजना के लिए विविध शैलियाँ अपनाई हैं। वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आत्म-व्यंजक, हास्य-व्यंग्य प्रधान, चित्रात्मक, प्रवाहमयी, कवित्वमयी, अलंकृत, अन्य पुरुषात्मक आदि विविध शैलियों का प्रयोग निराला की कहानियों में मिलता है।

निराला की सम्पूर्ण कहानियों से कतिपय उद्धरण उनकी भाषागत विशेषताओं को उद्घाटित करने में सहायक होंगे।

नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य के चित्रण में अथवा मधुर-प्रसंगों के समय संस्कृत के तत्सम शब्दों अथवा कोमल कान्त पदावली से युक्त, विभिन्न उपमानों से जड़ी कवित्वमयी एवं माधुर्य तथा प्रसाद गुण से पूर्ण भाषा के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

"पद्मा के चन्द्रमुख पर षोडश कला की शुभ चन्द्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुंज की कली-सी प्रणय के वासन्ती मलयस्पर्श से हिल उठती, विकास के लिए व्याकुल हो रही है।" (पद्मा और लिली, पृष्ठ २८२)

"कमला सोलहवें साल की अधखुली धुली कलिका है। हृदय का रस अमृत-स्नेह से भरा हुआ, खुली नावों-सी आँखें चपल लहरों पर अदृश्य प्रिय की ओर परा और अपरा की तरह बही जा रही हैं।" (कमला, पृष्ठ २९६)

"आकाश के चाँद का फूल पृथ्वी पर ज्योतिर्मय परिमल भर रहा है। कोठे के झरोखों से किरणें, अदृश्य अप्सराओं-सी, दो सुहृदयों को प्राथमिक प्रणय के दृढ़ पाश में बँधते हुए देखकर हँसती हुई चली जाती हैं। हवा नीम के फूलों की भीनी महक से दोनों को मौन स्नेह में ढककर बह रही है। हृदय के रत्नाकर ने आज ही विष्णु को लक्ष्मी दी, लक्ष्मी को विष्णु।"

(कमला, पृष्ठ २९७)

"वही हिरनी अब जीवन के रूपोज्ज्वल वसन्त में कली की तरह मधुसुरभि से भरकर चतुर्दिक सूचना-सी दे रही है कि प्रकृति की दृष्टि में अमीर और गरीब वाला क्षुद्र भेद-भाव नहीं, वह सभी की आँखों को एक दिन यौवन की ज्योत्सना से स्निग्ध कर देती है।" (हिरनी, पृष्ठ ३२६)

"आभा आज की शरद की तरह अपनी सारी रंगीनियों को धोकर शुभ्र हो रही है – श्वेत शेफाली-सी रंगे प्रभात के रश्मि-पात-मात्र से वृंतच्युत जैसे केवल देवार्चन के लिए चुनी हुई। पर प्राणों के नीचे, डण्ठल में, जो रंग लाया हुआ है, वह तो शरद का नहीं – बसन्त का है। उसी के ऊपर बसन्त के बादवाले महीनों के ये दल जैसे शरद् की आभा से शुभ्र हो रहे हैं। लालसा-चपल क्या कोई उस पूर्ण विकसित स्खलित शेफालिकाराशि को केसरिए सुगन्ध रंग से अपनी बसन्त की पाग रंगने के लिए वृक्ष के नीचे से चुपचाप चुन ले जाएगा?" (सफलता, पृष्ठ ३७२)

सहज, सरल एवं व्यावहारिक भाषा के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं –

"कल शाम को अमरसिंह नहीं गये। न जाने का कोई कारण नहीं था। मित्रता गहरी थी। प्यारेलाल बैठे इंतजार करते सोचते रहे, कहीं अटक गये होंगे, आते होंगे। पर दस बजे रात तक अमरसिंह नहीं गये। हताश होकर भोजन-पान करके प्यारेलाल लेटे। देर तक नींद नहीं आयी।"
(क्या देखा, पृष्ठ २७८)

"सिरहाने थरमामीटर रक्खा था। झाड़कर, बाँडी के बटन खोल राजेन्द्र ने आहिस्ते से बगल में लगा दिया। उसका हाथ बगल से सटाकर पकड़ रहा। नजर कमरे की घड़ी की तरफ थी।" (पद्मा और लिली, पृष्ठ २८७)

"एक दिन हमलोग ब्लैक कुइन खेल रहे थे। शाम को पानी बरस चुका था। पगली उसी खाली मकान के बरामदे पर थी। हम लोगों ने खाना खाकर खेल शुरू किया था। होटल के गेट की बिजली जल रही थी। फुटपाथ पर मेज और कुर्सियाँ डाल दी गयी थीं। दस बज चुके थे।"
(देवी, पृष्ठ ३६०)

"हमलोग उतरे। भीतर पैठते दाहने हाथ का एक छोटा सा बैठका। एक डेढ़ साल के बच्चे को दासी खेलाती हुई। श्रीमती जी को देखकर बच्चा मा-मा करता हुआ उतावला हो गया, दोनों हाथ फैलाकर मा के पास आने के लिए कूदकर दासी की गोद में लटक रहा। लेकर देवी जी प्यार करने लगीं।" (सुकुल की बीवी, पृष्ठ ३९५)

निराला की कहानियों में उर्दू शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया गया है। यही नहीं बल्कि कहीं-कहीं वातावरण को सजीव बनाने के लिए उर्दू के पूरे वाक्यों का प्रयोग किया गया है। प्रेमिका परिचय कहानी लखनऊ की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है। अत: वहाँ के वातावरण को जीवन्त रूप में चित्रित करने के लिए उर्दू के वाक्यों का प्रयोग निम्नलिखित उद्धरणों में देखा जा सकता है –

"उर्दू-शायरी का अजहद शौक, इश्क का नाज उठाते हुए चलते।"
(प्रेमिका-परिचय, पृष्ठ ३१६)

"दुनिया में कामयाबी हासिल करना चाहते हो, तो पहले चेहरा सुधारो। मैं कहता हूँ, तुम जैसे मनहूस मुहर्रमी सूरत बनाये फिरते हो, तुम्हारी बीवी भी तुम्हें नहीं प्यार कर सकती।"
(प्रेमिका परिचय, पृष्ठ ३१७)

"इसका वाजिब-उल-अर्ज में पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा, तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हें जूते देते रहने पड़ेंगे।" (चतुरी चमार, पृष्ठ ३६५)

"आज ही की तरह उन दिनों भी हिन्दी की मसजिदों पर मुरीद द्विवेदी जी की नमाज पढ़ते थे, लिहाजा उनकी कोशिश में किसी अखबार के दफ्तर में जगह पा जाऊँ – कारगर हुई।"

(स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं, पृष्ठ ३४६)

"आइए जनाबमन्, मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइए।" (कमला, पृष्ठ ३०१)

इसी तरह शिक्षित पात्रों की भाषा में जगह-जगह अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। यथा–

"बिना रोमैंटिक नावेल की कुछ पंक्तियों की आवृत्ति किये रात को आपकी आँख नहीं लगती।" (प्रेमपूर्ण तरंग, पृष्ठ २६७)

"अब आप मुझसे अलफ्रेड थिएटर में, फर्स्ट क्लास में, कल अवश्य मिलिए।"

(प्रेमपूर्ण तरंग, पृष्ठ २६९)

"उनका लड़का आगरा-युनिवर्सिटी से एम.ए. में इस साल फर्स्ट क्लास फर्स्ट आया है।" (पद्मा और लिली, पृष्ठ २८३)

"वर-कन्या के लिए पं० सत्यनारायण जी ने एक सेकेण्ड-क्लास-कम्पार्टमेण्ट पहले से रिजर्व्ड करा रक्खा था, और लोगों के लिए इण्टर-क्लास अलग।" (ज्योतिर्मयी, पृष्ठ २९४)

"इलेक्ट्रिसिटी शरीर में प्रिजर्व करने का सबसे पहले यह आर्यों का निकाला हुआ तरीका है।" (प्रेमिका परिचय, पृष्ठ ३१६)

"प्रेम की परमनिण्ट शिक्षा के लिए देकर मिस्ट्रेस बनने का प्रार्थना करता हूँ।"

(सखी, पृष्ठ ३५३)

अंग्रेजी शब्दों के अतिरिक्त अंग्रेजी के वाक्य रोमन लिपि में उद्धृत किए गए हैं। यथा –

"To K, the first sunshine of my line."

(कला की रूप-रेखा, पृष्ठ ३८९)

"See, the Hunter of the east has caught the Hindoo's forehead in a noose of hair." (सुकुल की बीवी, पृष्ठ ३९२)

"Good morning, poet of vers Libre." (सुकुल की बीवी, पृष्ठ ३९४)

"I offered Sanskrit upto B.A. standard, but because of love, may be other unknown reason, I pick up English for M.A. and Doctorate. Perhaps I cannot satisfy you in Sanskrit conversation if you equally do not lack English to manage." (विद्या, पृष्ठ ४२१)

भाषिक-प्रयोग की दृष्टि से निराला की 'विद्या' शीर्षक कहानी अपने आप में विशिष्ट है।

इसमें नायिका विद्या के मुख से अंग्रेजी एवं नायक श्याम द्वारा संस्कृत भाषा में वार्तालाप कराकर कथाकार ने इन दोनों भाषाओं में भी अपना नैपुण्य साबित किया है।

कई कहानियों में ग्रामीण भाषा एवं स्थानीय शब्दों का प्रयोग कथाकार ने किया है। विशेषकर बैसवाड़ा अंचल के निवासी होने के कारण निराला की कहानियों में वहाँ का परिवेश स्वत: प्रतिबिम्बित हुआ है। ऐसी कहानियों में अवधी एवं बैसवाड़ी भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणत: –

"कुछ तिरिया-चरित्तर भी सीखा है?" (कमला, पृष्ठ २९६)

"अबके कुछ भी डौल नहीं। बरखा आ गयी। छप्पर वैसा ही रक्खा है। कहाँ से पैसे आवें, जो छाया जाय। मिहनत-मजूरी का बल नहीं है। श्यामा दूसरे की पिसौनी करती है।"

(श्यामा, पृष्ठ ३०७)

"सुनो महाराज, हम बांभन नहीं हैं, जो कुरमी-काछी, तेली-तमोली, सबकी पूरियों में पहुँचा पेल दें। हम हैं लोध–लोध का बच्चा कभी न कच्चा। अब खरी न कहलाओ। रूका बुआ को लोगों ने पकड़ा, सबने छोड़ दिया, फिर तुम्ही पिलकर सत्यनारायण की कथा में खा आये।"

(श्यामा, पृष्ठ ३१०)

"कोंछी का काँछा मारकर श्यामा खोदने लगी।" (श्यामा, पृष्ठ ३१३)

"लड़के ने जवाब दिया, मुझे मामा के वहाँ छोड़ आइए, यहाँ डाल के आम खट्टे होते हैं – चोपी होती है। मुँह फदक जाता है, वहाँ पाल के आम आते हैं।"

(चतुरी चमार, पृष्ठ ३६८)

संस्कृत एवं हिन्दी की सूक्तियों, काव्य उद्धरणों एवं मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से कहानियों की भाषा में अर्थ-गाम्भीर्य एवं चमत्कृति उत्पन्न हो गई है। यथा –

"स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्य:" (ज्योतिर्मयी, पृष्ठ २९३)

"विश्वस्तं नीति विश्वसेत्।" (क्या देखा, पृष्ठ २८०)

"शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे" (प्रेमपूर्ण तरंग, पृष्ठ २६८)

"क सूर्यप्रभवो वंश: क चाल्प विषया मति:।" (सुकुल की बीवी, पृष्ठ ३९३)

"वाक्ये का दरिद्रता।" (ज्योतिर्मयी, पृष्ठ २८९)

"अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग।" (क्या देखा, पृष्ठ २७३)

"केतहु काल कराल परे, पै मराल न ताकहिं तुच्छ तलैया।"

(ज्योतिर्मयी, पृष्ठ २९४)

"सिर पर सन्देह का भूत सवार था ही लगा विचार की सीधी-टेढ़ी गलियाँ झांकने। मैंने लाख प्रयत्न किये, पर इस बागी से मेरी एक न चली। ....मैं तो उस वक्त किराये का टट्टू ही बन

रहा था.... पर इज्जत का ख्याल अंगद की तरह पैर जमाये रास्ता रोके हुए था।"

(क्या देखा, पृष्ठ २७२)

"पढ़ने के साथ प्यारे लाल के सिर से पैर तक नस-नस में बिजली दौड़ने लगी। संभलने की लाख कोशिशें की, पर एक न चली। समाचार की नींव पर मनगढ़न्त की तरह-तरह की दीवारें उठाते-ढहाते रहे।" (क्या देखा, पृष्ठ २७९)

निराला की कहानियों में विविध, अलंकारों के प्रयोग से भाषा में निखार आ गया है। उनमें उपमा और रूपक अलंकारों के प्रयोग की प्रमुखता रही है। 'एकान्त कुंज की कली-सी पद्मा', 'कमल की पंखड़ियों-सी बड़ी-बड़ी आँखें', 'श्वेत शेफाली-सी आभा', 'स्थल पद्म-सा लाल चेहरा', 'सुकुमार गुलाब के दलों-से लाल-लाल होंठ', 'खुली नावों-सी आंखें', 'वर्षा की ही नवयौवना स्वस्थ श्याम प्रतिमा-सी एक युवती बालिका', 'सजीव शान्ति की प्रतिमा-सी एक निर्वास बालिका', जैसी उक्तियों की उनकी कहानियों में भरमार है। 'चन्द्र-मुख', 'वात्सल्य-सरिता', 'प्राण-सुत' जैसे रूपक भी भाषा का स्वाभाविक अंग बन कर आये हैं। उपमानों के प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :–

"अवकाश उठती धूप से पेड़ की छांह की तरह घटने लगा।" (श्यामा, पृष्ठ ३०४)

"रामप्रसाद जी बिना रोटी के तवे-जैसे उसी की आग से तप उठे और पर्वतीय निर्झर की तरह प्रखर शब्द-गर्जन-स्वर से उस क्षुद्र उपल-खण्ड पर टूटे पड़े।" (श्यामा, पृष्ठ ३१२)

"परी के स्वभाव में कुमारीवाला गुरु-गहन भाव इतनी ही उम्र में दूब की जड़ की तरह फैलने लगा।" (परिवर्तन, पृष्ठ ३२८)

"उसका स्वर इतना मधुर था जैसे हारमोनियम के तीसरे सप्तक पर बोलती हो।"

(हिरनी, पृष्ठ ३२६)

इन अलंकारों के प्रयोग के पीछे निराला का छायावादी रुझान देखा जा सकता है।

शैली की दृष्टि से भी निराला की कहानियाँ अनूठी हैं। भावाभिव्यंजना के लिए उन्होंने विविध शैलियाँ अपनाई हैं। वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, प्रतीकात्मक, चित्रात्मक, आत्मव्यंजक, हास्य-व्यंग्य प्रधान, प्रवाहमयी, कवित्वमयी अलंकृत, अन्य पुरुषात्मक, पत्र-शैली, सूक्ति-शैली, वार्त्तालाप आदि विविध शैलियों का सफल प्रयोग उनकी कहानियों में हुआ है। विविध शैलियों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

व्यंग्य मिश्रित वर्णनात्मक शैली

"श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं० गजानन्द शास्त्री की धर्म पत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्री जी ने आपके साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस साल का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ 'शास्त्रिणी' का साइन-बोर्ड टांगा, धर्म

की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चलीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है, धर्म की रक्षा के लिए।"

(श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, पृष्ठ ४०१)

विवरणात्मक शैली

"उसके पिता अच्छी साधारण स्थिति के मनुष्य हैं, माँझ गाँव के मिश्र, कुलीन कान्य कुब्ज। विवाह अधिक दहेज के लोभ से उन्होंने रोक रक्खा था। अब तक जितने सम्बन्ध आये थे, तीन हजार से अधिक कोई नहीं दे रहा था। अब के एक सम्बन्ध आया हुआ है, उसकी तरफ विजय के पिता का विशेष झुकाव है। ये लोग मुरादाबाद के बाशिंदे हैं। पन्द्रह दिन पहले ही विजय की जन्म-पत्रिका ले गये थे। विवाह बनता है, इसलिए दुबारा पक्का कर लेने को कन्या-पक्ष से कोई आया हुआ है। विजय के पिता और चचा मकान के भीतर आपस में सलाह करते हैं।"

(ज्योतिर्मयी, पृष्ठ २९२)

अन्य-पुरुषात्मक शैली

"गत वर्ष कमला का पाणिग्रहण-संस्कार हो चुका है। पर मकान की प्रथा के अनुसार बारात के साथ वह बिदा नहीं हुई। अभी पति केवल ध्यान का विषय है, ज्ञान का नहीं।"

(कमला, पृष्ठ २९६)

आत्म-व्यंजक शैली

"मैं कवि हो चला था। फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा देखता था। कभी-कभी लड़कों को समझाता भी था कि इतनी बड़ी किताब सामने पड़ी है, लड़के पास होने के लिए सिर के बल हो रहे हैं। ....लड़के अवाक् दृष्टि से मुझे देखते रहते थे, मेरी बात का लोहा मानते हुए।"

(सुकुल की बीवी, पृष्ठ ३९२)

प्रतीकात्मक शैली

"कमला सोलहवें साल की अधखुली धुली कलिका है। हृदय का रस अमृत-स्नेह से भरा हुआ, खुली नावों-सी आँखें चपल लहरों पर अदृश्य प्रिय की ओर परा और अपरा की तरह बही जा रही हैं।"

(कमला, पृष्ठ २९६)

कवित्वमयी अलंकृत शैली

"अभी ऊषा की रेशमी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है—भास्कर मुख अपर प्रान्त की ओर है, केवल केशों की सघन व्योम-नीलिमा इधर से स्पष्ट मुख का मृदुस्पर्श, प्रकाश, लघुतम तूलि जैसे, पर दिगन्तशोभ से उतरकर तन्द्रा से अलस जीवों को जगा रहा है। खिली अमलतास की हेमांगी शाखाएँ तरुणी बालिकाओं-सी स्वागत के लिए सजकर खड़ी हैं।"

(न्याय, पृष्ठ ३४१)

चित्रात्मक शैली

"मन इतने दूर आकाश पर था कि नीचे समस्त भारत देखा, पर यह भारत न था – साक्षात् महावीर थे, पंजाब की ओर मुँह, दाहने हाथ में गदा – मौन शब्द-शास्त्र, बंगाल के ऊपर दायें - बायें पर हिमालय पर्वत की श्रेणी, बगल के नीचे बंगोपसागर, एक घुटना वीर-वेश सूचक-टूटकर गुजरात की ओर बढ़ा हुआ, एक पैर प्रलम्ब - अँगूठा कुमारी अन्तरीप, नीचे राक्षस-रूप लंका कमल – समुद्र पर लिखा हुआ।" (भक्त और भगवान्, पृष्ठ ३८३)

व्यंग्य शैली

"प्रेस की बगल में थाना है जहाँ शान्ति के ठेकेदार रहते हैं। हिन्दू मुसलमानों की एकता के दृश्य कोई आंखे खोलकर देखना चाहे तो जब चाहे, हमारे पच्छिमवाले झरोखे से झांककर देख लें। यह अनन्य प्रेम हम सुबह-शाम हमेशा देखा करते हैं। तारीफ तो यह कि वह प्रेम केवल मनुष्यों में नहीं, वहाँ के पशु-पक्षियों में भी है। हिन्दुओं के पालतू कुत्ते और मुसलमानों की मुर्गियाँ भी प्रेम करती हैं। उनका द्वेषभाव बिलकुल दूर हो गया है।" (क्या देखा, पृष्ठ २७१)

"राम-श्याम जो-जो थे पूजने-पुजाने वाले, सब बड़े आदमी थे। बगैर बड़प्पन के तारीफ कैसी? बिना राजा हुए राजर्षि होने की गुंजाइश नहीं न ब्राह्मण हुए बगैर ब्रह्मर्षि होने की है। वैश्यर्षि या शूद्रर्षि कोई था, इतिहास नहीं, शास्त्रों में भी प्रमाण नहीं, अर्थात् नहीं हो सकता। बात यह कि बड़प्पन चाहिए।" (देवी, पृष्ठ ३५६)

हास्य-मिश्रित व्यंग्य शैली

"और-और लड़कों ने पूरी शक्ति लगायी थी, इसलिए, परीक्षा-फल के निकलने से पहले, तरह-तरह से हिसाब लगाकर अपने-अपने नम्बर निकालते थे, मैं निश्चित, इसलिए निश्चिन्त था, मैं जानता था कि गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तों से मैंने सरस कर दिया है, फलतः परीक्षा समुद्र-तट से लौटते वक्त, दूसरे तो रिक्त-हस्त लौटे, मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया।" (सुकुल की बीवी, पृष्ठ ३९२)

निराला ने अपनी कहानी में पत्र-शैली को आविष्कृत किया। उनकी 'प्रेमिका-परिचय' कहानी में पत्र-शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इसी तरह 'विद्या' कहानी वार्तालाप-शैली में रचित है। तथ्यों को प्रभावशाली बनाने के लिए सूक्ति-शैली प्रयुक्त हुई है। 'भक्त और भगवान' शीर्षक कहानी में स्वप्न शैली का चारु प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार भाषा-शैली की दृष्टि से निराला का कथा-साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने प्रेमचन्द स्कूल एवं प्रसाद-स्कूल की कथा परम्परा का विकास किया है। उनके कथा-साहित्य में भाषा की विविधता, जीवन्तता मधुरता पाठकों को सहज अभिभूत कर लेती है। उनके पात्रों की भाषा न केवल उनकी मनः स्थितियों के उद्घाटन में बल्कि कथा में रोचकता की सृष्टि करने में समर्थ है।

संस्कृत के तत्सम शब्द, अंग्रेजी एवं उर्दू शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा में जहाँ आलंकारिकता, प्रभावात्मकता एवं नजाकत पैदा हो गयी है वहीं दूसरी ओर तद्भव, देशज एवं स्थानीय शब्दों के प्रयोग से ग्रामीण जीवन साकार हो उठा है। विशेषकर बैसवाड़ा अंचल की संस्कृति, रहन-सहन एवं वहाँ के लोगों की विचारधारा को अभिव्यक्त करने में उनकी भाषा सक्षम है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शुद्ध बैसवाड़ी भाषा का अत्यल्प प्रयोग होते हुए भी भाषा के तेवर बिलकुल वही हैं। मुहावरों, कहावतों एवं बोलियों के साथ-साथ काव्य उद्धरणों एवं सूक्तियों के समावेश से उनकी भाषा अलंकृत हो गई है। भाषा स्पष्ट, सहज एवं बोधगम्य है तथा पात्रों की मन: स्थिति का विश्लेषण करने में पूर्ण समर्थ है। यहाँ यह निस्संकोच स्वीकार किया जा सकता है कि 'राम की शक्ति पूजा' जैसे काव्य में संस्कृत की तत्सम निष्ठ, ओजपरक एवं गुरु-गम्भीर भाषा की अवतारणा करने वाले निराला अपनी यथार्थवादी कहानियों की भाषा में भी उतनी ही कुशलता एवं नैपुण्य का परिचय देते हैं। उनकी भाषा की प्रकृति उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। जिस तरह निराला का बाहरी व्यक्तित्व वज्रादपि कठोर एवं भीतरी व्यक्तित्व कुसुमादपि मृदु था वैसे ही उनकी भाषा भी सरलता एवं गुरुता के दोनों छोरों का स्पर्श करती है।

निराला के कथा-साहित्य में संवाद योजना

कथा-साहित्य के आवश्यक तत्वों में से एक संवाद अथवा कथोपकथन है। कथा-विकास में एवं पात्रों के चरित्र के उद्घाटन में कथोपकथन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साथ ही ये लेखकीय कौशल एवं उद्देश्य को भी स्पष्ट करते हैं। कथोपकथन की सुष्ठु योजना जहाँ कथा-साहित्य में नाटकीयता एवं रोचकता उत्पन्न करती है वहीं कथा-वस्तु को भी जीवन्त एवं प्रभावशाली बना देती है। इसलिए कृति की सफलता-असफलता बहुत कुछ उसकी संवाद-योजना पर निर्भर करती है।

कथोपकथन की अनिवार्यता के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का विचार था कि "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही अच्छा है। इस संबंध में इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। किसी भी चरित्र के मुँह से निकले हुए प्रत्येक वाक्य को उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल और सूक्ष्म होना आवश्यक है।"[1]

चुस्त, चुटीले, स्वाभाविक एवं प्रसंगानुकूल संवादों में पाठक के मर्म को बेधने की क्षमता होती है। ये पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन में सहायक होते हैं। उनके सूक्ष्म-से सूक्ष्म भावों एवं मनोवेगों से पाठकों को परिचित कराते हैं। एक तरह से ये रचनाकार और पाठकों के बीच सीधा संबंध स्थापित करते हैं। इसलिए रचनाकार के अपने निश्चयों, सिद्धान्तों एवं पांडित्य को प्रदर्शित करने वाले संवादों की अपेक्षा कृति के चरित्रों के अनुरूप संवाद-योजना ही आदर्श

कथोपकथन की श्रेणी में परिगणित होती है और वही साधारण से साधारण पाठकों को भी अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखती है। ऐसे कथोपकथन अपनी सहज विशिष्टता के कारण पाठकों की स्मृति में सदैव सुरक्षित रहते हैं। अतः कथा-साहित्य में कथोपकथन की उपस्थिति अंतर्धारा के रूप में होनी आवश्यक है।

कथोपकथन की उपरोक्त विशेषताओं के संदर्भ में यदि निराला के कथासाहित्य का अवलोकन किया जाय तो उसमें सहज, स्वाभाविक, सरस, रोचक एवं पात्रानुकूल संवाद-योजना का वैशिष्ट्य देखा जा सकता है। उनके कथा-साहित्य में एक ओर कथोपकथन पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य को उद्घाटित करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, वहीं दूसरी ओर कथा-विकास में भी सहायक होते हैं। अवसरानुकूल कहीं कथोपकथन देश एवं समाज की तात्कालिक स्थिति का संदेश देते हैं तो कहीं कथाकार की विनोदी प्रकृति का उद्घाटन करते हैं।

निराला की संवाद-योजना की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनमें व्यंग्य का पैनापन है। साथ ही शुद्ध हास्य की धारा भी उसमें प्रवाहित दिखलाई पड़ती है। कथोपकथन रोचक, सरस हैं एवं पाठकों के औत्सुक्य एवं कौतूहल में वृद्धि करने वाले हैं। कहीं-कहीं कथोपकथनों के मध्य उन्होंने पात्रों के हाव-भाव का जीवन्त चित्रण किया है। प्रसंग एवं पात्र के अनुरूप संक्षिप्त, सारगर्भित एवं सरल कथोपकथन की योजना निराला ने की है किन्तु कहीं-कहीं संवाद लम्बे, दार्शनिक एवं दुरूह भी हो गये हैं। प्रेम-प्रसंगों में जहाँ कथोपकथन में काव्यात्मकता की झलक मिलती है वहीं देश-काल की तात्कालिक स्थिति अथवा अध्यात्म-चिंतन की चर्चा के समय लम्बे एवं दार्शनिक गम्भीरता से ओत-प्रोत तथा लेखक के विचारों को स्पष्ट करने वाले यथार्थवादी कथोपकथन की योजना कथाकार ने की है। उनके संवाद पात्रों के सुख-दुःख, आशा-उल्लास आदि मनोभावों का निरूपण करने में समर्थ है। कथोपकथन की भाषा भी पात्र एवं परिस्थिति के अनुकूल है। उदाहरण के लिए 'प्रभावती' जैसे ऐतिहासिक उपन्यास के पात्र अपने कथोपकथन में परिमार्जित हिन्दी का प्रयोग करते हैं वहीं 'चमेली' जैसे यथार्थवादी उपन्यास के पात्रों के कथोपकथन में ग्राम्य भाषा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

निराला के कथा-साहित्य के उद्धरण इन तथ्यों को प्रमाणित करेंगे –

''कनक ने तुरन्त फरमाइश की, कुछ गाओ और नाचो। मैं तुम्हारा विदेशी नाच देखना चाहती हूँ।''

''टब टुम बी आओ, हियाँ डांसिंग-स्टेज कहाँ?'' ''यहीं नाचो। पर मुझे नाचना नहीं आता, मैं तो सिर्फ गाती हूँ।''

'अच्छा, टुम बोलटा, टो हम नाच सकटा।'

साहब अपनी भोंपू-आवाज में गाने और नाचने लगे। कनक देख-देखकर हँस रही थी। कभी-कभी साहब का उत्साह बढ़ाती, 'बहुत अच्छा, बहुत सुन्दर।' साहब की नजर पियानो पर पड़ी। कहा, 'डेक्खो, आबो हम पियानो बजाटा, फिर टुम कहेगा, टो हम नाचेगा।'

'अच्छा, बजाओ।' (अप्सरा, पृष्ठ ४२)

'एक बात पूछूँ?' कनक ने राजकुमार के कन्धे पर ठोढ़ी रखते हुए पूछा।

'पूछो।'

'तुम मुझे क्या समझते हो?'

'मेरी सुबह की पलकों पर उषा की किरण।' राजकुमार कहता गया, 'मेरे साहित्यिक जीवन-संग्राम की विजय।' कनक के सूखे कण्ठ की तृष्णा को केवल तृप्त हो रहने को जल था, पूरी तृप्ति का भरा हुआ तड़ाग अभी दूर था।

राजकुमार कहता गया, 'मेरी आँखों की ज्योति, कण्ठ की वाणी, शरीर की आत्मा, कार्य की सिद्धि, कल्पना की तस्वीर, रूप की रेखा, डाल की कली, गले की माला, स्नेह की परी, जल की तरंग, रात की चाँदनी, दिन की छाँह....।'

'बस-बस। इतनी कविता एक ही साथ कि मैं याद भी न कर सकूँ। कवि लोग, सुनती हूँ, दो-ही-चार दिन में अपनी ही लिखी हुई पंक्तियाँ भूल जाते हैं।' (अप्सरा, पृष्ठ ५६)

'इसी भारत में आश्रमहीन बालिका और तरुणि विधवाएँ भी हैं। उन्हें खाने को नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी उन्हें ग्रहण करना पड़ता है, चिरसंचित सतीत्व-धन से भी हाथ धोती हैं। इस घोर सामाजिक अन्धकार में पथ-परिचय का बहुत कुछ प्रकाश पा अलका को कदापि खिन्न नहीं होना चाहिए।'

'हम कहते हैं, आगे यह खेद न रहेगा। ज्ञान की शान्ति में दुःख की सब ज्वाला बुझ जायगी। वह अपनी बहनों के लिए प्रदर्शिका होकर बहुत कुछ कर सकती है। क्यों अलका?'

'जैसी आपकी आज्ञा।' नत-करुण नयना अलका ने धीमे स्वर में कहा।

(अलका, पृष्ठ १५०)

सुनाकर स्वगत कहने लगी – 'आज पंडित गंगाधर महाराज मिल गये। जब राम की कृपा होती है तब क्या कोई काम बिगड़ता थोड़े है? बाहर निकली नहीं कि महाराज खड़े थे, सगुन देखकर मैं गोड़ों गिरी.... मैंने कहा, महाराज किसी स्त्री को अगर कहा जाय कि पति को मानो भी और खूब लड़ाका भी हो, तो सन्सकीरत में कैसा कहेंगे?'

भाव में भरकर बोले, 'वह महाराज सिवसरूप हम ही हैं। देश निकाला दिलवाय दिह्यो। बरामन का सराप आखिर पड़ा न?' बेबस बलवन्त पलकें मारते सुनते रहे। महाराज कहते गये, 'हमारे पास चार भलेमानस आते हैं, चार नंगालुच्चा आते हैं। मगर हम किसी की कबाहत नहीं कहते। मान लेव, आपै एक ठकुराइन ले आओ तो अब हम कहते फिरें कि मनवा के महाराज ठकुराइन भगाय लाये रहें। ऐसे उस मामले को समझो।' (प्रभावती, पृष्ठ २८४)

'गुरुदीन हँसकर बोले, ''नाक तक आ गये हैं। लेकिन वाह री औरत, मिजाज वैसा ही है। अपने हार से पानी लाती है। और रमचन्दा वहीं नहाने भी जाता है।'

'अब काहे का हार।' ललई बोले, 'जब तक मालिक खेत नहीं उठाते तब तक भर लें कुएँ से पानी। फिर?' 'फिर बेटा जूता गाँठि, अम्मा खाल सेहलावे।' बेनीप्रसाद भाववाली दृष्टि से देखते हुए बोले, 'क्यों गुरुदीन भाई?'

'यह तो होना ही है। मालिक ने कहा था कि खेत तुमको देंगे, अबकी लिखवा लेना पट्टा। मांगते बहुत हैं।' गुरुदीन ने सरल भाव से कहा। 'अरे भाई, बंगाली और पुलिस, ये बाप के नहीं होते।' कामता ने कहा, 'जाड़े भर हम कलकत्ते में बनियाइन बेचते हैं, हमको अच्छी तरह मालूम है। उधार दे दो तो वसूल नहीं होने का। तगादे जाव तो कानून बताते हैं।'

'अब धर्म नहीं रहा।' गुरुदीन ने नाक सिकोड़कर जैसे किसी पर घृणा करते हुए कहा।

(निरुपमा, पृष्ठ ३६६)

श्रीमती जी गर्म होकर बोली, 'तो मैं मछुआइन हूँ?'

'यह मैं कब कहता हूँ, मैंने विनयपूर्वक कहा, कि तुम पण्डिताइन नहीं मछुआइन हो, मैंने तो एक बात कही, जो लोगों में कही जाती है।'

श्रीमती जी ने बड़ी समझदार की तरह पूछा, 'तो मैं भी मछलियाँ खाती हूँ?'

मैंने बहुत ठण्डे दिल से कहा, 'इसमें खाने की कौन सी बात है? बात तो सूँघने की है। अपने बाल सूँघो, तेल की ऐसी चीकट और बदबू है कि कभी-कभी मुझे मालूम देता है कि तुम्हारे मुँह पर कै कर दूँ।'

श्रीमती जी बिगड़कर बोलीं, 'तो क्या मैं रण्डी हूँ, जो हर वक्त बनाव-सिंगार के पीछे पड़ी रहूँ?'

'लो' मैंने बड़े आश्चर्य से कहा, 'ऐसा कौन कहता है, लेकिन तुम बकरी भी तो नहीं हो कि हर वक्त गँधाती रहो, न मुझे राजयक्ष्मा का रोग है, जो सूँघने को मजबूर होऊँ।'

(कुल्लीभाट, पृष्ठ ४४)

त्रिलोचन दूसरे दिन आये, और कहा, 'बिल्लेसुर, तैयार हो जाओ।'

बिल्लेसुर ने कहा, 'मैं तो पहले से तैयार हो चुका हूँ।'

त्रिलोचन खुश होकर बोले, 'तो अच्छी बात है, चलो।' बिल्लेसुर ने कहा, 'भैया, मन्नी की मौसिया सास की भतीजी की ससुराल में एक लड़की है, कल आये थे, बातचीत पक्की कर गये हैं, अब तो मुझे माफी दीजिए।'

त्रिलोचन नाराज होकर बोले, 'तो वह ब्याह जरूर गैतल होगा। वैसी ही लड़की होगी। हम शर्त बदकर कह सकते हैं।'

मुस्कराकर बिल्लेसुर ने जवाब दिया, 'और तुम्हारा दूध का धोया है? मन्नी की मौसिया सास की भतीजी की ससुराल की लड़की में दाग है, और तुम्हारी में, जिसके न बाप का पता, न माँ का, न गाँव का, न सम्बन्ध का, मखमल का झब्बा लगा है?'

(बिल्लेसुर बकरिहा, पृष्ठ १०६)

दोनों ने एक दूसरे को देखा। मुन्ना ने छींटा जमाया, 'एक घोड़ा फेर रही हूँ।'

'वाह रे मेरे सवार। कौन घोड़ा?'

'एक हिन्दुस्तानी घोड़ा है।'

जमादार जटाशंकर झेंपे। गुस्सा आया। पर सँभलकर कहा, 'और घोड़ी बंगाली है ?'

मुन्ना को भी बुरा लगा। बदलकर कहा, 'जब हमसे बातचीत करो, रानी समझकर करो।' (चोटी की पकड़, पृष्ठ १३९)

'जनाब का दौलतखाना ?' यूसुफ ने पूछा।

'जनाब का शुभ नाम ?' प्रभाकर ने पूछा।

'नाचीज हुजूर की खिदमत में।' यूसुफ ने जवाब दिया।

'रहमदिली ?' प्रभाकर ने मुस्कराकर कहा।

'रहमदिली-अलअमाँ।' यूसुफ ने दोहराकर दोस्ती जतायी।

(चोटी की पकड़, पृष्ठ १६२)

यमुनाप्र[illegible] ने कहा, 'पहलवान, जमींदार का मामला है। सरकार भी जमींदार है, आपका पक्ष लेने के लिए आपका रिश्तेदार राजा रईस कोई गाँव में खड़ा न होगा। मामलेदारों में उसकी कोई गवाही काम न देगी।'

पहलवान चले। जी से घबराये। कहा, 'मामला तो हमको कुछ मालूम नहीं। राय हम इस पर क्या दें ?'

'राय नहीं। रुपये चाहिए। पुलिस के हाथ अब जाने ही वाला है। तब दूने से ज्यादा पर कहीं छूटियेगा।'

'देखिए, बिना कुसूर के अगर सजा भी हो जायगी तो काट लेंगे। और क्या करें ?'

''तो पहलवान, सजा ही होगी। जिन्दगी-भर के लिए दागी बन जाइयेगा। फिर जमींदारी ही का सहारा ढूँढ़ना होगा और गाँव में।''

''इतने दबकर तो कभी नहीं रहे। अब मालूम भी नहीं कि माजरा क्या है तब क्या हाँ करें और क्या नहीं? आप माजरा बतला दीजिए। हम आपको ही जवाब देंगे।''

'भाई बात हमारी हो तो कहें। दुनिया भर जुत गयी, अभी मौसम का रंग ही नहीं मालूम। कहीं भी जाइयेगा, राज ही मिलेगा, अपने घर में तो पक्की बात ले लीजिए।'

'तो हमारे घर हरसिंगार के फूलों की तरह रुपये नहीं बिछ जाते। हम बिछा कहाँ से दें ? अगर पुलिस के पेंच में आ गये और अपने को बेकसूर पाया तो आगे दुश्मन से बदला निकाल लेंगे। ठाकुर होकर और कौन-सी सचाई वाली बात करें?' (काले कारनामे, पृष्ठ २२९)

चमेली को देखते ही दुखी ने कहा, 'क्यों री, नाक कटा ली न तूने ?'

'अंधेरे में तुझे अपनी नाक न देख पड़े तो मेरा क्या कसूर है?' चमेली ने बाप को जवाब दिया।

दुखी हैरान हो गया। कहा, 'अरी, जमीन पर पैर रखकर चल।'

'तो तू क्या देखता है, किसी के सिर पर पैर रखकर चलती हूँ जमींदार के सिपाही की तरह?' (चमेली, पृष्ठ २५४)

कम्पनी के काशी पहुँचने पर पवित्रा के मालिक स्वयं नरेन्द्र से मिले। ....नरेन्द्र ने कहा - 'आपसे भाड़े का स्टेज नहीं मिला, अतः लाचार होकर मुझे दूसरा प्रबन्ध करना पड़ेगा।'

नम्र भाव से मुस्कुराते हुए पवित्रा के मालिक ने कहा – 'पवित्रा आप ही की है। आप कुछ भी न दें।'

नरेन्द्र ने कहा, 'नहीं, ऐसी तो कोई बात है नहीं, आप अगर लेना चाहें।'

वैसा ही नम्र उत्तर आया, 'पचास नहीं, तो चालीस सैकड़ा तो दीजिए।'

नरेन्द्र ने भौंहें सिकोड़ लीं। कहा, 'हमारे चालीस सैकड़े के मानी हैं, भाड़े के अलावा आपको सात-आठ सौ रुपये रोज मिलेंगे। अगर यही है, तो पन्द्रह सैकड़ा ले लीजिए।'

'पन्द्रह सैकड़ा।'

नरेन्द्र अट्टहास हँसा। संयत होकर बोला, 'बाबू धनीराम जी मैं ६ महीने में एक किताब लिखता था, पर उसके लिए आपने मुझे १५ सैकड़ा भी नहीं दिया।'

(सफलता कहानी, पृष्ठ ३७८)

'जनाब पंजाबी हैं?'

मैंने सोचा, जितनी कम मिहनत हो, अच्छा है, कहा –

"जी।"

उन्होंने पूछा, 'कारोबार करते हैं?'

मैंने कहा, 'जी।'

उन्होंने पूछा, 'यहीं?'

मैंने कहा, 'नहीं लखनऊ में।' मैं अण्डेवाला प्लेट उठाकर कटि से खाने लगा। प्रश्नकर्ता को अभी पूरी-पूरी दिलजमई न हुई थी।

पूछा, 'काहे का कारोबार करते हैं?'

मैंने बिना विचार किये कह दिया, 'रेशम का।'

ज्यों मुसलमान सज्जन का आश्चर्य बढ़ा त्यों ही मैंने भी सोचा, 'यार, पंजाब में रेशम की पैदावार कहाँ होती है?'

बदलकर बोला, 'लेकिन मैं स्वीडरलैण्ड से रेशम मंगाता हूँ।'

'जनाब का इस्मशरीफ?'

मैंने कहा, 'जनाब, मुझे वकूफ हुसैन कहते हैं।' (कला की रूपरेखा, पृष्ठ ३८६)

'बात यह है पण्डितजी कि दहेज बहुत कम मिल रहा है। आप सोचें कि अब तक सात-आठ हजार रूपया तो लड़के की पढ़ाई में ही लग चुका है। ....अब हमको खर्च भी पूरा न मिला, तो लड़के को पढ़ाकर हमने फायदा क्या उठाया?'

"अच्छा, तो कहिए, क्या चाहते हैं आप?"

"पन्द्रह हजार।"

"तब तो हमारे यहाँ बरतन भी साबित न रहेंगे।"

"अच्छा, तो आप कहिए।"

"नौ हजार लीजिए।"

"अच्छा, बारह हजार में पक्का।"

"ग्यारह हजार देते हैं आप?" पं० कृष्णशंकर ने उभरकर पूछा

"दस हजार, सही बताइए।"

"अच्छा, पक्का, मगर पाँच हजार पेशगी।" (ज्योतिर्मयी, पृष्ठ २९२)

विद्या – It is very sweet and full of fascinations, if you be charmed sooner or later to master the language.

श्याम – कालिदासादधिकोऽधिष्ठितोऽस्ति कोऽपि न मया ज्ञातं।
स्थिते सत्यस्मिन्। अधिकरिष्यति कोप्यन्यो नाहमनुभवामि।

विद्या – But what may be the language between if I like to stay perfectually with you in matrimonial knot ?

श्याम ने कहा – संस्कृतं, विशुद्धीकृतास्ति भाषा। (विद्या, पृष्ठ ४२१)

निराला के उपन्यासों, रेखाचित्रों एवं कहानियों के ये उद्धरण इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि उन्होंने अपने पात्रों की आपसी बातचीत का सफलतापूर्वक उपयोग किया है। ये कथोपकथन न केवल कथा-विकास में सहायक हैं बल्कि इनसे पात्रों के चरित्रों की अंतर्बाह्य विशिष्टताओं का भी पता चलता है। विविध भाषाओं के प्रयोग के कारण ये कथोपकथन अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़े हैं। कहीं-कहीं लेखक की अपनी विचारधारा पात्रों की बातचीत के माध्यम से प्रकट हुई है।

पात्रानुकूल संवाद योजना के कारण कहीं संवाद छोटे तो कहीं बड़े हैं। उनमें तत्कालीन परिस्थितियों एवं समस्याओं के उद्घाटन की प्रचुर क्षमता है। उदाहरणतः 'अलका' उपन्यास में स्नेहशंकर जी एवं सावित्री का वार्तालाप अत्यधिक विस्तृत है किन्तु ये संवाद लेखक की देशकाल की समस्याओं के प्रति गम्भीर चिन्ता धारा को प्रकट करते हैं। इसी तरह 'विद्या' कहानी के दोनों पात्रों की बातचीत में दो भिन्न भाषाओं का प्रयोग अपने आप में एक अभिनव प्रयोग है।

अंततः कहा जा सकता है कि निराला के कथा-साहित्य के कथोपकथन अपना औचित्य रखते हैं। सहजता, स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता, भाषागत विविधता, अकृत्रिमता तथा ध्वन्यात्मकता के कारण उनकी संवाद-योजना सशक्त एवं प्रभावशाली है, यह बात निर्विवाद स्वीकार की जा सकती है।

निराला के कथा-साहित्य में देशकाल एवं वातावरण

रचना-शिल्प का एक महत्वपूर्ण तत्व है देशकाल एवं वातावरण। अपनी कृति को सजीव, सुसंगत बनाने के लिए रचनाकार देश-काल एवं वातावरण का इस तरह से चित्रण करता

है कि सम्पूर्ण कथा में सत्यता एवं विश्वसनीयता उत्पन्न हो जाती है। इस तरह कभी यथार्थ तो कभी कल्पना के सहारे लेखक अपने अभीष्ट वातावरण की सृष्टि करता है। इस वातावरण का प्रभाव पाठकों पर इस कदर पड़ता है कि कुछ समय के लिए वह अपनी यथास्थिति को भूलकर लेखकीय देशकाल एवं वातावरण में विचरण करने लगता है। अत: कथा-साहित्य की सफलता में देशकाल तथा वातावरण की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

डॉ० श्यामसुन्दर दास देशकाल की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं – "उपन्यास के देश और काल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित आचार-विचार, रहन-सहन और परिस्थिति आदि से है। इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं – एक तो सामाजिक और दूसरा ऐतिहासिक या सांसारिक। ....बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसलिए मनोरंजक होते हैं कि उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अंश से संबंध रखने वाला वर्णन होता है। ऐसी दशा में जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही सटीक एवं स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जायगा।"[१०]

इस तरह देशकाल एवं वातावरण का चित्रण कथा-साहित्य में सजीवता एवं स्वाभाविकता उत्पन्न करता है। विशेषकर ऐतिहासिक, आंचलिक एवं स्थानीय रंगों से युक्त रचनाओं में देशकाल एवं वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वहाँ सम्पूर्ण वर्णन को जीवन्त बनाने के लिए उस स्थान विशेष की भाषा, संस्कृति, लोक-व्यवहार मुहावरे आदि का प्रयोग एवं सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है।

देशकाल एवं वातावरण का चित्रण जहाँ एक ओर कृति को स्वाभाविक एवं आकर्षक बनाने के लिए आवश्यक है वहीं दूसरी ओर यह लेखकीय कौशल का परिचायक है। वातावरण चित्रण में लेखक को अत्यधिक संयम बरतना होता है अन्यथा वर्णन उबाऊ भी हो सकता है एवं मुख्य कथा की गति में अवरोधक बन सकता है।

अत: वातावरण का सफल एवं सजीव चित्रण पाठकों की मानसिक पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वातावरण की समुचित योजना रचना में अपूर्व प्रभाव की सृष्टि करती है। श्रेष्ठ वातावरण की सृष्टि शब्द-चित्रों पर निर्भर करती है। अत: रचनाकार का कुशल शब्द-शिल्पी होना आवश्यक है।

निराला ने अपने कथा-साहित्य में देशकाल, वातावरण एवं विभिन्न परिस्थितियों का व्यापक चित्रण किया है। एक सजग एवं संवेदनशील कलाकार होने के नाते निराला जीवन के विविध क्षेत्रों में घटने वाली सूक्ष्म-से सूक्ष्म घटनाओं से स्पंदित होते थे। अपने आस-पास के परिवेश का उन्होंने सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। अत: अपने कथा-साहित्य में जीवन की विविध परिस्थितियों का चित्रांकन करते हुए उन्होंने युग-धर्म का पालन किया। अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'प्रभावती' को छोड़कर अन्य समस्त उपन्यासों, रेखाचित्रों एवं कहानियों में निराला ने १९२० से १९५० तक तीन दशकों के भारत के युग-जीवन की सजीव झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। आर्य समाज के प्रयत्नों के कारण उस युग में नारी-उत्थान आन्दोलन चतुर्दिक फैल चुका था।

स्त्री-शिक्षा, वेश्याओं और विधवाओं का उद्धार, अछूतोद्धार जैसे नारों का प्रभाव उस युग के प्रत्येक बुद्धिजीवी पर पड़ा।

राजनीति के परिप्रेक्ष्य में जमींदारों एवं सामन्तों के विलासिता पूर्ण जीवन एवं निरीह जनता पर उनके पाशविक अत्याचार, बंगाल की क्रांतिकारी गतिविधियाँ, स्वाधीनता-आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग-आन्दोलन, हिन्दू मुस्लिम दंगे, कांग्रेस अधिवेशन आदि गतिविधियाँ पूरे जोरों पर थीं। निराला ने अपने कथा-साहित्य में युग-जीवन के इन तमाम परिदृश्यों को समाहित किया।

सांस्कृतिक क्षेत्र में नागरिक संस्कृति एवं ग्रामीण संस्कृति तथा साहित्यिक क्षेत्र में प्रकाशकों की शोषण-नीति, साहित्यकारों की उपेक्षा, जैसे तमाम युगीन संदर्भों को निराला ने अपने कथा-साहित्य में समेटा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द की भाँति निराला ने विभिन्न समस्याओं का प्रत्यक्ष समाधान प्रस्तुत न करके स्थिति के उज्ज्वल, मलिन पक्षों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि पाठक स्वयं समाधान ढूँढ लें।

देश-काल एवं वातावरण के जीवन्त चित्रण में निराला की भाषा-शैली, कल्पना शक्ति एवं सूक्ष्म-पर्यवेक्षण-कौशल का विशेष योगदान है। निराला के कथा-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

१९३१ में प्रकाशित अपने प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' में निराला ने वेश्या समस्या को उठाया है एवं उसका विवाह करा कर क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत किया है। उपन्यास की घटनाओं का प्रधान केन्द्र कलकत्ता एवं उसका समीपवर्ती इलाका है। एक ओर कलकत्ते के नागरिक जीवन, वहाँ की चहल-पहल तथा दूसरी ओर विजयपुर स्टेट, वहाँ के रजवाड़े की शानो-शौकत का जीवन्त चित्रण उपन्यास में किया गया है। प्रसंगवश लखनऊ के किसान आन्दोलन का भी जिक्र आया है। संध्या के समय कलकत्ते की रंगीनी का जीवन्त वर्णन निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है –

'देखते-देखते सन्ध्या के छह का समय हुआ। विएटर गेट के सामने पान खाते, सिगरेट पीते, हँसी-मजाक करते हुए बड़ी-बड़ी तोंदवाले सेठ घड़ियाँ चमकाते, सुनहली डण्डी का चश्मा लगाये हुए कॉलेज के छोकरे, अंगरेजी अखबारों की एक-एक प्रति लिये हुए हिन्दी के सम्पादक सहकारियों पर अपने अपार ज्ञान का बुखार उतारते हुए, पहले ही से कला की कसौटी पर अभिनय की परीक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हुए टहल रहे थे। ....जहाँ बड़े-बड़े आदमियों का यह हाल था, वहाँ थर्ड क्लास तिमंजिले पर फटी-हालत, नंगे-बदन, रूखी-सूरत, बैठे हुए बीड़ी-सिगरेट के धुएँ से छत भर देने वाले, मौके-बेमौके तालियाँ पीटते हुए 'इनकोर-इनकोर' के अप्रतिहत शब्द से कानों के पर्दे पार कर देने वाले, अशिष्ट, मुंहफट, कुली-क्लास के लोगों का बयान ही क्या?'

(अप्सरा, पृष्ठ २५)

इसी तरह वेश्यालय के परिवेश का जीवन्त वर्णन इस उद्धरण में देखा जा सकता है–

'एक बड़ी-सी, अनेक प्रकार के देश-देश की अप्सराओं, बादशाहजादियों, नर्तकियों

के सत्य तथा काल्पनिक चित्रों तथा बेलबूटों से सजी हुई दालान। झाड़-फानूस टंगे हुए, फर्श पर कीमती गलीचा-कारपेट बिछा हुआ। मखमल की गद्दीदार कुर्सियाँ। कौच और सोफे तरह-तरह की मेजों के चारों ओर कायदे से रखे हुए। बीच-बीच में बड़े-बड़े आदमी के आकार में इयोढ़े शीशे। एक तरफ टेबल-हारमोनियम और एक तरफ पियानो रक्खा हुआ। और-और यन्त्र भी – सितार, सुरबहार, एसराज, वीणा, सरोद, बैंजो, बेला, क्लारियोनेट, कारनेट, मँजीरे, तबले, पखावज, सारंगी आदि यथास्थान सुरक्षित रक्खे हुए। छोटी-छोटी मेजों पर चीनी-मिट्टी के कीमती शो-पीस रखे हुए। किसी-किसी में फूलों के तोड़े। रंगीन शीशे-जड़े तथा झंझरियोंदार डबल दरवाजे लगे हुए। दोनों किनारों पर मखमल की सुनहरी जालीदार झूल चौब के चाँद के आकार से पड़ी हुई। बीच में छः हाथ की चौकोर करीब डेढ़ हाथ की ऊँची गद्दी, तकिये लगे हुए।' (अप्सरा, पृष्ठ २९)

अदालती वातावरण निम्नलिखित उद्धरण में प्रत्यक्ष हुआ है –

'अदालत लगी हुई थी। एक हिस्सा रेलिंग से घिरा था। बीच में बड़े तख्त पर मेज और कुर्सी रक्खी थी। मैजिस्ट्रेट मिस्टर रॉबिन्सन बैठे थे। एक ओर कटघरे के अन्दर बन्दी राजकुमार खड़ा हुआ, एक दृष्टि से बेंच पर बैठी हुई कनक को देख रहा था, और देख रहा था उन वकीलों, बैरिस्टरों और कर्मचारियों को, जो उसे देख-देखकर आपस में एक-दूसरे को खोद-खोदकर मुस्किरा रहे थे, जिनके चेहरे पर, झूठ, फरेब, जाल, दगाबाजी, कठहुज्जती, दम्भ, हास्य और तोताचश्मी – सिनेमा के बदलते हुए दृश्यों की तरह - आ-जा रहे थे। ....एक तरफ पत्रों के संवाददाता भी बैठे हुए थे, एक तरफ वकील-बैरिस्टर तथा दर्शक।' (अप्सरा, पृष्ठ ४५)

इस तरह विवरणात्मक चित्र-निराला की सूक्ष्मदर्शिता का बोध कराते हैं। प्रसंगवश अंग्रेज पुलिस अफसरों की उच्छृंखलता, ग्रामीण स्त्रियों की रूढ़िवादिता, क्रांतिकारियों की राजनीतिक पटुता आदि के चित्र देशकाल की तत्कालीन स्थिति का बोध कराते हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही लेखक ने इडेन गार्डेन की सांध्यकालीन सुषमा का वर्णन कर वातावरण को प्रत्यक्ष किया है। 'अप्सरा' की अपेक्षा 'अलका' उपन्यास में निराला ने देश-काल, वातावरण एवं परिस्थितियों के चित्रण में अधिक सजगता का परिचय दिया है। इसमें एक ओर जमींदार-किसान संघर्ष, सामन्तों के अनाचार और भोगविलास का चित्रण है तो दूसरी ओर देश-सेवा की भावना से ओत-प्रोत, सुधारवादी संकल्प से दृढ़ तत्कालीन युवा-वर्ग का संघर्ष दिखाया गया है। अवध के ताल्लुकेदारों के राजसी ठाट-बाट, आर्य-समाज का प्रचार-प्रसार, किसान-संगठन आदि का उल्लेख तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक जीवन के चित्रों को प्रत्यक्ष कर देता है। उपन्यास की घटनाओं के प्रमुख केन्द्र लखनऊ, उसके समीपवर्ती ग्रामीण इलाके, कानपुर रहे हैं। सुराज की चर्चा, कांग्रेस की नीति, आदि समस्याओं पर लेखक ने गहराई से विचार किया है।

उपन्यास के आरम्भ में लेखक ने महासमर के बाद की देश की स्थिति की कारुणिक झांकी प्रस्तुत की है –

"महासमर का अन्त हो गया है, भारत में महाव्याधि फैली हुई है। एकाएक महासमर की जहरीली गैस ने भारत को धर के धुएँ की तरह घेर लिया है, चारों ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय। ....युक्त प्रान्त में इसका और भी प्रकोप। गंगा, यमुना, सरयू, बेतवा, बड़ी-बड़ी नदियों में लाशों के मारे जल का प्रवाह रुक गया है। ....गंगा के एक सेर जल में आठवाँ हिस्सा सड़ा मांस और मेद है। गंगा के दोनों ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट हैं, उनमें एक-एक दिन में, दो-दो हजार तक लाशें पहुँचती हैं। ....घोर दुर्गन्ध.... नदियों से दूर वाले देशों में लोगों ने कुओं में लाशें डाल-डाल दीं। ....यह सब नृशंस महामृत्यु-ताण्डव पन्द्रह दिनों के अन्दर हो गया। भारत के साठ लाख आदमी काम आये।" (अलका, पृष्ठ १३७)

स्नेहशंकर जी के संवादों में देश की तत्कालीन राजनीति प्रत्यक्ष हो उठी है–

"स्वतंत्रता के नाम से देश घोर परतन्त्र है। संवाद-पत्र एक दल-विशेष, व्यक्ति-विशेष की नीति के प्रचारक हैं। ....सम्पादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं, जो केवल बजते हैं ....उनके भीतर वैसे ही पोल भी है।" (अलका, पृष्ठ १५२)

वर्ष १९३३ की स्थिति का संकेत देते हुए लेखक लिखते हैं –

"उन दिनों कानपुर में लाल-इमली-ऊलेन-मिल्स, काटन-मिल्स जैसे कारखानों में देशी वस्त्रों का बयन विदेशी मूल-सूत्रों के चयन से होता था, जिसका विस्तार देहात तक कोरियों और जुलाहों की गजी और गाढ़े में भी हो चुका था, शान्तिपुर, ढाका, बंगलक्ष्मी, अहमदाबाद सब जगह विदेशी सूत की ही आबादी थी। अतः इनके वसन के रंग तक में स्वदेशीपन न था। मिल के कपड़े गेरुए की मिसाल नारंगी रंग से रंगे थे। पर इनके भीतर जो रंग था, वह आज १९३३ ई० में भी मुश्किल से मिलता है।" (अलका, पृष्ठ १६२)

वर्षाकालीन प्रकृति का अत्यन्त मनोहारी चित्रण कर उन्होंने सम्पूर्ण वातावरण को जीवन्त बना दिया है –

"वर्षा के घुँघराले, काले-काले दिगन्त तक फैले हुए बाल धीमी-धीमी हवा में लहरा रहे हैं। उसने सारे संसार को सुख के आलिंगन में बाँध लिया है। ....गुच्छों में खुली-अधखुली किरणों की कलियों-सी युवती-तरुणी-बालिकाएँ, जगह-जगह हिंडोरों पर झूलती हुई, इसी प्रकार जनता के समुद्र को सुहावने सावन, मल्लार, कजली और बारामासियों से समुद्वेल कर रही हैं। सुमि के स्वप्न में भारत जगने का दुःख भूल गया है।" (अलका, पृष्ठ ११८)

ग्रामीण परिवेश का चित्रण निम्नलिखित उद्धरण में देखा जा सकता है –

"गाँव के बाहर एक मन्दिर और उसी से लगी हुई अतिथिशाला है। सामने चारों ओर से बँधा हुआ पक्का तालाब, बगल में कुआँ, फुलवाड़ी। कोई रहता नहीं। सुबह-शाम स्त्री-पुरुषों की भीड़ स्नान, पूजन और कसरत के लिए होती है।" (अलका, पृष्ठ १६१)

लखनऊ के राजनीतिक, सामाजिक जीवन एवं वहाँ के लोगों के कार्य कलापों का चित्रण कर लेखक ने देश-काल एवं वातावरण के अपने सूक्ष्म-ज्ञान का परिचय दिया है। कुछ

अंश तक इसमें आंचलिकता के तत्त्व भी पाये जाते हैं। विशेषकर प्रभाकर के मित्र अजित द्वारा साधु के वेश में गाँव में जाकर रहना एवं शोभा का पता लगाना - जैसे प्रसंगों में अवध की संस्कृति मूर्तिमान हो उठी है।

'प्रभावती' ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें कान्यकुब्जेश्वर सम्राट जयचन्द के समय की कथा को पिरोया गया है। इसमें प्रधान घटना-केन्द्र कान्यकुब्ज है। इसके अलावा दलमऊ, लालगढ़ और मनवां तक कथानक का विस्तार दिखाया गया है। इन रियासतों के राजाओं का पारस्परिक विद्वेष, छल-कपट द्वारा एक दूसरे को नीचा दिखाना जैसी घटनाओं को तर्क-वितर्क सहित प्रस्तुत कर मध्यकालीन राजपूती दम्भ एवं वैमनस्य का यथार्थ चित्रण किया गया है। साथ ही इन राजाओं को स्नेह-सम्बन्ध में बांधने की बजाय महाराज की उदासीनता तथा इसके दुष्परिणामों का संकेत यमुना के इन शब्दों में मिलता है –

"गोरी हार खाकर भी चुप नहीं, अपनी शक्ति बढ़ाता जा रहा है। आश्चर्य नहीं हिन्दू-संस्कृति पर मुसलमानों की विजय हो। उनमें हमसे अधिक एकता है।" (प्रभावती, पृष्ठ २५६)

राजनीति के साथ-साथ सामाजिक जीवन में वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न तमाम विषमताओं की ओर भी कथाकार ने संकेत किया है। उपन्यास के आरम्भ में ही उन्नाव एवं उसके पास से निकली लवणा नदी, बैसवाड़ा अंचल की प्राकृतिक छटा का सुरम्य एवं विस्तृत वर्णन उपस्थित कर कथानक को एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान की है। उदाहरण–

"लवणा एक छोटी बरसाती नदी है। उन्नाव के पास ऊसर से निकली, खजुर गाँव से कुछ दूर गंगा में मिली है। उपनिषदों की तरह सैकड़ों नाले इससे आकर मिले हैं।"

(प्रभावती, पृष्ठ २३१)

इसी तरह बैसवाड़ा अंचल की प्राकृतिक सुषमा का भव्य वर्णन निम्नलिखित उद्धरण में देखा जा सकता है –

"यदि इस विस्तृत भूखण्ड को शतयोजनायत एक रम्य कानन कहें, तो अत्युक्ति नहीं होती। ...गंगा की उपजाऊ तट-भूमि, धौत धवल मन्दर-तुल्य मन्दिर, कारूकार्य-खचित द्वार, दिव्य भवन, देववाणी तथा देवसरि का आर्य भावानुसार सहयोग, खुली गोचर-भूमि, सुख-स्पर्श मन्द-मन्द पवन-प्रवाह, अनिन्द्य हिन्दी के मंजे कण्ठ से निकले ग्राम-गीत किसी भी दर्शक भ्रमणकारी को तत्काल मुग्ध कर लेंगे।" (प्रभावती, पृष्ठ २३२)

लालगढ़ के भीतरी-बाहरी वैभव का विवरणात्मक चित्र प्रस्तुत कर लेखक ने देशकाल की आकर्षक रूप में योजना की है।

दलमऊ महानगर का भव्य वर्णन कर ऐतिहासिकता की रक्षा की है।

राजकुमारी प्रभावती के नौका-विहार के लिए की गई तैयारियों का वर्णन बिल्कुल राजसी वातावरण के अनुरूप ही किया गया है –

"किले की बगल में, घाट पर नाव लाकर लगा दी गयी। दासियों ने नाव के नीचे और

छत पर गद्दे बिछा दिये, कामदार चादरें लगा दीं। रेशमी तकिये, गुलाब-पास, इत्रदान, पानदान, सोने के पात्रों में मदिरा, क्षुद्र-मर्मर की पतली प्यालियाँ, छलका आसव, गन्धराज के गजरे, सजी फूलदानियाँ, मृदंग-मंजीरा वीणा आदि वाद्य, नूपुर-गुच्छ, ढाल-तलवार, तीर-कमान, बल्लम-साँग आदि अस्त्र-शस्त्र तथा अन्यान्य आवश्यक सामान यथास्थान सजा दिये। पाचक अनेक प्रकार के पकवान्न, मिष्टान्न, सामिष-निरामिष भोजन, चबेना अचारादि रख आया।"

(प्रभावती, पृष्ठ २४४)

लेखक ने ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण के लिए प्रान्त-विशेष के रीति-रिवाजों, वेश-भूषा, भाषा आदि की ओर विशेष ध्यान दिया है। प्रभावती जिस पूजा-विधि से राजकुमार देव का वरण करती है, वह विधि दलमऊ में ही विशेषत: प्रचलित थी। एक दूसरे के निकट स्थित होते हुए भी दलमऊ, कान्यकुब्ज एवं मनवा आदि प्रान्तों की भाषा में किंचित भिन्नता दिखाकर लेखक ने वातावरण निर्माण में अपनी पूर्ण सजगता का परिचय दिया है।

इसी तरह राजप्रासादों, सभा-मण्डपों के भव्य चित्र एवं प्रकृति के मनोहारी चित्र उपस्थित कर लेखक ने वातावरण-निर्माण में अपनी दक्षता का परिचय दिया है। यथा:-

"दिन का तीसरा पहर है। गोमती धीरे-धीरे बह रही है। सामने वन की हरियाली दूर तक फैली हुई और जगह-जगह झाड़, छोटे-बड़े पेड़, ढाक और जंगली वृक्षों का वन। चिड़ियाँ एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को पार करती हुई। मधुर-मधुर हवा संसार के स्थावर और जंगम सभी को हृदय से लगाकर शान्त करती थी। सूर्य की स्वर्णिम किरणें सुनहली दृष्टि से विश्व के प्रतिचित्र को देखती हुई।"

(प्रभावती, पृष्ठ ३३०)

उपन्यास के अन्त में संयोगिता स्वयंवर की कथा को प्रस्तुत कर लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक घटना क्रम को साकार कर दिया है। निष्कर्षत: देश-काल, वातावरण की दृष्टि से 'प्रभावती' उपन्यास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

'निरुपमा' उपन्यास में निराला ने बंगला एवं हिन्दी भाषी समाज के दो भिन्न-चरित्रों को परिणय सूत्र में बाँध कर अन्तर्प्रान्तीय एवं अन्तर्जातीय विवाह जैसा क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत किया है। इसलिए इसमें एक ओर बंगाल की सभ्यता एवं संस्कृति की झलक है तो दूसरी ओर युक्त प्रान्त के अन्तर्गत उन्नाव जनपद की संस्कृति का जीवन्त चित्रण भी परिलक्षित होता है। उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ लखनऊ और उन्नाव के निकट रामपुर गाँव में घटित होती हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही लखनऊ के ग्रीष्मकालीन वातावरण का सजीव चित्रांकन किया गया है -

"लखनऊ में शिद्दत की गरमी पड़ रही है। किरणों की लपलपाती दुबली-पतली असंख्यों नागिनें तरु लता-गुल्मों की पृथ्वी से लिपटी हुई कण-कण को डस रही हैं। उन्हीं के विष की तीव्र ज्वाला भाप में उड़ती हुई, हवा में लू होकर झुलसा रही है।" (निरुपमा, पृष्ठ ३४१)

यथास्थान लखनऊ की सड़कों, गलियों, मुहल्लों, होटल, विश्वविद्यालय आदि की चर्चा उपन्यास में मिलती है जिनमें सम्पूर्ण परिवेश साकार हो उठा है।

इसी तरह रामपुर के ग्रामीण जीवन का सफल चित्रांकन देशकाल की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उदाहरणत: –

"नीम के नीचे बैठक है। गुरुदीन तीन बिस्वेवाले तिवारी है, सीतल पाँच बिस्वेवाले पाठक, मन्नी दो बिस्वे के सुकुल, ललई गोद लिये हुए मिसिर पहले पाँच बिस्वे के पांडे, अब दो कट गये हैं, गाँववालों के हिसाब से, ललई पाँच ही जोड़ते हैं। सब हल जोतते और श्रद्धापूर्वक धर्म की रक्षा करते हैं। बेनी बाजपेई कानपुर के मिठाईवाले हैं, पर धर्म की रक्षा करते हुए बीसों बिस्वे बचाये हुए हैं, नीम की जड़ पर बैठे, बाकी इधर-उधर।" (निरुपमा, पृष्ठ ३६४)

इस तरह के चित्रों में न केवल ग्रामीण वातावरण बल्कि उनकी सामाजिक स्थिति, विचार-विश्वास, मान्यताएँ आदि सभी प्रत्यक्ष हो उठे हैं। कृषकों की दयनीय स्थिति, उनकी समस्याओं के प्रति शासक वर्ग की उदासीनता आदि का चित्रण सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश को साकार कर देता है। ग्राम्य परिवेश के चित्रण में भाषा, रीति-रिवाज, अंधविश्वास, संस्कार, ऊँच-नीच की भावना, पात्रों की वेश-भूषा, हाव-भाव यहाँ तक कि उनके नामों में भी स्थानीयता की छाप दृष्टिगोचर होती है।

देश-काल-निरुपण की दृष्टि से बंगाल के सामाजिक वातावरण को प्रत्यक्ष किया गया है। बंगाली पात्रों की भाषा, वेशभूषा, संस्कृति और मनोवृत्ति के चित्रण में बंगाल की छाप है। सावित्री और योगेश का निरुपमा को माँ कहना, निरुपमा और कुमार का बंगाली ढंग से विवाह, विवाह के समय ऊलू-ध्वनि, फूल-शय्या प्रथा आदि बंगाल की संस्कृति के अनुकूल है। यहाँ तक कि कमरों की सजावट में भी बंगाल प्रान्त के रहन-सहन की झलक मिलती है।

निष्कर्षत: देशकाल-वातावरण की दृष्टि से 'निरुपमा' एक सफल उपन्यास है।

'चमेली' यद्यपि निराला का अपूर्ण उपन्यास है किन्तु देश-काल एवं वातावरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें स्थानीय रंग बड़ी गहराई से चित्रित है। उपन्यास के आरंभ में ही खेतों के यथार्थ वर्णन द्वारा गाँव के वातावरण का जीवन्तता से चित्रण हुआ है। उदाहरण –

"उतरता बैसाख। खलिहान में गेहूँ, जव, चना, सरसों-मटर और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिन की मदद से, माड़ी हुई रास ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है।" (चमेली, पृष्ठ २५१)

ग्राम्य-जीवन की एक-एक पर्तों को ठेठ हिन्दुस्तानी भाषा में खोला गया है। भ्रष्ट ब्राह्मण, शोषक वर्ग के प्रतिनिधि जमींदार, शोषण के प्रतीक किसान शूद्र जाति के लोग, विधवा की दयनीय स्थिति आदि ग्रामीण जीवन की समस्त कुत्साओं का नग्न चित्र यहाँ उपस्थित है। पात्रों के आपसी वार्तालाप एवं उनके कार्य कलापों से आंचलिक तत्व पूर्ण यथार्थता के साथ उभरा है। ग्राम्य संस्कृति को साकार करने के लिए ठेठ ग्रामीण भाषा का प्रयोग, उसी के अनुरूप पात्रों के नामों की योजना आदि के कारण यह अपूर्ण उपन्यास भी देश-काल एवं वातावरण की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है।

'चोटी की पकड़' उपन्यास में स्वदेशी आन्दोलन की कथा है। देश-काल-वर्णन की दृष्टि से इसमें बंग-भंग के समय की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। विशेषकर राजनीतिक वातावरण का विस्तृत निरूपण उपन्यास में लक्षित होता है। उपन्यास में एक ओर अंग्रेजी साम्राज्य की कूटनीति, राजा-रजवाड़ों के वैभव विलासितापूर्ण जीवन, स्वदेशी कार्यकर्ताओं की गुप्त सभाओं, हिन्दू-मुस्लिम-दंगे, यत्र-तत्र ग्रामीण संस्कृति के विशद चित्रण ने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारतीय राजनीति के विशाल परिदृश्य को उभारा है वहीं साहित्यिक-सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, माइकेल मधुसूदन दत, बंकिमचन्द्र चटर्जी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, डी० एल० राय जैसे साहित्यकारों तथा ब्राह्म समाज, आर्य-समाज जैसी संस्थाओं की सामाजिक सक्रियता का जीवन्त चित्रण मिलता है।

विभाजनोपरान्त स्थिति के चित्रण में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी-आंदोलन, साहित्यकारों द्वारा भारत के अतीत का गौरव गान, बड़े-बड़े जमींदारों द्वारा प्रच्छन्न रीति से स्वदेशी आन्दोलन एवं कार्यकर्ताओं की सहायता जैसे परिदृश्य उपन्यास में बड़ी कुशलता से चित्रित किए गए हैं।

उपन्यास के आरम्भ में ही राजा साहब के गढ़ का अत्यन्त भव्य चित्र सम्पूर्ण काल खण्ड एवं वातावरण को प्रत्यक्ष कर देता है –

"सत्रहवीं सदी का पुराना मकान। मकान नहीं, प्रासाद, बल्कि गढ़। दो मील घेरकर चारदीवार। बड़े-बड़े दो प्रासाद। एक पुराना, एक नया। ....कई ड्योढ़ियाँ। हर ड्योढ़ी पर पहरेदार। कितने ही मन्दिर उद्यान, मैदान, तालाब, प्राचीर, कचहरी। दोनों ओर आम लगी-सीधी-तिरछी चौड़ी सँकरी सजी सड़कें। पीपल के नीचे चबूतरा, देवता।" (चोटी की पकड़, पृष्ठ १२१)

राजसी शानो-शौकत एवं वैभव को प्रदर्शित करने वाले ऐसे भव्य विवरणात्मक चित्रों की इस उपन्यास में भरमार है। इनके द्वारा मध्यकालीन सामन्ती परिवेश सजीव हो उठा है। असंख्य दास-दासियों, पहरेदार, विशाल अट्टालिकाएँ, पालकी, कहार, जीने, खिड़कियाँ, तालाब आदि के चित्रण से कथाकार के वातावरण सम्बन्धी सूक्ष्म पर्यवेक्षण का कौशल प्रकट होता है।

उपन्यास की अधिकांश घटनाओं का केन्द्र कलकत्ता होने के कारण बंगालियों की संस्कृति, वेश-भूषा, खान-पान आदि का जिस निपुणता से चित्रण किया गया है उसमें आंचलिकता का गुण प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, लेखक ने तत्कालीन बंगाल की स्थिति का विशद वर्णन किया है –

"उन्नीसवीं सदी का परार्द्ध बंगाल और बंगालियों के उत्थान का स्वर्णयुग है। ...लार्ड कर्जन भारत के लाट थे। कलकत्ता राजधानी थी। सारे भारत पर बंगालियों की अंगरेजी का प्रभाव था। ....राजा राममोहन राय की प्रतिभा का प्रकाश भर चुका था। प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुर का जमाना बीत चुका था। आचार्य केशवचन्द्र सेन विश्वविश्रुत होकर दिवंगत हो चुके थे। श्री रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की अति-मानवीय शक्ति की धाक सारे संसार पर जम चुकी थी। ....घर-घर साहित्य-राजनीति की चर्चा थी।" (चोटी की पकड़, पृष्ठ १२५)

लार्ड-कर्जन के बंग-भंग तथा उसकी तीव्र प्रतिक्रिया का विशद विवेचन कृति में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का कार्य करता है।

वातावरण-निर्माण एवं परिस्थिति सर्जना की दृष्टि से यह उपन्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक वातावरण के चित्रण में विभिन्न प्रकार के पक्षियों, फलों एवं फूलों के नाम परिगणन की प्रणाली मध्यकालीन महाकाव्यों की याद दिलाती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"धूप प्रखर हो गयी है, फिर भी सुहानी है। तरह-तरह की चिड़ियाँ चहक रही हैं। रंग बिरंगी मुरीली आवाजवाली, भँवरे सुए, रूकमिनें, बुलबुल, पीली गलारें, कोयलें, पपीहे, कौए। स्वच्छ जलवाले विशाल सरोवर पर राजहंस तैरते हुए। कहीं-कहीं बगुले ताक लगाये बैठे हुए। गिलहरियाँ टहनी से टहनी पर उछलती हुई। धीमी-धीमी हवा चल रही है जैसे साक्षात् कविता बह रही हो।

चारों ओर विशाल उद्यान १३-१४ हाथ की ऊँची चारदीवारी से घिरा हुआ। सरोवर और चारदीवार के किनारे नारियल के पेड़। बीच में, अलग-अलग निम्बू, नारंगी, संतरे, सुपारी, अनानास, लीची, आम, जामुन, गुलाब जामुन, कटहल, बड़हर, बादाम, हड़बहेड़, आँवले, अनार, शरीफे, शहतूत, फालसे, अमरूद आदि फलों के पेड़ एक-एक घेरे में लगे हुए। ....एक तरफ फूलों का बगीचा उजड़ा हुआ क्योंकि अब रनवास यहाँ नहीं। कहीं जंगली पेड़ों के झाड़। बीच-बीच बेला, जुही, गुलाब, गन्धराज, नेवाड़ी, चमेली, कुन्द आदि उगे हुए जीने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए आज भी फूलों के अर्घ्य दे रहे हैं।" (चोटी की पकड़, पृष्ठ १५५)

समग्रतः कहा जा सकता है कि कथानक एवं चरित्र-चित्रण की अपेक्षा देशकाल एवं वातावरण-चित्रण के कारण यह उपन्यास अन्य सभी रचनाओं में विशिष्ट है।

'काले कारनामे' उपन्यास देश-काल-वातावरण प्रधान है। इसमें ग्रामीण जीवन, वहाँ जमींदारों की काली करतूतें, छोटे और बड़े जमींदारों के आपसी घात-प्रतिघात, पुलिस विभाग की कमजोरियों का पर्दाफाश किया गया है। तत्कालीन ग्रामीण परिस्थितियों का चित्रांकन लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। भाषा में आंचलिकता का प्रभाव होने के कारण स्थानीय रंग बड़ी गहराई से उभरा है।

उपन्यास के आरम्भ में ही सावन महीने की प्राकृतिक हरीतिमा के सजीव चित्रण में सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश मुखर हो उठा है –

"सावन का महीना आँख पर तरी बरसा रहा है। खेत लहालोट हैं, हरे-भरे ज्वार, अरहर, उड़द, सन, मक्का और धान लहरा रहे हैं। आम, जामुन के दूर तक फैले हुए बागीचे फल दे चुके हैं, इस समय विश्राम की साँस ले रहे हैं। चिड़ियों के पर भीगे हुए हैं। फड़फड़ाकर पानी झाड़ लेती हैं और मधुर-मधुर चहकती हुई, इस पेड़ से उस पेड़ पर उड़ जाती हैं.... ताल पर सिंघाड़े की बेल फैलती हुई। लड़के अखाड़े कूदते हुए। औरतें काम-काज से घर और बाहर आती-जाती हुई। गाँव में चहल-पहल। हिंडोले पड़े हुए। लड़कियाँ झूलती हुई। कजली, सावन, बारहमासी गाती हुई। मर्द रात को रोज होते हुए आल्हे की कड़ियाँ गाते कन्धे पर लट रक्खे तम्बाकू ठोंकते

हुए आते-जाते हुए। गलियारे में पानी भरा हुआ। मेंड़ के ऊपर से लोगों की निकली हुई पगडण्डी, वह भी पानी बरस जाने से बिछलहर। कुएँ पर पनिहारियों का जमघट।"

(काले कारनामे, पृष्ठ २११)

ग्रामीण वातावरण के चित्रण में खेत, बाग, मेड़ों, अखाड़े की कुश्ती एवं इसके विभिन्न दाँव-पेच, हवेली की चौपाल, पुरवाई के झोंके, आल्हा की धुन, चक्कियाँ, ढोर, कुएं, गली-कूचा आदि की चर्चा ने सम्पूर्ण ग्रामीण वातावरण को प्रत्यक्ष करा दिया है।

ग्राम्य जीवन के साथ-साथ काशी नगरी एवं वहाँ की तात्कालिक सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के चित्रण ने सम्पूर्ण देश-काल को जीवन्त बना दिया है। उदाहरण—

"मनोहर बम्बई न जाकर काशी आया। ....टिकट देकर स्टेशन से बाहर निकला और पुल के नीचे राजघाट पर चलकर बैठा। गंगा और किनारे की उजड़ी हुई पुरानी बस्ती देखता रहा। ....पुरानी काशी वरुणा की तरफ और थी। ....इस तरफ बीच में गंगा के किनारे कुछ आगे किला पड़ता है। अस्सी की तरफ जहाँ आबादी है, वन था। मुगलकालीन काशी अस्सी नाले तक थी। तुलसीदास जी का स्थान उसी जगह है। राजघाट के नीचे का हिस्सा हिन्दुकालीन पुराना है। बहुत-सी चीजें खोदने पर मिलती हैं।" (काले कारनामे, पृष्ठ २३९)

काशी में विभिन्न जातियों के मनुष्य, धनिक शूद्रों के आधिक्य, शूद्रों का संस्कृत-पठन-पाठन एवं शिक्षा के प्रति रुझान, द्विजों का शूद्रत्व, अंग्रेजी शिक्षा के प्रति जनता की रुचि, नीची जातियों के लोगों द्वारा ईसाई-धर्म ग्रहण, ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों के संस्कृत-पठन का विरोध आदि के चित्रण से तत्कालीन सामाजिक अवस्था प्रकट होती है। लेखक ने परतन्त्रताकालीन स्थिति की ओर भी संकेत किया है—

"हमारा समाज इस तरह स्वत्वहीन गुलामों का एक समाज हो रहा है।"

(काले कारनामे, पृष्ठ २१६)

समग्रतः कहा जा सकता है कि अपनी यथार्थान्वेषी दृष्टि द्वारा लेखक ने अपने देश-काल, वातावरण, समसामयिक प्रवृत्तियों तथा परम्पराओं का उद्घाटन बड़ी निपुणता से किया है।

'इन्दुलेखा' यद्यपि निराला का अपूर्ण उपन्यास है किन्तु इसमें भी ग्राम-जीवन के रूप में देश-काल का अल्प-मात्रा में चित्रण मिलता है।

ग्रामवासियों का घर से बाहर तालाबों में स्नान करने जाना, दूध-भात का भोजन, लड़की के विवाह की छोटी-से-छोटी बात की भी लोक-चर्चा, शकुन-अपशकुन एवं प्रस्थान करने के पूर्व शुभ-अशुभ पर विचार आदि प्रसंगों से ग्रामीण जीवन एवं संस्कृति मुखर हो उठी है।

इसी तरह कॉलेज, कक्षा, शेली की कविता के उद्धरण, शिक्षित युवकों की स्वतन्त्र विचारधारा के चित्रण से नगर का वातावरण भी आंशिक रूप में चित्रित किया गया है। मिश्रित भाषा के प्रयोग से ग्राम्य एवं नगर जीवन के परिवेश स्वाभाविक बन पड़े हैं।

संस्मरणात्मक उपन्यास 'कुल्लीभाट' में देशकाल-वातावरण अत्यधिक जीवन्त रूप में

चित्रित हुआ है। इसमें निराला ने अपने गाँव से लेकर कुल्ली की मृत्यु तक के घटनाक्रम का उल्लेख किया है। कालखण्ड की दृष्टि से यह समय १९१३ से लेकर १९३७ तक ठहरता है। यह स्वाधीनता आन्दोलन का युग था। अतः राजनीतिक परिदृश्य पर असहयोग आन्दोलन, १९२१ ई० स्वदेशी आन्दोलन, सविनय अवज्ञा-आन्दोलन, सत्याग्रह, नमक-कानून का उल्लंघन आदि विभिन्न आन्दोलन तेजी से उभर थे। इन सभी की प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में चर्चा कृति में की गयी है। इस तरह से कुल्लीभाट में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक वातावरण सशक्त रूप में चित्रित किया गया है।

उपन्यास के आरम्भ में ही 'भारत पराधीन है' – लिखकर लेखक देश एवं काल की जानकारी देते हैं।

अपने गाँव का वर्णन एवं गाँव में फैले प्लेग की चर्चा लेखक ने की है जो सन् १९१३ का काल था। ससुराल-यात्रा के वर्णन में उत्तर-प्रदेश की जेठ महीने की लू के वर्णन ने प्राकृतिक वातावरण को सजीव बना दिया है –

"महुए की छाँह और तर किये झोंपड़े के अन्दर यू.पी. की गर्मी का हिसाब न लगता था। बाहर खाई पार करते ही लू का ऐसा झोंका आया कि एक साथ कुण्डलिनी जैसे जग गयी। ....देह गर्दबर्द हो गयी। ....एक झोंका और आया, मालूम हुआ इस देश में धूप से हवा में गर्मी ज्यादा है। ....दो ही मील पर देखा दुर्दशा हो गयी है, जैसे धूल का समन्दर नहाकर निकला हूँ। ....चार बजे की चटकती धूप। ....भूभुल में पैर जले जा रहे हैं।" (कुल्ली भाट - पृष्ठ २६-२७)

डलमऊ के वर्णन में वहाँ के ऐतिहासिक स्थानों, मन्दिर, दल बाबा के किले, शस्यश्यामला प्रकृति, गंगा नदी आदि के चित्रण में ऐतिहासिक वातावरण साकार हो उठा है।

इसी तरह अवध की महामारी के हृदय-विदारक चित्र जिसमें निराला के अनेक स्वजनों की ही मृत्यु नहीं हुई बल्कि ग्राम-के-ग्राम नष्ट हो गए - में तत्कालीन स्थिति का करुण एवं जीवन्त चित्रण हुआ है –

"एक ऊँचे टीले पर बैठकर लाशों का दृश्य देखता था। ....डलमऊ का अवधूत टीला काफी ऊँचा, मशहूर जगह है। वहाँ गंगाजी ने एक मोड़ ली है। लाशें इकट्ठी थीं।"

(कुल्लीभाट - पृष्ठ ५३)

यद्यपि इस रेखाचित्र में सन् का स्पष्ट उल्लेख कम स्थलों पर ही हुआ है किन्तु लेखक ने जिस प्रकार राजनीतिक आन्दोलनों की चर्चा की है उससे कालखण्ड का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है जैसे एक स्थल पर वे लिखते हैं –

"देश में पहला असहयोग-आन्दोलन जोरों पर था।" (कुल्लीभाट - पृष्ठ ५७)

स्पष्टतः यह सन् १९२० का काल था। इसी तरह 'सविनय-अवज्ञा आन्दोलन समाप्त हो चुका था।' (कुल्लीभाट - पृष्ठ ६०)

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह सन् १९३२-३३ के आस-पास की घटना है। इसी

तरह एक स्थल पर लेखक ने नमक-कानून-भंग करने की चर्चा की है जो सन् १९३० में घटित हुआ था। कुल्ली के एकादशाह के प्रसंग में लेखक ने सन् का स्पष्ट उल्लेख भी किया है –

"१९३७ ई० में काफी प्रसिद्ध हो चुका था।" (कुल्लीभाट - पृष्ठ ७९)

राजनीतिक क्षितिज पर गांधी जी, जवाहरलाल नेहरू, महादेव देसाई, कांग्रेस कार्यकर्त्ता, स्वयं सेवक आदि की सक्रियता का वर्णन कर लेखक ने तत्कालीन राजनीतिक जीवन का स्पष्ट चित्रण किया है। इसी संदर्भ में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का चित्रण करते हुए इसके कारण पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है –

"अयोध्याजी हैं, जहाँ रामजी की जन्मभूमि पर बाबर की बनायी मसजिद है – हिन्दू-मुसलमान वाला भाव सदा जाग्रत रहता है।" (कुल्लीभाट - पृष्ठ ६५)

"कुल्लीभाट" में समाज के उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग के अछूत आदि के प्रसंग द्वारा सामाजिक वातावरण प्रत्यक्ष हो उठा है। इसी तरह पं० भगवानदीन के पतुरिया रखने के कारण-गाँववालों द्वारा उनका हुक्का-पानी बन्द कर देना, हिन्दू-मन्दिरों में मुसलमानों का प्रवेश निषेध जैसी घटनाएँ धार्मिक वातावरण को साकार कर देती हैं।

सरस्वती - सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल, पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, पं० अयोध्या सिंह जी उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त जैसे साहित्यकारों की चर्चा से तत्कालीन साहित्यिक प्रगति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

अपनी अन्य यथार्थवादी रचनाओं की भाँति इसमें भी ग्रामीण रीति रिवाज, संस्कारों, रहन-सहन आदि के वर्णन से ग्रामीण परिवेश को निराला ने जीवन्त कर दिया है। बैसवाड़ा अंचल के 'बुलौआ' के समय का एक चित्र ग्रामीण जीवन का साक्षात्कार करता है –

"मजलिस लगी। ढोलक बजने लगी, लेकिन औरतों की जैसी 'उदुम-धुसुक, उदुम-धुसुक' नहीं। मैंने सोचा, कुछ आनन्द आयेगा – 'टिकारा वदन्ति?' पुरुष भी जगने लगे। मनचले, कुछ नहीं, तो दूसरे की औरत का हाथ-पैर ही देख लेने वाले। भीतर से पान आने लगे। पान-तम्बाकू खाकर एक-एक पीक थूकते हुए घर भ्रष्ट करनेवाले औरतों की आलोचना करने लगे।"

(कुल्लीभाट - पृष्ठ ४९)

इसी प्रकार ससुराल जाते समय निराला की वेश-भूषा बंगाली संस्कृति एवं कुल्ली की वेश-भूषा लखनवी संस्कृति की प्रतीक है।

सम्पूर्णतः कहा जा सकता है कि देश-काल वातावरण चित्रण की दृष्टि से 'कुल्लीभाट' बेजोड़ कृति है।

'बिल्लेसुर बकरिहा' रेखाचित्र-धर्मिता से सम्पन्न उपन्यास होने के कारण देश-काल वातावरण चित्रण की कसौटी पर भी खरा उतरता है। उत्तर-प्रदेश के उन्नाव जिले के अन्तर्गत पुरवा डिवीजन के निवासी बिल्लेसुर के समग्र जीवन की विविध घटनाओं को कथानक के रूप में संजोया गया है। अतः उक्त अंचल के सामाजिक लोक-विश्वास, जन-जीवन, रहन-सहन,

विचारधारा, ईर्ष्या-द्वेष, संस्कृति, संस्कार, विभिन्न कर्मकाण्ड आदि का सजीव चित्रण उपन्यास में मिलता है। इसके कारण एक ओर उपन्यास में आंचलिक तत्त्व पूरी गहराई से उभरा है तो वहीं दूसरी ओर ग्रामीण जीवन की आत्मा के दर्शन इस कृति में किए जा सकते हैं।

अंचल-विशेष की भाषा के प्रभाव के कारण ही बिल्हेश्वर बिल्हेसुर में परिणत हो गया। बिल्हेसुर के कर्ममय जीवन का आरम्भ बर्दवान से दिखाया गया है। वहाँ के परिवेश का सजीव चित्र उपन्यास में देखा जा सकता है। इसी तरह पुरी भ्रमण के प्रसंग में वहाँ के समुद्र-तट एवं मन्दिर का चित्र आँखों के सामने साकार हो उठा है –

"समन्दर का किनारा - बालू के ढूह - देखकर बहुत खुश हुए। ....जगन्नाथ जी की स्मृति में बहुत से घोंघे समुद्र के किनारे से चुनकर रख लिये, कुछ छोटे-छोटे शंख से।

मार्कण्डेय, वटकृष्ण, चन्दनतालाब आदि प्रसिद्ध जगहें देखते फिरे। मन्दिर के अहाते में और छोटे-छोटे मन्दिर हैं। ....एकादशी को एक जगह उल्टा टँगी देखकर हँसे। ....फिर सब लोग कलबुग की मूर्ति देखने लगे। कलियुग अपनी बीवी को कन्धे पर बैठाये बाप को पैदल चला रहा है।" (बिल्हेसुर बकरिहा - पृष्ठ ९२)

वर्षाकाल में निम्नवर्गीय किसानों की दुर्दशा का करुण चित्र वातावरण चित्रण के माध्यम से अंकित किया गया है –

"मकान के सामने एक अन्धा कुआँ है और एक इमली का पेड़। बारिश के पानी से घुलकर दीवारें ऊबड़-खाबड़ हो गयी हैं, जैसे दीवारों से ही पनाले फूटे हों। भीतर के पनाले का मुँह भर जाने से बरसात का पानी दहलीज की डेहरी के नीचे गड्ढा बनाकर बहा है। गड्ढा बढ़ता-बढ़ता ऐसा हो गया है कि बड़े जानवर, कुत्ते जैसे आसानी से उसके भीतर से निकल सकते हैं।" (बिल्हेसुर बकरिहा - पृष्ठ ९७)

इसी तरह कार्तिक मास की चांदनी की छटा रात्रिकालीन वातावरण को प्रत्यक्ष कर देती है –

"कार्तिक की चाँदनी छिटक रही है। गुलाबी जाड़ा पड़ रहा है। सवन-जाति की चिड़ियाँ कहीं से उड़कर जाड़े भर इमली की फुनगी पर बसेरा लेने लगी थीं। उनका कलरव उठ रहा था।" (बिल्हेसुर बकरिहा - पृष्ठ ११०)

प्रकृति-चित्रण कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं मानव-सापेक्ष मिलता है। बिल्हेसुर की एक-एक भाव भंगिमा और मुद्रा ग्रामीण जन-मानस का प्रत्यक्षीकरण कराती है। इसी तरह भोजन करते समय अगरासन निकालने की क्रिया, विवाह के लिए जाते समय का साज- शृंगार, शकुन-अपशकुन का विचार, वैवाहिक कार्यक्रम के अवसर पर भाँति-भाँति के लोकाचार आदि का विस्तृत चित्रण इस कृति में मिलता है जिससे सामाजिक वातावरण सजीव हो उठा है। देश-काल-वातावरण निरूपण की दृष्टि से अवध की ग्रामीण संस्कृति का प्रत्यक्षीकरण इस कृति की विशेषता है।

अपने उपन्यासों एवं रेखाचित्रों की भाँति अपनी कहानियों में भी निराला ने देशकाल-निरूपण और वातावरण की सर्जना सफलतापूर्वक की है। उनकी कहानियों का क्षेत्र अवध जनपद, बैसवाड़ा अंचल और उसके निकटवर्ती इलाके, लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद से लेकर पश्चिम बंगाल के कलकत्ता, महिषादल, बर्दवान आदि तक विस्तृत था। इन समस्त अंचलों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा, सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के विविध रंग उनकी कहानियों में बिखरे पड़े हैं। अपनी अनेक कहानियों में उन्होंने स्थान का स्पष्ट उल्लेख किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

"मिस्टर हाग ब्रौन एण्ड कम्पनी के मैनेजर थे और हीरा १३ न्यू स्ट्रीट कलकत्ता, की प्रसिद्ध बाई।" (क्या देखा - पृष्ठ २७८)

"पद्मा काशी-विश्वविद्यालय के कला-विभाग में दूसरे साल की छात्रा है। गर्मियों की छुट्टी है, इलाहाबाद घर आयी हुई है।" (पद्मा और लिली - पृष्ठ २८२)

"जिला उन्नाव, मौजा बीघापुर विजय की जन्मभूमि है।" (ज्योतिर्मयी - पृष्ठ २९२)

"कमला रामपुर रहती है, छोटा भाई उन्नाव अंगरेजी स्कूल में पढ़ता है। ....पिता पण्डित रामेश्वरजी त्रिपाठी, अहमदाबाद में कपड़े की दूकान करते थे।" (कमला - पृष्ठ २९६)

"बाबू प्रेमकुमार कैनिंग कॉलेज, लखनऊ में बी.ए. क्लास के विद्यार्थी हैं। मेस्टन होस्टल में रहते हैं। इस समय लखनऊ की बादशाहत अंगरेजी हुकूमत में बदल गयी है, पर उन्हें बादशाह-बाग की हवा लग रही है।" (प्रेमिका-परिचय - पृष्ठ ३१६)

"समाज-सुधारक के नाम से प्रसिद्ध राजा महेश्वरसिंह से जब वह पहले पहल कलकत्ते के ग्रैण्ड-होटल में मिले थे, तब बंगाल की सभ्यता की बड़ी तारीफ की थी।"
(परिवर्तन - पृष्ठ ३३०)

"चतुरी चमार डाकखाना चमियानी, मौजा गढ़ाकोला, जिला उन्नाव का एक कदीमी बाशिन्दा है।" (चतुरी चमार - पृष्ठ ३६३)

"अपना 'सुभद्रार्जुन' नया नाटक शहर-शहर चलकर दिखाने के अभिप्राय से नरेन्द्र ने प्रोग्राम बनाना और विज्ञापन करना शुरू किया। कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी आदि शहरों से क्रमशः कलकत्ते तक का निश्चय हुआ।" (सफलता - पृष्ठ ३७८)

"प्रयाग में था, लूकरगंज में, पं० वाचस्पति पाठक के यहाँ। 'लीडर प्रेस' में 'निरुपमा' बेचने गया था।" (कला की रूप रेखा - पृष्ठ ३८५)

काल-निरूपण की दृष्टि से निराला ने परतन्त्रताकालीन भारत एवं स्वाधीनता-आन्दोलन के युग को अपनी कहानियों में अवतरित किया है। उनका प्रथम कहानी संग्रह 'लिली' १९३३ ई० में एवं अन्तिम कहानी-संग्रह 'देवी' १९४८ ई० में प्रकाशित हुआ। इन डेढ़ दशकों में भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक रंगमंच पर घटने वाली हर छोटी-बड़ी घटना को

उन्होंने किसी-न-किसी रूप में अपनी कहानियों में निरूपित किया है। यद्यपि अधिकांश कहानियों में लेखक ने काल-खण्ड का स्पष्ट निर्देश नहीं किया है किन्तु घटनाओं के आधार पर काल-खण्ड का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। संस्मरणात्मक कहानियों में कहीं-कहीं लेखक ने काल-खण्ड का स्पष्ट संकेत दिया है।

उदाहरणत :–

"उन दिनों १९२१ ई० थी। एक साधारण से विवाद पर विशद महिषादल-राज्य की नौकरी नामंजूर-इस्तीफे पर भी छोड़कर मैं देहात में अपने घर रहता था।"

(स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं - पृष्ठ ३४६)

"लीडर प्रेस में 'निरुपमा' बेचने गया था। जाड़े के दिन १९३६ का प्रारम्भ।"

(कला की रूपरेखा - पृष्ठ ३८५)

'प्रेमिका-परिचय' कहानी जो पत्र-शैली में रचित है – में लेखक ने क्रमशः ३.४.३२, ४.४.३२ एवं ५.४.३२ तिथियोंका उल्लेख किया है। इसी तरह 'क्या देखा' कहानी में एक जगह ३.९.२३ की तिथि का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त 'कमला' कहानी में हिन्दू-मुस्लिम दंगे, 'श्यामा' में आर्य समाज के प्रभाव, 'चतुरी चमार' में कांग्रेस के आन्दोलन, 'कला की रूपरेखा' में लखनऊ कांग्रेस की बैठक, 'सुकुल की बीवी' में अपनी प्रवेशिका-परीक्षा के दिनों की चर्चा, 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' में छायावाद के उत्थान, आन्दोलन एवं महिलाओं द्वारा पिकेटिंग तथा 'दो दाने' में बंगाल के अकाल की चर्चा आने से इन घटनाओं से सम्बन्धित काल खण्ड का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कतिपय कहानियों में देशकाल का निरूपण इतनी जीवन्तता के साथ किया गया है कि सम्पूर्ण चित्र आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठता है। उदाहरणतः –

"गाँव के बाजार-के बाजार खाली हो गये हैं। न पैसा है, न अन्न। पहले लोग उपास करने लगे। दिन में एक वक्त, फिर दो दिन में एक वक्त, बाद में यह भी मोहाल हो गया। पेड़ों की कोपलें उबालकर खाने लगे। ....भूख की ज्वाला बढ़ती गयी। देहात में भीख न मिलने की वजह से लोग शहर के रास्ते दौड़े। कोई आधी दूर चलकर मरे, कोई पहुँचकर, मगर पेट में दाना न गया।" (दो दाने - पृष्ठ ४१४)

"इसी समय कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों में दंगे की बुनियाद पड़ी। एक रोज बड़ा हंगामा भी हुआ। दोनों तरफ के अनेक घर लूटे, फूंके और ढहा दिये गये। हजारों आदमी काम आये। जो हिन्दू-मुसलमानों की बस्ती में थे, उनके घर फूंककर, माल लूटकर, आदमियों को मारकर या जख्मी कर मुसलमानों ने उनकी स्त्रियों को अपने घरों में डाल लिया। ऐसा ही हिन्दुओं ने भी किया।" (कमला पृष्ठ ३०२)

वातावरण की दृष्टि से निराला ने प्राकृतिक, ग्रामीण, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक-सांस्कृतिक हर तरह के परिवेश की अवतारणा अपनी कहानियों में की है। कुछ

कहानियों का तो आरम्भ ही वातावरण-चित्रण से हुआ है। ऐसी कहानियों में परिवेश-सृष्टि ने कथा की पृष्ठभूमि तैयार की है। कुछ कहानियों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

"कृष्णा की बाह बह चुकी है, सुतीक्ष्ण, रक्त-लिप्त, अदृश्य दाँतों का लाल-जिह्व योजनों तक, क्रूर, भीषण मुख फैलाकर प्राण-सुरा पीती हुई मृत्यु ताण्डव कर रही है। सहस्रों गृह-शून्य, क्षुधा-क्लिष्ट, निःस्व, जीवित कंकाल साक्षात् प्रेतों से इधर-उधर घूम रहे हैं। आर्तनाद, चीत्कार, करुणानुरोधों में सेनापति अकाल की पुनः-पुनः शंख-ध्वनि हो रही है।" (हिरनी - पृष्ठ ३२५)

"अभी ऊषा की रेशमी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है – भास्कर मुख अपर प्रान्त की ओर है, केवल केशों की सघन व्योम-नीलिमा इधर से स्पष्ट। मुख का मृदुस्पर्श, प्रकाश, लघुतम तूलि जैसे, पर दिगन्त-शोभ से उतरकर तन्द्रा से अलस जीवों को जगा रही है। खिली अमलतास की हेमांगी शाखाएँ तरुणी बालिकाओं-सी स्वागत के लिए सजकर खड़ी हैं। पवन पुनः-पुनः ऊषा का दर्शन शुभ-मधुर सन्देश दे रहा है। निविड़ नीड़ाश्रय से विहंग प्रभाती गा रहे हैं।"

(न्याय - पृष्ठ ३४१)

"जेठ का महीना, सूरज डूब रहा है। जोरों से बहती हुई मलय वायु में पोड़शी का स्पर्श मिलता है। यह अकेली दक्षिणी हवा बंगाल की आधी कविता है। प्रसाद-शिखरों से सुनहली किरणें लिपटी हैं, उन्हीं के प्रेम की साँस जैसे दक्षिणी हवा में बह रही है। बड़े-बड़े तालाबों में श्वेत और रक्त कमल, खुले हुए अनुभव-जैसे, लोट रहे हैं।"

(राजा साहब को ठेंगा दिखाया - पृष्ठ ३७०)

इस तरह का वातावरण-चित्रण कभी पाठकों के मन में करुणा-हर्ष आदि भावों का उद्रेक करता है तो कभी उनके औत्सुक्य एवं कौतूहल में वृद्धि करता है।

स्थानीय वातावरण के चित्रण में उन्होंने स्थान-विशेष की जलवायु, भूमि, निवासियों की वेश-भूषा, रहन-सहन आदि का विशेष ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ 'प्रेमिका-परिचय' में उर्दू शब्दों के अतिशय प्रयोग, वेश्यालयों के वर्णन और प्रेम कुमार के शौकीन स्वभाव के चित्रण में लखनऊ का स्थानीय रंग सजीव हो उठा है। ग्रामीण परिवेश के चित्रण में निराला ने अपने नैपुण्य का परिचय दिया है। गाँव के कच्चे घरों, खेल-खलिहान, चौपाल, मेड़ों, पनघट पर हँसी ठिठोली करतीं युवतियों, विभिन्न ऋतुओं में ग्रामों की प्राकृतिक सुषमा आदि के सरस चित्रण द्वारा ग्राम्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

तत्कालीन समाज में विजातीय विवाह की समस्या, बाल-विधवा की करुण स्थिति, परित्यक्ता नारी की सामाजिक उपेक्षा, उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग में बढ़ते भेद-भाव एवं जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण, निजी स्वार्थ के लिए समाज-सुधार का दंभ भरने वाले पाखण्डी, युवक-युवतियों की दुर्बलता एवं उच्छृंखलता आदि समस्याओं के चित्रण द्वारा सामाजिक वातावरण को प्रत्यक्ष कराया गया है तो पुलिस विभाग की धांधली, स्वदेशी-आन्दोलन, पिकेटिंग के प्रति युवक-युवतियों का उत्साह, किसान आन्दोलन, झण्डा-गीत, साम्यवादी दल की ओर

युवा वर्ग का झुकाव, देश-प्रेमी युवकों के उत्साह के वर्णन द्वारा तत्कालीन राजनीतिक परिवेश साकार हो उठा है।

इसी तरह हिन्दू-मुस्लिम दंगे, लोगों की धार्मिक आस्था, भजन-कीर्तन, तन्त्र-मन्त्र आदि के चित्रण द्वारा धार्मिक परिवेश का सृजन हुआ है तो छायावाद, प्रगतिवाद आदि काव्य धाराओं का उत्थान, अपने साहित्यिक जीवन के विषय की चर्चा द्वारा लेखक ने तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों की जानकारी दी है।

उपरोक्त विवेचन यह सिद्ध करता है कि निराला के कथा-साहित्य में देशकाल-वातावरण का प्रभावशाली निरूपण हुआ है। कहानियों की अपेक्षा उपन्यासों एवं रेखाचित्रों में देशकाल-वातावरण अधिक व्यापकता के साथ चित्रित किया गया है। लेखक के वर्णन-कौशल से जहाँ सम्पूर्ण परिवेश जीवन्त हो उठा है वहीं उसमें सहजता एवं विश्वसनीयता भी उत्पन्न हो गई है। स्थानीय रंगों के प्रयोग से आंचलित वातावरण की सृष्टि करने में निराला सफल रहे हैं। अपने भाषायी-कौशल से वांछित वातावरण एवं परिवेश का निर्माण कर उन्होंने अपनी कृतियों को अमर बना दिया है।

उद्देश्य अथवा जीवन दर्शन

साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है। साहित्यकार सामाजिक प्राणी होने के नाते जीवन की प्रत्येक स्थिति का सूक्ष्मता से अवलोकन करता है। जीवन में घटने वाली हर छोटी से छोटी घटना उसे आन्दोलित करती है एवं उसे अनुभवों की चाशनी से लपेट कर वह अपनी कृतियों में उनका प्रतिपादन करता है। इस तरह से एक प्रकार से वह अपनी रचना में जीवन की ही व्याख्या करता है। साहित्य का सामान्य उद्देश्य भी वही माना गया है। किन्तु इसके अलावा रचना का कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी होता है। अपनी कृतियों में लेखक जाने-अनजाने अपनी जीवन-दृष्टि भी प्रस्तुत करता है। जीवन एवं जगत् की विभिन्न समस्याओं एवं जटिलताओं के प्रति अपनी वैचारिकता एवं अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन वह इस प्रकार से करता है कि उससे पाठकों को सहज ही लेखकीय दृष्टि का आभास मिल जाता है। इस दृष्टि को ही साहित्य का प्रतिपाद्य, जीवन दर्शन या उद्देश्य कहते हैं। कथाकार अपनी कुशल शिल्प-संरचना द्वारा अपने अभीष्ट उद्देश्य को पाठकों तक प्रेषित करता है।

उपन्यास के जीवन-दर्शन के संबंध में डा० शिवनारायण श्रीवास्तव का मंतव्य विचारणीय है – "कोई उपन्यासकार किसी मत का खंडन-मंडन या सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए उपन्यास की रचना नहीं करता। वह तो मानव-जीवन का निरीक्षण करके केवल उसके बहुत से छाया-चित्र उपस्थित करता है। इन छाया-चित्रों में ही वह मूलभूत सत्य लिपटा होता है जिसे ढूँढ निकालना आलोचक का काम होता है। अतएव किसी भी बड़े उपन्यास में केवल लेखक के मानव-जीवन संबंधी निरीक्षण मात्र होते हैं जिनमें सर्जन शक्ति निहित होती है। इन्हीं निरीक्षणों का

मनन तथा प्रतिपादन करके हमें एक नित्य सत्य का दर्शन होता है। उपन्यासों में जीवन-दर्शन का यही अर्थ है।''[१८]

उपरोक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि उद्देश्य की पूर्व-योजना बनाकर लिखा गया साहित्य उतना प्रभावशाली नहीं होता क्योंकि वहाँ सदा एक कृत्रिमता का आभास पाठकों को होता रहता है। श्रेष्ठ कथाकार अपने पात्रों एवं चरित्रों, उनके वार्तालाप, उनके आचार-व्यवहार, उनके जीवन की विविध घटनाओं के माध्यम से अपने विचार प्रकट करता है। यही कारण है कि कथा-साहित्य में कोरी उपदेशात्मकता एवं भाषणबाजी नहीं होती बल्कि कथा की अंतर्धारा के रूप में कथा का उद्देश्य भी प्रवहमान नजर आता है। वहाँ विभिन्न सूक्तियों एवं वाक्यों के साथ-साथ कथा के केन्द्रीय भाव के रूप में कथाकार का अपना जीवन-दर्शन बिखरा रहता है।

श्रेष्ठ रचनाकार वही होता है जो गंभीर-से-गंभीर विषय को भी इस तरह प्रेषणीय बनाकर प्रस्तुत करता है कि वह सामान्य पाठक के लिए सहज ग्राह्य बन जाता है। इसीलिए वह अपनी कृति में रोचकता एवं रंजकता के गुणों को समाविष्ट करता है। किन्तु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि केवल मनोरंजन के लिए लिखा गया साहित्य कदापि उच्च कोटि का नहीं हो सकता। इसी तरह किसी विशेष राजनीतिक सिद्धांत अथवा मतवाद को प्रचारित करने वाली कृतियाँ भी सामान्य पाठक के लिए अरुचिकर, उबाऊ एवं निम्न कोटि की होती हैं। इन दोनों तरह के अतिवादों से बचने के लिए उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की इस उक्ति को ध्यान में रखना आवश्यक है – ''उपन्यासकार यह कभी नहीं भूल सकता कि उसका प्रधान कर्तव्य पाठकों का गम-गलत करना, उनका मनोरंजन करना है। और सभी बातें इसके अधीन हैं। जब पाठक का जी ही कहानी में न लगा, तो वह क्या लेखक के भावों को समझेगा? क्या उसके अनुभवों से लाभ उठाएगा? वह घृणा के साथ किताब को पटक देगा और सदा के लिए उपन्यासों का निन्दक हो जायेगा''[१९] उपन्यास सम्राट का यह कथन स्पष्ट संकेत देता है कि मनोरंजन के साथ-साथ गंभीर अर्थ समझाना एवं श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करना ही साहित्य का प्रधान उद्देश्य होता है।

निराला ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से युग-जीवन को वाणी दी है। अपने समय की प्रत्येक परिस्थिति का उन्होंने सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। एक सजग विचारक एवं चिन्तक होने के कारण जीवन एवं जगत की प्रत्येक समस्या का उन्होंने गहराई से अनुभव किया था एवं उसके समाधान के लिए वे आकुल-व्याकुल रहते थे। विभिन्न मोर्चों पर उन्होंने विरोध एवं संघर्ष झेला था। इसलिए उनके कथा-साहित्य में उनका व्यापक अनुभव, प्रौढ़ एवं प्रखर चिन्तन बड़े आकर्षक रूप में प्रतिफलित हुआ है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र के प्रत्येक पहलू के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार, स्पष्ट रूप में व्यक्त किए हैं। अतः निराला की कृतियों के प्रतिपाद्य को समझने के लिए इनका पृथक्-पृथक् अध्ययन अपेक्षित है।

निराला सामाजिक-संचेतना के सजग कलाकार हैं। उनका कथा-साहित्य सामाजिक धरातल पर टिका हुआ है। 'प्रभावती' नामक ऐतिहासिक उपन्यास को छोड़कर अन्य सभी

उपन्यासों, कहानियों एवं रेखाचित्रों में समाज की विविध समस्याओं का उन्होंने सूक्ष्मता से रेखांकन किया है। 'प्रभावती' यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास है किन्तु उसमें भी तत्युगीन सामाजिक चिन्तन मुखर हुआ है। अपनी अधिकांश कहानियों एवं उपन्यासों में निराला ने नारी-जीवन की विभिन्न समस्याओं का निरूपण किया है।

नारी केन्द्रित सामाजिक समस्याएँ

अपने कथा-साहित्य में निराला ने वैवाहिक समस्या के विविध पहलुओं का विशद रूप में उद्घाटन किया है। अनमेल-विवाह, विधवा-विवाह, बाल-विधवा, दहेज प्रथा, अन्तर्जातीय एवं अन्तर्प्रान्तीय विवाह, प्रेम-विवाह, आदि विभिन्न वैवाहिक समस्याओं को उठाकर एक ओर इस सम्बन्ध में सामाजिक संकीर्णता का पर्दाफाश किया है तो दूसरी ओर इन समस्याओं का क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत किया है।

निराला का प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' वेश्या-समस्या पर आधारित है। इसमें वेश्या-पुत्री कनक को सर्वगुण-सम्पन्न दिखाकर कथाकार यह स्पष्ट घोषित करना चाहते हैं कि वेश्या भी अन्ततः एक नारी होती है एवं उसके भी हृदय होता है। अपने जीवन के प्रथम-पुरुष राजकुमार के प्रति वेश्यापुत्री कनक का सावित्री-भाव से आत्मसमर्पण एवं वैभव विलास की दुनिया त्यागकर कुलवधू की मर्यादा का पालन उसे अत्यन्त उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। इस तरह से वेश्या को सामाजिक मर्यादा दिलाकर निराला ने न केवल सामाजिक क्रांति का श्रीगणेश किया बल्कि युवकों को भी इस क्षेत्र में आगे आने के लिए प्रोत्साहित किया। यहाँ निराला प्रेमचन्द से एक कदम आगे हैं क्योंकि प्रेमचन्द ने जहाँ 'सेवासदन' की स्थापना करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली वहीं निराला ने उसे कुलवधू की मर्यादा दिलाकर गरिमावान् जीवन बिताने का अवसर प्रदान किया। उनकी 'क्या देखा' कहानी भी वेश्या समस्या को लेकर लिखी गई है जिसमें हीरा वेश्या के उत्कट प्रेम एवं निष्कलुष चरित्र का उद्घाटन लेखक ने किया है।

'ज्योतिर्मयी' एवं 'श्यामा' कहानी बाल-विधवा की समस्या पर प्रकाश डालती हैं। ज्योतिर्मयी का यह कथन 'मैं बारह साल की थी, ससुराल नहीं गयी, जानती भी नहीं, पति कैसे थे, और विधवा हो गयी।''[१४] बाल विधवा की करुण स्थिति पर प्रकाश डालता है। इसमें वीरेन्द्र के माध्यम से शिक्षित युवकों की समाज-भीरुता का प्रकाशन भी किया है जिसे ''विधवा-विवाह करते हुए लाज लगती है।''[१५] छल छद्म से जब ज्योतिर्मयी का विवाह वीरेन्द्र से कराया जाता है उस समय दहेज के लिए सौदेबाजी का जो दृश्य चित्रित किया गया है उससे इस समस्या की विकरालता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसी संदर्भ में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के जातीय दम्भ पर भी कथाकार ने व्यंगात्मक प्रहार किया है। 'ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार खाकर पत्तल में करें छेद''[१६] वाला आक्रोशपूर्ण तेवर यहाँ भी परिलक्षित होता है। 'श्यामा' में बाल-विधवा श्यामा का विवाह बंकिम से कराकर निराला ने एक ओर इस समस्या का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया वहीं दूसरी ओर लोध-कन्या का विवाह उच्चवर्गीय ब्राह्मण कुल के युवक से कराकर जातीय दम्भ को भी भंग किया।

'पद्मा और लिली' की समस्या भी वैवाहिक है जहाँ प्रेम के पथ में जातीयता एवं प्राचीन रूढ़िवादिता बाधक है, किन्तु यहाँ नायक-नायिका को वैवाहिक बन्धन में न बाँधकर आजीवन कौमार्य व्रत लेकर समाज-सेवा की दिशा में अग्रसर होते दिखाकर निराला ने आदर्श-प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण सामने रखा।

'कमला' की मूल समस्या विवाहिता परित्यक्ता की है। पति द्वारा चारित्रिक अनैतिकता का लांछन लगाकर परित्यक्त की गई कमला आदर्श हिन्दू नारी है जिसमें प्रतिशोध की भावना नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम दंगे की शिकार अपने पति की बहन का विवाह अपने छोटे भाई से कराकर वह अत्यन्त उदारता का परिचय देती है। वैवाहिक सम्बन्धों को अकारण अस्वीकार करने वाले समाज भीरुओं के प्रति कथाकार का आक्रोश आर्य समाजी महिला वेदवती के वाक्यों के माध्यम से फूट पड़ता है – 'मैं होती तो चपत का जवाब दूने कस की चपत कसकर देती – उन्हीं की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती, ऊपर से न्योता भेजती कि आइए जनाबमन, मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइए।''[५५]

'सुकुल की बीवी' एवं 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' में क्रमशः हिन्दू मुस्लिम विवाह एवं अनमेल विवाह की समस्या का क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'सुकुल की बीवी' में पुखराज उर्फ पुष्कर कुमारी का न सिर्फ सुकुल से विवाह कराया बल्कि प्रीतिभोज में अनेक 'कनवजिये' को सम्मिलित दिखाकर कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की ढकोसलापंथी प्रवृत्ति का प्रतिकार किया। इसी तरह 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' में अनमेल वैवाहिक व्यवस्था पर उपहासपूर्ण व्यंग्य किया गया है। वयोवृद्ध शास्त्री जी द्वारा धर्म की रक्षा के नाम पर षोडशी सुपर्णा से चतुर्थ विवाह सामाजिक अतिचार एवं व्यभिचार पर करारा व्यंग्य है।

'परिवर्तन' कहानी में भी राजकीय परिवारों के आपसी वैमनस्य के फलस्वरूप दासी-विवाह की समस्या का निरूपण किया गया है।

'अलका' उपन्यास में अजित और वीणा का पाणिग्रहण कराकर निराला ने उस युग की प्रमुख समस्या विधवा-विवाह का समाधान प्रस्तुत किया है।

'प्रभावती' में प्रेम-विवाह को समर्थन देते हुए भी पृथ्वीराज-संयोगिता के प्रसंग में बहु-विवाह प्रथा का निराला ने विरोध किया है।

'निरुपमा' उपन्यास में बंगला-भाषी निरुपमा और हिन्दी-भाषी कुमार को परिणय-सूत्र में बाँधकर कथाकार ने अन्तर्प्रान्तीय एवं अन्तर्जातीय विवाह की पक्षधरता की है।

'इन्दुलेखा' में भी वैवाहिक समस्या उठाई गयी है किन्तु अपूर्ण उपन्यास होने के कारण इस समस्या का कोई समाधान यहाँ नहीं है।

कहानियों एवं उपन्यासों की भाँति निराला ने अपने रेखाचित्रों में भी वैवाहिक समस्या की ओर संकेत किया है। 'कुल्लीभाट' में कुल्ली का मुसलमानिन से प्रेम-विवाह एवं 'बिल्लेसुर बकरिहा' में अधेड़ बिल्लेसुर द्वारा मधुर चालाकियों से अपना विवाह रचाना जैसे प्रसंग विवाह-प्रथा एवं उससे सम्बन्धित समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं।

भारतीय समाज में विवाह-प्रथा के साथ दहेज जैसी समस्या भी जुड़ी हुई है। इसकी विकरालता का वर्णन लेखक ने 'ज्योतिर्मयी' एवं 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' जैसी कहानियों में किया है।

इसी तरह वैवाहिक-प्रसंगों में कान्यकुब्ज समाज के जातीय दम्भ, विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों, भारतीय समाज की विवाह सम्बन्धी प्रवंचनाएँ, मध्यस्थों के षड्यन्त्र, वैवाहिक स्वीकृति का नाटकीय अभिनय, तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों का आत्म-प्रदर्शन और मूढ़ अभिभावकों का कुत्सित स्वभाव आदि विभिन्न स्थितियों का चित्रण कर निराला ने विवाह-प्रथा से जुड़ी हर समस्या का यथा तथ्य चित्रण किया है।

इस तरह निराला ने अपने कथा-साहित्य में विवाह सम्बन्धी क्रान्तिकारी दृष्टि को स्पष्ट किया है। एक ओर बेमेल-विवाह, बाल-विवाह, दहेज प्रथा तथा विवाह की दकियानूसी एवं रूढ़िवादी प्रवृत्ति के वे विरोधी हैं तो वहीं दूसरी ओर अंतर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह, वेश्या-विवाह एवं विधवा-विवाह के वे प्रबल पक्षधर हैं।

अभिशप्त नारी जीवन एवं आदर्श नारी की परिकल्पना

तत्कालीन भारतीय समाज में नारी की दयनीय स्थिति का अवलोकन निराला ने किया था। उनकी पीड़ा एवं वेदना को उनके संवेदनशील हृदय ने अनुभूत किया था। सामाजिक उपेक्षा की शिकार ऐसी नारियों को अपनी सहानुभूति का संस्पर्श देकर निराला ने नारीत्व के प्रति अपनी अगाध निष्ठा को अपनी कथा-कृतियों में व्यक्त किया। परिस्थितियों के चक्रवात से जूझती प्रत्येक वर्ग की नारी की पीड़ा उनके कथा-साहित्य में मुखर हुई है।

'अप्सरा' में पुरुष समाज की सामन्ती विलासिता का शिकार वेश्या के जीवन को कथाकार ने प्रस्तुत किया है। उपन्यास के आरम्भ में ही हैमिल्टन साहब को कनक के साथ बलात्कार का प्रयत्न करते चित्रित किया गया है। राजकुमार भी उसके पेशे के कारण उससे घृणा करता है एवं उसे अस्पृश्य मानता है। बिजयपुर के राजकुमार के राजतिलक के अवसर पर समाज के तथाकथित सभ्य लोगों की वासना-लोलुप दृष्टि का शिकार नारी की विवशता का हृदयद्रावक चित्रण किया गया है। अविवाहिता स्त्री के प्रति भी समाज के लोगों की धारणा कितनी बुरी है यह कनक के साथ गाँव की स्त्रियों के वार्तालाप के समय प्रकट होता है।

'अलका' उपन्यास की नायिका शोभा माता की मृत्यु के पश्चात अनाथ एवं बेसहारा हो जाती है। जिलेदार महादेव प्रसाद झूठी सहानुभूति दिखाकर जमींदार के हाथों उसे बेचने का कुचक्र रचता है किन्तु अलका किसी तरह उसके चंगुल से अपनी रक्षा करती है। पंडित स्नेहशंकर के माध्यम से भारतीय नारी की विवशता का चित्र निराला ने खींचा है – "इसी भारत में आश्रयहीन बालिका और तरुणि विधवाएँ भी है। उन्हें खाने को भी नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी उन्हें ग्रहण करना पड़ता है, चिरसंचित सतीत्व-धन से भी हाथ धोती हैं।"[५०]

'निरुपमा' में नारी-शोषण भिन्न कोटि का है। पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी समस्त

जमींदारी की उत्तराधिकारिणी निरुपमा के प्रति स्नेह प्रदर्शित कर उसके मामा योगेश एवं उनका पुत्र सुरेश उसकी समस्त संपत्ति को हड़पने का षड्यन्त्र रचते हैं। इसीलिए वे उसका विवाह चरित्र-भ्रष्ट यामिनीहरण से करना चाहते हैं जो पहले ही धोखे से सुशीला दुबे का सतीत्व हरण कर उसे विवाह पूर्व गर्भवती बनाने का जिम्मेदार है। इसी तरह कुमार के विदेश जाने एवं वहाँ से लौटने पर उचित नौकरी के अभाव में जूते पालिश का पेशा अख़्तियार करने पर उसकी माँ सावित्री देवी को जाति बहिष्कृत कर सामाजिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है।

'काले कारनामे' में मनोहर की माता के कथन में मध्ययुगीन नारी की विवशता एवं दयनीय स्थिति साकार हो उठी है – "हम एक मुद्दत से यह कसाले झेल रहे हैं। ....मुसलमानी जमाने से जो अपमान होते आये हैं वे बातें दुधारी तलवार हैं। ....मजबूरी के सिवा मरदों के हाथों उनके और भी जो अपमान होते हैं वे सैकड़ों बिच्छुओं के डंक मारने से ज्यादा जलन वाले और जहरीले हैं। मरदों की आँख के नीचे उनके अपमान हुए हैं और मरदों के हाथ-पैर नहीं चले।"[illegible]

'चोटी की पकड़' की बाल-विधवा बुआ बलात्कार की शिकार हैं। इसी के कारण उन्हें रानी साहिबा के हाथों अपमानित होना पड़ता है। किन्तु यहाँ कथाकार ने यह भी दिखाया है कि पुरुष के साथ-साथ नारी भी नारी का शोषण करती है। रानी साहिबा के हुकम से मुन्ना दासी द्वारा बुआ पर किया गया अत्याचार अत्यन्त अमानुषिक है।

'चमेली' उपन्यास की नायिका चमेली बाल-विधवा है। समाज का तथाकथित उच्च-वर्ग ऐसी विवश-नारियों को अपनी बपौती समझता है एवं विरोध करने पर उसके वैधव्य के लिए उसे ही दोषी ठहराता है। चमेली को हासिल न कर पाने पर बख्तावर सिंह का आक्रोश इन शब्दों में फूट पड़ता है – "तेरी वह जुवंटा बिटिया भी समझती है, देस के पिंगरों को बुलाने के लिए रख छोड़ा है उसे घर में? भतार को तो चबा गयी ब्याह होते ही, इससे नहीं समझ में आया कि कैसी है? बैठा क्यों नहीं दिया किसी के नीचे अब तक?"[illegible]

सामाजिक शोषण का शिकार केवल निम्न वर्ग की स्त्री ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षिता नारियाँ भी किसी न किसी रूप में पुरुष के जुल्म का शिकार रही हैं। इसका चित्रण निराला की कहानियों में मिलता है। 'पद्मा और लिली' की पद्मा का जीवन पिता की झूठी मर्यादा की बलि चढ़ता है और पिता के अन्तिम आदेश – "राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना"[illegible] का पालन करने के लिए उसे आजीवन कौमार्य-व्रत लेना पड़ता है।

'कमला' की कमला भी भैयाचारों की कूटनीति का शिकार हो परित्यक्ता का जीवन बिताने के लिए विवश होती है। 'सफलता' की आभा भी वैधव्य के कारण सामाजिक दुःख अपमान का ताप सहती है। 'सुकुल की बीवी' की पुष्कर कुमारी को भी अपने गुप्त विवाह को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए दो वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

'दो दाने' एवं 'देवी' कहानियाँ नारी-उत्पीड़न का मार्मिक चित्र उपस्थित करती हैं। दो दाने में अकाल की विभीषिका से पीड़ित माँ द्वारा बेटी के विक्रय का दिल दहला देने वाला दृश्य

नारी-शोषण का चरम रूप है। इसी तरह फुटपाथ की भिखारिन पगली की पीड़ा समस्त पाठकों को झकझोर देती है।

निराला ने अपने कथा-साहित्य में एक ओर सामाजिक शोषण से संत्रस्त, परिस्थितियों के आगे विवश एवं अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर नारी की दयनीय स्थिति के मार्मिक चित्र उकेरे हैं तो दूसरी ओर सबल, समर्थ, प्रतिभा-सम्पन्न एवं अपने बुद्धि-बल तथा चातुर्य से विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बना लेने का सामर्थ्य रखने वाली तथा अपनी चारित्रिक निष्ठा से पथ-भ्रष्ट पुरुषों को भी सत्पथ पर लाने वाली आदर्श नारियों का चित्रण भी बखूबी किया है। उनमें स्त्रीसुलभ सौन्दर्य, सुकुमारता तथा पुरुषोचित साहस, वीरता का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। 'अप्सरा' की कनक, 'अलका' की अलका, 'निरुपमा' की नीरू, 'प्रभावती' की प्रभावती एवं यमुना, 'कमला' की कमला, 'सुकुल की बीवी' की पुष्कर कुमारी एवं 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' की सुपर्णा के चरित्र ऐसे हैं जिनसे निराला की आदर्श नारी-सम्बन्धी परिकल्पना की पुष्टि होती है।

'अप्सरा' की कनक अपनी चारित्रिक दृढ़ता, एकनिष्ठ प्रेम एवं निस्वार्थ सेवा-भावना से राजकुमार जैसे साहित्यकार का दिल जीतने में सफल होती है एवं वेश्या का गर्हित जीवन त्याग कर कुलवती कुलवधू बनती है।

'अलका' की अलका भी अपने बुद्धि चातुर्य और विवेक से सबको चकित कर देती है। नारी जागरण के लिए उसकी सक्रियता एवं मजदूरों की नैश पाठशाला में अध्यापन करने वाली अलका आततायी समाज के सम्मुख समर्पण नहीं करती बल्कि अत्याचारी मुरलीधर को गोली मारकर अपने अपमान का बदला लेती है।

'प्रभावती' की नायिका प्रभावती एवं यमुना शौर्य एवं साहस की प्रतिमूर्ति हैं। ग्रामीणों को शिक्षित एवं ऐक्यबद्ध करने के लिए प्रभावती के चिन्तन एवं उपाय उसे एक ऐसी राष्ट्रभक्त नारी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं जो नवयुग की निर्मात्री है। इसी तरह यमुना भी विवाहिता होते हुए भी समस्त ऐश्वर्य एवं भोग-विलास का परित्याग कर सन्यासिनी हो देश-सेवा एवं देशोत्थान का कार्य करती है। इन दोनों नारियों के रूप में निराला ने ऐसी आदर्श नारी की परिकल्पना की है जो नवीन समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील है।

'निरुपमा' की नायिका निरुपमा भी गाँव वालों की दुर्दशा जान कर शोषण का अन्त करने के लिए कमर कसती है। उसके विचार में जमींदार होने के नाते उसका पहला कर्त्तव्य है पीड़ितों की रक्षा करना। अपने इस कर्त्तव्य का भान होते ही वह उसे कार्य रूप में परिणत करती है।

'कमला' कहानी की नायिका कमला पति द्वारा परित्यक्त किए जाने के बाद बड़े धैर्य एवं साहसपूर्वक जीवन-यापन के लिए स्वतंत्र पेशा अपना कर समस्त पीड़ित नारी जाति का आदर्श बनती है। यही नहीं बल्कि पति की बहन जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे का शिकार थी उसका विवाह अपने भाई से करा कर अपनी उदारता का परिचय देती है। 'सुकुल की बीवी' की पुष्कर कुमारी अपने साहस एवं संयम से समाज में प्रतिष्ठा हासिल करने में सफल होती है। 'श्रीमती गजानन्द

शक्तिरूपिणी' की सुपर्णा आन्दोलन में भाग लेकर जनता का विश्वास अर्जित करती है एवं देश का नेतृत्व संभालती है।

इन आदर्श नारी चरित्रों के माध्यम से कथाकार ने ऐसी नवीन नारी की परिकल्पना की है जो विभिन्न मोर्चों पर संघर्ष करते हुए न सिर्फ सफलता एवं यश अर्जित करती है बल्कि देश, समाज एवं राष्ट्र को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में सहायक होती है।

वर्ण व्यवस्था का मुखर विरोध

निराला तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में वर्ण-व्यवस्था एवं उससे उत्पन्न विभीषिकाओं का नग्न चित्र उपस्थित किया है। समाज के दलित एवं शोषित वर्ग की पीड़ा को मुखर कर निम्न वर्ग के प्रति अपनी सच्ची सहानुभूति प्रकट की। अपने कथा-साहित्य में उन्होंने समाज में तथाकथित सभ्य माने जाने वाले उच्च वर्ग के लोगों विशेषकर कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की तुच्छ मानसिकता एवं मिथ्या जातीय दम्भ पर कुठाराघात किया। 'ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार, खाकर पत्तल में करें छेद' वाला आक्रोशपूर्ण तेवर उनकी अनेक कहानियों में प्रकट हुआ है।

'निरुपमा' में कुमार की माता कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के मिथ्या दम्भ का शिकार हैं। ब्राह्मण होते हुए भी उचित नौकरी के अभाव में कुमार द्वारा जूते पालिश का पेशा अपनाने पर उसकी माता को गाँव के तथाकथित कुलीन ब्राह्मण गाँव छोड़ने को विवश करते हैं। 'बिल्लेसुर बकरिहा' का बिल्लेसुर एक ओर तो जातीय दम्भ को तिलांजलि देकर बकरी-पालन का पेशा अपनाता है किन्तु दूसरी ओर विवाह के मामले में वह कनौजिया ब्राह्मणों की बीधे-बिसवे वाली कुरीति से ग्रस्त है। 'चोटी की पकड़' के जमादार जटाशंकर के इस जातीय पाखण्ड पर मुन्ना दासी करारा व्यंग्य करती है – 'तुम हमें चूमोगे, इससे कुछ नहीं होगा, पर हम तुम्हें चूमेंगे, इससे तुम्हारा धर्म जाता रहेगा। कोई चूमना ऐसा भी है जिसमें दोनों के होंठ न मिलें?''[५]

'काले कारनामे' भी द्विजों के शूद्रत्व के कारनामों से भरा पड़ा है। काशी के ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों के संस्कृत पठन का विरोध इस वर्ग के पाखण्ड की कलई खोलता है। 'चमेली' के पं० शिवदत्त राम त्रिपाठी एक ओर पण्टों पूजा-पाठ का आडम्बर रचकर गाँव के भोले भाले निम्न वर्ग के प्राणियों पर अपना प्रभाव जमाते हैं वहीं दूसरी ओर अपनी विधवा भैहू से नाजायज सम्बन्ध रखते हैं। उनकी मान्यता है – 'कोई कुछ करे, दोष नहीं, धर्म न छोड़े।''[६]

कहानियों में 'पद्मा और लिली' की पद्मा, 'ज्योतिर्मयी' की ज्योति 'कमला' की कमला, 'सुकुल की बीवी' की पुष्करकुमारी आदि सभी जातीय दम्भ के कारण किसी-न-किसी रूप में छली जाती हैं। 'चतुरी चमार' नामक संस्मरणात्मक कहानी में चतुरी-पुत्र अर्जुन को पढ़ाने के कारण निराला जिस तरह ब्राह्मणों का कोप-भाजन बने थे उसका स्पष्ट वर्णन मिलता है। इस वर्ण व्यवस्था के उन्मूलन के सम्बन्ध में कथाकार का मत है – ''चमार दबेंगे, ब्राह्मण दबायेंगे। दबा है, दोनों की जड़ें मार दी जाएँ, पर यह सहज साध्य नहीं।''[७]

'देवी' कहानी में फुटपाथ पर रहने वाली पगली के चित्रण के माध्यम से कथाकार ने लोक-संवेदना को उभारा है। पगली की करुण अवस्था ने निराला की बड़प्पनवाली भावना को पूरी तरह परास्त किया था। उसकी स्थिति को देखते हुए निराला का चिन्तन हमारी सामाजिक विषमता की ओर संकेत करता है – "देश में शुल्क लेकर शिक्षा देने वाले बड़े-बड़े विश्वविद्यालय हैं। पर इस बच्चे का क्या होगा? इसके भी माँ है। वह देश की सहानुभूति का कितना अंश पाती है – हमारी थाली की बची रोटियाँ, जो कल तक कुत्तों को दी जाती थीं। यही, यही हमारी सच्ची दशा का चित्र है। वह माँ अपने बच्चे को लेकर राह पर बैठी हुई धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज जिस विषय को भी मनुष्य होकर मनुष्यों ने आज तक अपनाया है, उसी की भिन्न रुचिवाले पथिक को शिक्षा दे रही है – पर कुछ कहकर नहीं। कितने आदमी समझते हैं? यही न समझना संसार है – बार-बार वह यही कहती है। उसकी आत्मा से यही ध्वनि निकलती है – संसार ने उसे जगह नहीं दी – उसे नहीं समझा, पर संसारियों की तरह वह भी है – उसके भी बच्चा है।"[१५४]

बाह्य प्रदर्शन के चक्कर में आज हमारा समाज आत्मबोध से दूर हट गया है। प्रदर्शन हमारे जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया है एवं उसके चक्कर में आत्म-दर्शन नहीं कर पाते। देशोत्थान के नाम पर, गरीबों के उपकार के नाम पर हजारों रुपये व्यर्थ लुटा देने वाली जनता सचमुच में गरीबों की पीड़ा से अवगत नहीं होती। नेता के जुलूस के अवसर पर रास्ते की भीड़ में पगली का बच्चा कुचल जाता है और भीड़ नेता की जय-जयकार करती है। सामाजिक अध:पतन का यह नाटकीय दृश्य अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। निराला का स्पष्ट मत था कि – "जब हममें बड़ी-बड़ी बातें पैदा होंगी, तब हम इन बातों की छुटाई समझेंगे। आज तो तरीका उल्टा है। जिसकी पूजा होनी चाहिए, वह नहीं पुजता, जो कुछ पूजता है, वही अधिक पुजने लगता है।"[१५५]

जिस पगली को कथाकार ने देवी के पद पर प्रतिष्ठित किया और जिसमें उसे महाशक्ति का रूप दिखता है उसकी अकाल मृत्यु होती है और उसके जिस बच्चे में निराला ने भारत का सच्चा रूप देखा था – वह अनाथालय में भेज दिया जाता है। सामाजिक विषमता की चरम विभीषिका यहाँ देखी जा सकती है। पगली की हत्या का उत्तरदायी हमारा समाज है और समाज का भविष्य अनाथालयों में पलने को विवश है।

निराला ने जहाँ एक ओर समाज में फैली इन सम-विषम समस्याओं के यथार्थ चित्र उपस्थित किए हैं वहीं उनके कथा-साहित्य में जातीय जागरण के स्पष्ट चित्र भी परिलक्षित होते हैं। 'काले कारनामें' में संस्कृत पढ़ने के प्रति शूद्रों की जिज्ञासा, 'कुल्लीभाट' के कुल्ली द्वारा गर्हित जीवन त्याग कर लोक-सेवा की ओर सक्रियता, 'चतुरी चमार' में चतुरी का अपने पुत्र अर्जुन को शिक्षा देने के लिए स्वयं निराला से किया गया आग्रह आदि चित्र स्पष्ट संकेत देते हैं कि तत्कालीन समाज में धीरे-धीरे जागरूकता आ रही थी लेकिन "वह एक ऐसे जाल में फँसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका पूरा जोर उभड़ रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझकर रह जाता है।"[१५६]

चिंतन का आर्थिक संदर्भ

शोषण एवं पूंजीवाद का विरोध, शोषित जनता के प्रति सहानुभूति

निराला जिस युग में साहित्य लेखन कर रहे थे वह राजनीतिक पराधीनता का युग था। विभिन्न आन्दोलनों की असफलता, सामाजिक क्रूर मान्यताओं के निर्मम प्रहार, आर्थिक पराभव का आधिपत्य एवं दमन व शोषण का ताण्डव नृत्य कथाकार ने स्वयं देखा और भोगा था। निराला का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षों की दास्तान था। अर्थ के अभाव में प्रिय पुत्री सरोज की मृत्यु का दर्द निराला ने झेला था। सन् १९२९ से १९३२ तक का समय निराला के लिए घोर आर्थिक संघर्ष का युग था। अत: जीवन में अर्थ की महत्ता वे समझ चुके थे।

निराला का स्पष्ट मत था कि आर्थिक वैषम्य ही समाज में होने वाले समस्त संघर्षों का मूल है। अर्थ प्रधान युग में मानव का अस्तित्व भी उसकी आर्थिक स्थिति से ही आँका जाता है। इस दृष्टि से हमारा समाज धनिक एवं निर्धन दो वर्गों में विभक्त है। इन दोनों वर्गों के बीच बढ़ती खाई को पाटना साधारण कार्य नहीं था। धनिक वर्ग शोषण को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता था तो निर्धन वर्ग चाह कर भी उनके जाल से मुक्त हो पाने में अक्षम था। समाज में शोषक एवं शोषित के बीच बढ़ते वैषम्य को निराला ने भी अनुभव किया था। फलत: उनके कथा साहित्य में शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पूँजीपतियों, सामन्तों, जमींदारों के अत्याचारों एवं अमानवीय कृत्यों का नग्न चित्रण मिलता है।

'अलका' उपन्यास में महासमर के पश्चात् फैली महामारी, दारिद्र्य एवं दुराचार का चित्र दिल दहला देने वाला है। देश के राजा-रईस, जमींदार इस आर्थिक वैषम्य को बढ़ावा देते हैं। गाँव के गरीब किसानों, मजदूरों एवं असहाय युवतियों की विवशता का लाभ उठाकर उनका दैहिक एवं मानसिक शोषण तत्कालीन समाज में कोढ़ की तरह व्याप्त था। भूख के कारण विधर्म को ग्रहण करने को विवश एवं चिरसंचित सतीत्व-धन से हाथ धोने वाली युवतियों के करुण प्रसंग 'अलका' उपन्यास में देखे जा सकते हैं। समाज के शोषित वर्ग की पीड़ा का चित्रण इन पंक्तियों में देखा जा सकता है– 'एड़ी-चोटी का पसीना एक करके, मुश्किल से भर-पेट खाने को पाता है। लगान चुकाता है। भिक्षुक को भीख देता और फसल न होने पर जमींदार के कोड़े सहता है। कभी-कभी उन्हीं की कृपा से कचेहरी जा बैरिस्टर साहब को भी कुछ दे आता है। जमींदार पुलिस, कचेहरी, समाज, सभी जगह वह नीच, अधम, मनुष्य की पदवी से रहित, ठोकरें खाने वाला है। कोई देख न ले, और रोने का मतलब और-और न सोचे, इसीलिए खुलकर नहीं रोता।''[१०]

इसी तरह गाँव में बुधुआ, मैकू, सुक्खू एवं महगूँ की आपसी बातचीत में किसानों की दुरावस्था, जमींदारों के अत्याचार एवं सूराज की पोल खोली गयी है।

'निरुपमा' का कुमार उच्च-शिक्षित होने के बावजूद योग्यतानुरूप पद नहीं पाता। अत: विवश होकर जीविका पालन के लिए उसे बूट-पालिश का पेशा अख्तियार करना पड़ता है।

सामाजिक आर्थिक वैषम्य का जीवन्त चित्रण यहाँ निराला ने किया है। हमारी खोखली अर्थ व्यवस्था का ही दुष्परिणाम है कि एक ओर यामिनीहरण जैसे अयोग्य व्यक्ति अपनी पहुँच के जरिए विश्वविद्यालय में नियुक्ति पा लेते हैं वहीं लन्दन के डी.लिट. कुमार को सड़कों पर बूट-पालिश करनी पड़ती है। शिक्षित युवा वर्ग की यह आर्थिक मोहताजी अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। इस सम्बन्ध में यामिनी के कथन के रूप में मानों कथाकार स्वयं अपने विचार रखता है – 'परिस्थिति मजबूर करती है तब बुरे भले का ज्ञान नहीं रहता - जो काम सामने आता है, इन्सान अख्तियार करता है क्योंकि पेटवाली मार सबसे बड़ी मार है।''[१५४]

'अर्थ' की समस्या ने आपसी रिश्तों में कैसी दरार एवं छल-छद्म को बढ़ावा दिया है यह कथाकार ने बखूबी दिखाया है। समाज का अन्नदाता किस आर्थिक विपन्नता का सामना करता है इसका प्रत्यक्ष चित्रण अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया गया है – 'यह देखो, यह देखो' – बुढ़िया एक-एक स्त्री की कोछी की धोती फैलाकर दिखाती हुई - ''किसी तरह लाज बचाये हैं, असाढ़ का महीना है अनाज नहीं रहा, छः-छः रूपये वाले खेत के तीन साल में अठारह-अठारह रुपये पड़ने लगे। डेढ़ी का अनाज तुम ही से लें, मजर नियाद ऊपर से। कहाँ तक दें? खेत न जोतें तो नहीं बनता, पापी पेट।''[१५५]

जमींदारों का शोषण सहने को मजबूर कृषक वर्ग की विवशता का चित्रण भी कथाकार ने अत्यन्त प्रभावशाली रूप में किया है – ''जमींदार के इशारे पर न चलें तो गाँव में महीने-भर भी गुजर न हो, ताजीरात हिन्द के किसी दफे के शिकार हों और जेल की हवा खायें।''[१५६]

आर्थिक शोषण की चक्की में पिसती निरीह जनता की फरियाद सुनने वाला भी कोई नहीं क्योंकि 'सारे राज्य में उसके (जमींदार के) खास आदमियों का जाल फैला रहता है। वह और उसके कर्मचारी प्राय: दुश्चरित्र होते हैं, लोभी, निकम्मे, दगाबाज। फैले हुए आदमी प्रजाजनों की सुन्दरी बहू-बेटियों, विरोधी कार्रवाइयों संघटनों और पुलिस की मदद से जमींदार के आदमियों पर किये गये अत्याचारों की खबर देने वाले होते हैं। निर्दोष युवतियों की इज्जत जाती है, रिश्वत में रुपये लिये जाते हैं, काम में आराम चलता है, वचन देकर रैयत से पीठ फेर ली जाती है।''[१५७]

आर्थिक विभीषिका का चरम रूप निराला की 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'देवी', 'चतुरी चमार' एवं 'दो दाने' कहानियों में दिखायी पड़ता है। 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' में शोषक वर्ग के प्रतीक राजा साहब के ऐश्वर्य एवं वैभव तथा शोषित वर्ग के प्रतीक निर्धन पुजारी विश्वम्भर की भुखमरी एवं उत्पीड़न की परिस्थितियों का वैषम्य व्यंग्यात्मक ढंग से प्रदर्शित किया गया है।

'देवी' में फुटपाथ पर रहने वाली पगली भिखारिन की करुणा में मानो युग का विद्रूप ही प्रत्यक्ष हो उठा है। सामाजिक आर्थिक वैषम्य का नग्न चित्र उपस्थित करने वाली यह कहानी पाठकों की संवेदना को झंकृत कर देती है।

इसी तरह 'दो दाने' में अकाल की महामारी से पीड़ित माँ द्वारा बेटी की विक्रय का दिल दहला देने वाला दृश्य निराला ने उपस्थित किया है। उनकी 'सफलता', 'अर्थ' आदि कहानियों

में अर्थ की समस्या से जूझते युवा-वर्ग के मानसिक संत्रास का जीवन्त चित्रण मिलता है। इसी तरह 'देवी' एवं 'सुकुल की बीवी' कहानियों में कथाकार ने अपनी आर्थिक विवशता का संकेत दिया है – "मुझे बराबर पेट के लाले रहे।"[१६२]

समग्रतः कहा जा सकता है कि देश के आर्थिक ढाँचे को खोखला करने वाले पूंजीपति, सामंत एवं जमींदारों के विरुद्ध विद्रोह का प्रबल स्वर निराला के कथा-साहित्य में मुखरित हुआ है। वे सामन्तवादी तथा पूंजीवादी व्यवस्था के प्रबल विरोधी तथा समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के समर्थक थे।

चिंतन का राजनीतिक संदर्भ

स्वाधीनता एवं स्वदेशी पर बल, राजनीतिक स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार एवं सांप्रदायिकता पर कठोर प्रहार

निराला के कथा-साहित्य में युग-सत्य की अभिव्यक्ति हुई है। वे जिस युग में कथा-साहित्य का प्रणयन कर रहे थे, वह स्वाधीनता प्राप्ति के लिए चलाए गए विभिन्न आन्दोलनों का युग था। देश के राजनैतिक रंगमंच पर घटना-क्रम तेजी से बदल रहे थे। स्वाधीनता - आन्दोलनों ने भारतवासियों को जो राजनीतिक चिन्तन प्रदान किया उससे प्रत्येक नागरिक राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हो उठा था। निराला जैसे साहित्यकार भी इससे अछूते नहीं रहे। उनके कथासाहित्य में राजनीतिक चेतना के विविध पक्ष उद्घाटित हुए हैं। स्वाधीनता आन्दोलनों की झाँकी के साथ-साथ स्वाधीन भारत की विभिन्न राजनीतिक समस्याएँ एवं उनके विविध पहलू निराला के कथा-साहित्य में देखे जा सकते हैं।

'अप्सरा', 'अलका', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' में उस युग की राजनीति का जीवन्त चित्रण मिलता है। 'अप्सरा' में बंगाल के क्रांतिकारियों की गतिविधियों का उल्लेख किया गया है। "बंगाल में देशभक्ति का स्वरूप क्या था, किस प्रकार अंगरेजों के विरुद्ध भारतीय युवक दृढ़ता के साथ संगठित हो रहे थे और किस प्रकार मदान्ध सरकारी अफसरों को देशभक्त युवक सबक सिखाते थे, यह भी अप्सरा की कहानी के माध्यम से निराला जी ने दिखाया है।"[१६३]

स्वदेशी आन्दोलन का चित्रण 'अलका', 'काले कारनामे' तथा 'चोटी की पकड़' उपन्यासों के साथ-साथ 'चतुरी चमार', 'कला की रूप-रेखा' एवं 'श्रीमती गजानंद शास्त्रिणी' जैसी कहानियों में भी हुआ है। 'चोटी की पकड़' में बंग-भंग आन्दोलन के साथ-साथ विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी के प्रचार का नारा बुलन्द किया गया है। "देश में विदेशी व्यापारियों के कारण अपना व्यवसाय नहीं रह गया। हम उन्हीं के दिये कपड़े से अपनी लाज ढकते हैं, उन्हीं के आईने से मुँह देखते हैं, उन्हीं के सेन्ट, पौडर, लेवेन्डर, क्रीम लगाते हैं, उन्हीं के जूते पहनते हैं, उन्हीं की दियासलाई से आग जलाते हैं। ब्राह्मण की आग गयी, क्षत्रिय का वीर्य गया, वैश्य का व्यापार चौपट हुआ। यह सब हमको लेना है। उसी के रास्ते हम हैं। बंगभंग एक उपलक्ष्य

है। ....यह स्वदेशी वाला भाव हमको घर-घर फैलाना है।''[१५५] प्रभाकर के चरित्र के माध्यम से स्वदेशी के कार्यकर्ताओं के चारित्रिक वैशिष्ट्य का उद्घाटन कथाकार ने किया है। इसी तरह कांग्रेस अधिवेशनों का विवरण एवं कांग्रेस की नीतियों के प्रति विरोध का स्वर 'कुल्ली भाट' एवं 'कला की रूप-रेखा' में मुखरित हुआ है।

'अलका' उपन्यास के स्नेहशंकर के चरित्र के माध्यम से निराला ने अपनी राजनीतिक विचारधारा को वाणी दी है। स्नेहशंकर मानो कथाकार के विचारों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, उन्हीं के सिद्धांतों को वाणी देते हैं।

निराला राजनीति के क्षेत्र में रचनात्मक कार्यों पर बल देते थे। जेल के बाहर रहकर देश-सेवा बेहतर ढंग से की जा सकती है - यह निराला का मत था। राजनीति के क्षेत्र में वे व्यक्ति पूजा के विरोधी थे। 'अलका' में स्नेहशंकर स्पष्ट रूप से कहते हैं – ''स्वतन्त्रता के नाम से देश घोर परतन्त्र है। संवाद-पत्र एक दल-विशेष, व्यक्ति-विशेष की नीति के प्रचारक हैं। वे इस तरह अपने पत्र का भी प्रचार करते हैं। जिसे अभ्युदयशील, जनता में आकर्षक, लोकप्रिय समझते हैं, बराबर उसी का प्रचार करते रहते हैं। ....संवाद-पत्रों में स्वतन्त्रता का व्यवसाय होता है। सम्पादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं, जो केवल बजते हैं, बोल के अर्थ, ताल, गीत नहीं जानते, अर्थात् उनके भीतर वैसे ही पोल भी है। ....यह स्वतन्त्रता का परिणाम नहीं।''[१५६]

निराला का स्पष्ट मत था कि ''देश की स्वतन्त्रता एक मिश्र विषय है। वह केवल राजनीतिक प्रगति नहीं। ....देश की व्यापक स्वतन्त्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए। जब तक सब अंगों से समान पूर्णता नहीं होती, तब तक स्वतन्त्र शरीर संगठित नहीं हो सकता। हमारे यहाँ ऐसा नहीं हो रहा है। हमारे यहाँ तो कानून के बल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल की जा रही है, संवाद-पत्रों में कानून के जानकारों का विज्ञापन होता है – वे ही देश के सर्वोत्तम मनुष्य हैं। उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य है।''[१५७]

नेताओं की स्वार्थपरता एवं पद-लिप्सा के प्रति निराला चिन्तित थे। वे मानते थे कि पूर्णतः योग्यता-सम्पन्न विविध विषयों का ज्ञाता एवं अनुभवी व्यक्ति ही नेतृत्व की क्षमता रखता है। नेता सम्बन्धी उनके विचारों का प्रतिपादन 'अलका' उपन्यास में हुआ है – ''इसीलिए नेता मनुष्य नहीं, सभी विषयों की संकलित ज्ञान-राशि का भाव नेता है। इसीलिए किसी भी तरफ का भरा पूरा मनुष्य दूसरे किसी भी तरफ के बड़े मनुष्य की बराबरी कर सकता है। पर देश में यह बात नहीं हो रही।''[१५८]

निराला ''जाति की नसों में राजनीतिक खून दौड़ाकर एक राजनीतिक जातीयता''[१५९] लाने के पक्षधर थे। इसके विपरीत साम्प्रदायिकता के वे कट्टर विरोधी थे। उस युग में धार्मिक संकीर्णता के कारण जो संघर्ष हो रहे थे उन्होंने साम्प्रदायिकता की भावना को बल दिया था। साम्प्रदायिकता का विष स्वाधीनता पूर्व से लेकर स्वातन्त्र्योत्तर भारत तक फैला है। धार्मिक असहिष्णुता के कारण ही एक वर्ग दूसरे वर्ग के विरुद्ध उग्र होता जा रहा है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच जातीय वैमनस्य का बीज नवाबी शासन में ही बो दिया गया था जब भाषा और संस्कृति

के नाम पर इन दोनों सम्प्रदायों में अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी गयी थी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो शासन करो' की नीति अपनाते हुए इस साम्प्रदायिकता की चिनगारी को हवा दी।

निराला ने एक सजग लेखक की भाँति साम्प्रदायिकता की विकरालता को पहचाना। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर गम्भीरता से विचार करते हुए इसके दुष्परिणामों की ओर संकेत किया। उनके कथा-साहित्य में यत्र-तत्र इस समस्या के विविध पक्षों का उद्‌घाटन किया गया है।

'क्या देखा' कहानी में हिन्दू-मुस्लिम प्रेम का वर्णन व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है – ''प्रेस की बगल में थाना है जहाँ शान्ति के ठेकेदार रहते हैं। हिन्दू-मुसलमानों की एकता के दृश्य कोई आँखे खोलकर देखना चाहे तो जब चाहे, हमारे पच्छिमवाले झरोखे से झांककर देख ले। ....तारीफ तो यह कि वह प्रेम केवल मनुष्यों में नहीं, वहाँ के पशु-पक्षियों में भी है। हिन्दुओं के पालतू कुत्ते और मुसलमानों की मुर्गियाँ भी प्रेम करती हैं। उनका द्वेषभाव बिलकुल दूर हो गया है।''[१६६]

'कमला' कहानी में साम्प्रदायिक दंगे का भयावह चित्रण किया गया है – ''इसी समय कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों में दंगे की बुनियाद पड़ी। एक रोज बड़ा हंगामा भी हुआ। दोनों तरफ के अनेक घर लुटे, फुंके और ढहा दिये गये। हजारों आदमी काम आये। जो हिन्दू-मुसलमानों की बस्ती में थे, उनके घर फूंककर, माल लूटकर, आदमियों को मारकर या जख्मी कर मुसलमानों ने उनकी स्त्रियों को अपने घरों में डाल लिया। ऐसा ही हिन्दुओं ने भी किया। अपने मसरफ में न आने लायक जानकर उन्होंने मुसलमानों की महिलाओं का भी वध कर डाला।''[१७०]

इस प्रकार साम्प्रदायिकता का दुष्प्रभाव दिखाकर लोगों को इसके प्रति सचेत करना ही कथाकार का मुख्य उद्देश्य था। निराला ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से हिन्दू-मुसलमान के बीच भेद-भाव मिटाकर उनमें एकता स्थापित करने का प्रयास किया। 'सुकुल की बीवी' में पुखराज का विवाह सुकुल के साथ एवं 'कुल्लीभाट' में कुल्ली का विवाह एक मुसलमानिन से सम्पन्न कराके उन्होंने इस दिशा में एक सार्थक पहल की। निराला का दृढ़ विश्वास था कि इन दोनों के आपसी विरोध को दूर करके ही राष्ट्रीय एकता कायम हो सकती है। 'प्रबन्ध पद्म' में हिन्दू मुसलमानों के बीच ऐक्य स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने लिखा – ''भारतवर्ष में जो सबसे बड़ी दुर्बलता है, वह शिक्षा की है। हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध के भाव दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों को दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाय। परस्पर के सामाजिक व्यवहारों में दोनों शरीक हों, दोनों एक दूसरे की सभ्यता को पढ़ें और सीखें। फिर जिस तरह भाषा में मुसलमानों के चिह्न रह गए हैं और उन्हें अपना कहते हुए अब किसी हिन्दू को संकोच नहीं होता, उसी तरह मुसलमानों को भी आगे चलकर एक ही ज्ञान से प्रसूत समझ कर अपने ही शरीर का एक अंग कहते हुए हिन्दुओं को संकोच न होगा। इसके बिना, दृढ़ बन्धुत्व के बिना, दोनों की गुलामी के पाश कट नहीं सकते, खासकर ऐसे समय जबकि फूट डालना शासन का प्रधान सूत्र है।''[१७१]

इस तरह निराला ने अपने कथा-साहित्य में राजनीतिक स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता पर कठोर प्रहार किए एवं मानवतावादी मूल्यों के प्रति गहरी आस्था प्रकट की।

चिंतन का सांस्कृतिक संदर्भ

सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा, आस्थावादी जीवन दृष्टि

भारतीय चिन्ताधारा में सांस्कृतिक चिन्तन को विशेष महत्व प्राप्त है। सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को भी सांस्कृतिक दृष्टि से मुक्त कर उसे उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास भारतीय चिन्तन की विशेषता है। "संस्कृतिविहीन राजनीति या संस्कृतिरहित सामाजिकता हमारे देश में उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकती।"[६२]

भारतीय संस्कृति मूलतः धर्म पर आधारित रही है। संस्कृति के अन्तर्गत हमने धर्म को सदा सर्वोपरि स्थान दिया है। यही कारण है कि यहाँ व्रत, उपवास, आडम्बर, मूर्तिपूजा, भाग्यवाद, आस्तिकता, नास्तिकता सभी हमारी जीवन-धारा में शामिल हो गए हैं। भारतीय समाज में धर्म की निर्णायक भूमिका होने के कारण सांस्कृतिक गतिविधियों को सदा धर्म से अनुशासित किया गया है।

परन्तु आधुनिक काल में पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण जहाँ एक ओर हमारी सभ्यता और संस्कृति बुरी तरह प्रभावित हुई वहीं दूसरी ओर धर्म के परम्परागत स्वरूप में भी काफी परिवर्तन आया। कर्म को ही धर्म मानने की प्राचीन अवधारणा के कारण आज धर्म मनुष्य को कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त करने वाला प्रेरक तत्त्व बन गया है। मानव-कल्याण के लिए अन्याय, अत्याचार, असत्य से जूझने की प्रेरणा देने वाला धर्म ही है। इसी तरह अंधविश्वास, आडम्बर, अनास्था तथा रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मुखर करने में भी धर्म और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन के प्रति निराला की आस्था अडिग थी। वे संस्कृति में रामकृष्ण मिशन एवं स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित थे। उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व इन्हीं की देन है। जीवन के तमाम संघर्ष एवं विरोधों के बीच निराला के व्यक्तित्व को दार्शनिक आधार समन्वय-काल में रामकृष्ण मिशन ने दिया। "रामकृष्ण परमहंस की भाव-साधना और विवेकानन्द का वेदान्ती अद्वैतवाद दोनों मिलकर मानो निराला में एकाकार हो गए हों।"[६३] विद्रोही एवं तेजस्वी विवेकानन्द के चरित्र का निराला पर अद्वितीय प्रभाव पड़ा था। स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त के दो स्वरूपों – शक्ति-साधना और करुणा को महत्व प्रदान किया है। निराला के व्यक्तित्व में ये दोनों ही स्वरूप घटित होते हैं। "निराला के जीवन में पौरुष की छटा और कोमलतम वृत्तियों का अद्भुत सामंजस्य है। निराला स्वयं अपने में और विवेकानन्द में गहरी समानता देखते हैं।"[६४] उनकी वाणी ही नहीं वरन् उनका जीवन भी वेदान्ती संत का-सा ही था।

ईश्वरीय शक्ति एवं आध्यात्मिक साधना पर निराला की जो अटूट आस्था थी वह उनके

कथा साहित्य में यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। 'हिरनी' कहानी में नायिका हिरनी पर क्रुद्ध होकर जब रानी साहिबा उसे दण्डित करना चाहती हैं तभी अचानक खुद अस्वस्थ हो जाती हैं। आध्यात्मिक विश्वास के कारण ही ऐसी चमत्कारिक घटनाएं निराला घटित होते दिखाते हैं।

'भक्त और भगवान' में विरक्ति और आसक्ति का द्वन्द्व लेखक ने दिखाया है। कहानी का नायक भक्त सांसारिक ताप से पूर्णतः विरक्त होकर जगत् के करण-कारण भगवान् पर आसक्त है। यही नहीं बल्कि वह महावीर जी की मूर्ति-पूजा भी करता है क्योंकि ''महावीर जी, तुलसीदास जी और श्री रामायण से हिन्दी-भाषी पंडित हिन्दु-मात्र का जीवन सम्बन्ध है।''[illegible] इसमें महावीर की वीर-मूर्ति का जो विराट रूप लेखक ने प्रस्तुत किया है वह उसकी धार्मिक आस्था को पुष्ट करती है।

भक्ति के सम्बन्ध में निराला का स्पष्ट विचार था कि ''भक्ति बुद्धि नहीं, पर पूजा चाहती है। पूजा के लिए सामग्री एकत्र करने की विधि वह नहीं बताती, विधि आप विधान देते हैं।''[illegible]

'अर्थ' कहानी में भी इसी प्रकार लेखक ''अर्थ-प्रधान भौतिक उपलब्धियों को अर्हता नहीं देता और अन्धास्था, रूढ़िवादी आस्तिकता, कर्तव्यशून्यता, पलायनोन्मुखी आध्यात्मिकता अथवा निवृत्तिशील जीवन का प्रत्याख्यान करता है।''[illegible] इस कहानी में कथाकार का निष्कर्ष ''ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते हैं, उसमें सूक्ष्म अर्थ बनकर रहते हैं, जिससे वह स्थूल अर्थ पैदा करता रहता है। संसार के व्यवसाय में भी सूक्ष्म अर्थ ही स्थूल अर्थ पैदा होने के कारण हैं।''[illegible] उनकी ईश्वर के प्रति गहन आस्था का द्योतक है।

निराला की प्रबल आध्यात्मिक आस्था को प्रकट करने वाली 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' शीर्षक कहानी उल्लेखनीय है। इसमें भारतीय संस्कृति की सनातन गुरु-परम्परा के प्रति कथाकार का विश्वास प्रकट हुआ है। किन्तु आध्यात्मिक संस्कारों से सम्पन्न होते हुए भी निराला पाखण्ड के विरोधी थे। तन्त्र-मन्त्र पर उन्हें विश्वास न था। अंधविश्वास एवं धार्मिक विकृतियों के वे कट्टर विरोधी थे। समाज में विष की भाँति फैल रही छुआछूत, ऊँच-नीच एवं जाति-पाँति की प्रथा को वे जड़ से मिटाना चाहते थे। अपने कथा-साहित्य में विभिन्न पात्रों एवं चरित्रों के माध्यम से उन्होंने इस धार्मिक पाखण्ड का विरोध किया। 'कुल्लीभाट' में तमाम सामाजिक रूढ़ियों का बहिष्कार करते हुए स्वयं कथाकार कुल्ली का एकादशाह सम्पन्न कराते हैं। इसी तरह 'चतुरी चमार' में ब्राह्मण-समाज का कोप-भाजन बनते हुए भी चतुरी-पुत्र 'अर्जुनवा' को पढ़ाना स्वीकार करते हैं। इस प्रकार रूढ़ परम्पराओं का विरोध करते हुए निराला भारतीय संस्कृति के सकारात्मक मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी आस्था, जिजीविषा एवं मानवतावादी स्वरों का उद्घोष निराला के सम्पूर्ण कथा-साहित्य में किया गया है।

तमाम संघर्ष झेलते हुए भी जीवन संग्राम में अपराजेय योद्धा की भाँति डटे रहने वाले बिल्लेसुर की जिजीविषा सराहनीय है। जीवन की गर्हित स्थितियों से ऊपर उठ कर कुल्लीभाट द्वारा मानवता एवं लोक-सेवा के प्रति समर्पण-भाव वस्तुतः कथाकार की मानवतावादी आस्थापरक

दृष्टि का परिचायक है। इसी तरह 'देवी' कहानी के माध्यम से लोक-संवेदना जागृत कर प्रेम, करुणा, मानव-सेवा, सहिष्णुता, परोपकारिता जैसे मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा कथाकार निराला का मूल लक्ष्य था। अपने कथा-साहित्य में भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी की भाँति निराला सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा एवं प्रतिस्थापना के प्रति सचेष्ट दिखायी पड़ते हैं। वे अपनी कथा-कृतियों में युग के सांस्कृतिक जागरण के वैतालिक सिद्ध हुए। सांस्कृतिक चिन्तन का पक्ष उनके कथा-साहित्य में सर्वोपरि है जो स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

निराला के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चिन्तन का विवेचन यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य के हिमायती होते हुए भी व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए सामाजिक भूमिका को निराला महत्वपूर्ण मानते थे। तमाम सामाजिक वैषम्य को दूर कर एक स्वस्थ एवं आदर्श समाज की स्थापना ही उनका मूल लक्ष्य था। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के वे प्रबल विरोधी थे तथा समाजवादी दृष्टि के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। राजनीति के क्षेत्र में वे संकीर्णता, स्वार्थपरता, साम्प्रदायिकता तथा भ्रष्टाचार के कट्टर विरोधी तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों के समर्थक थे। धर्म एवं संस्कृति में रूढ़िवादिता की अपेक्षा उदार मानवीय मूल्यों के प्रति वे आग्रही थे। विरोध एवं आस्था का समन्वित रूप निराला के चिन्तक व्यक्तित्व की विशेषता है।

निराला के कथा साहित्य का शिल्पगत वैशिष्ट्य

निराला के कथा साहित्य का शिल्पगत विवेचन यह स्पष्ट करता है कि अपने कथा-साहित्य में उन्होंने शिल्पगत नवीन प्रयोग किए हैं। उनके 'अप्सरा' 'अलका' जैसे आरम्भिक उपन्यास अतिशय काल्पातमकता के कारण शिल्प की दृष्टि से शिथिल भले ही प्रतीत हों किन्तु अपने प्रतिपाद्य में वे पूर्ण सक्षम हैं। 'निरुपमा' 'चोटी की पकड़' एवं 'काले कारनामे' यथार्थवादी कृतियाँ होने के कारण शिल्प की दृष्टि से भी प्रौढ़ हैं। उपन्यासों की अपेक्षा निराला की कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से अधिक सशक्त हैं। डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित का मत है – "निराला की कहानियाँ भावपक्ष की अतुल सम्पत्ति हैं। ....भाव-सम्पदा के साथ-साथ उनका कलात्मक चारुत्व भी अविकल रूप से सुरक्षित है।"[२०]

निराला ने 'देवी' तथा 'चतुरी चमार' जैसी कहानियों में अपनी एक विशिष्ट शैली का आविष्कार किया है जिसमें संस्मरण एवं कथा साथ-साथ चलती है। "उनके संस्मरणों के स्पर्श से, उनके कथा-साहित्य को एक विशेष भंगिमा और भव्यता प्राप्त हो गई है।"[२१] घोर यथार्थ की नींव पर लिखी गयी इन कहानियों में एक ओर गहरी संवेदना है तो दूसरी ओर व्यंग्य की पैनी धार है। इसलिए इनका कथा-शिल्प भी सर्वथा नवीन है। डा० रामविलास शर्मा के अनुसार "देवी और चतुरी चमार में कहानी का पुराना ढाँचा टूट गया है। .....इनमें परिवेश, पात्र ज्यों-के-त्यों उठाकर कथा में रख दिए गए हैं, मंच पर लाते समय उनका मेकअप नहीं किया गया।"[२२] इन कहानियों की शिल्पगत नवीनता मूल्यांकन की नयी कसौटी की माँग करती है। डा० विश्वम्भरनाथ

उपाध्याय के विचार इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं – ''उनकी कहानियाँ टटपूँजियों द्वारा दिए गए कला विधान की सीमा से बाहर हैं – उनके अपने नियम हैं, अपना प्रभाव है। उन्हें कहानियों के पाठ्य पुस्तकों में लिखे 'पाँच तत्त्वों' की तुला पर नहीं तोला जा सकता है, उनकी रचना-विधि निराला की स्वानुभूति की उदात्तता और संवेदना की सच्चाई पर निर्भर है।''[८१]

अपनी 'कुल्लीभाट' एवं 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसी कृतियों में भी निराला कथा-शिल्प का एक नया ढाँचा लेकर उपस्थित होते हैं जिसमें रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, आत्म-चरित्र आदि विभिन्न विधायें एक साथ समाहित हो जाती हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि अपने कथा-साहित्य में निराला शिल्प की प्राचीन परिपाटी के भंजक के रूप में उभरते हैं। वे शिल्प की सर्वमान्य स्थापनाओं से टकराते हुए नये शिल्प का अन्वेषण करते हैं। इस तरह शिल्प के किसी संकीर्ण दायरे में न बँध पाना ही उनके कथा-साहित्य का शिल्पगत सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है। जिस तरह अनगढ़ता एवं अस्तव्यस्तता का भी अपना एक अलग सौन्दर्य होता है, उसी तरह निराला के कथा-साहित्य का यह अनगढ़ शिल्प ही उसकी चारुता का प्रमुख कारण है।

संदर्भ :

१. An introduction to study of literature - W.M. Hudson Page- 145; २. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डा० त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ ४४; ३. पद्मा और लिली, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८८; ४. निराला का गद्य – सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ ४९; ५. ज्योतिर्मयी - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८९; ६. वही, पृष्ठ २६९; ७. वही, पृष्ठ २८९; ८. वही, पृष्ठ २९१; ९. वही, पृष्ठ २९१; १०. वही, पृष्ठ २९५; ११. कमला, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३०१; १२. वही, पृष्ठ ३०३; १३. वही, पृष्ठ ३०१; १४. स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३४९; १५. वही, पृष्ठ ३४९; १६. वही, पृष्ठ ३५०; १७. देवी, निराला रचनावली, पृष्ठ ३५७; १८. वही, पृष्ठ ३५७; १९. चतुरी चमार- निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३६३; २०. वही, पृष्ठ ३६३; २१. वही, पृष्ठ ३६५; २२. वही, पृष्ठ ३६५; २३. सुकुल की बीवी- निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३९४; २४. श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी-निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ४०९; २५. श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ४०९; २६. राजा साहब को ठेंगा दिखाया, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३७२; २७. वही, पृष्ठ ३७१; २८. अप्सरा - निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २२; २९. वही, पृष्ठ २२; ३०. वही, पृष्ठ २३; ३१. वही, पृष्ठ ३१; ३२. वही, पृष्ठ ९८; ३३. वही, पृष्ठ १०३; ३४. वही, पृष्ठ १०७; ३५. वही, पृष्ठ १२४; ३६. वही, पृष्ठ २७; ३७. वही, पृष्ठ ४९; ३८. वही, पृष्ठ ५६; ३९. वही, पृष्ठ ५९; ४०. वही, पृष्ठ ७९; ४१. वही, पृष्ठ ८२; ४२. वही, पृष्ठ ८५; ४३. वही, पृष्ठ १२२; ४४. वही, पृष्ठ २४; ४५. वही, पृष्ठ ४९; ४६. वही, पृष्ठ ७०; ४७. वही, पृष्ठ ५८; ४८. वही, पृष्ठ ६४; ४९. वही, पृष्ठ १४; ५०. वही, पृष्ठ ९५; ५१. अप्सरा - निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ९८; ५२. वही, पृष्ठ ९८; ५३. वही, पृष्ठ १०७; ५४. वही, पृष्ठ १०३; ५५. अलका, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ १४७; ५६. वही, पृष्ठ १७४; ५७. वही, पृष्ठ १६६; ५८. वही, पृष्ठ

२०३; ५९. वही, पृष्ठ २०४; ६०. वही, पृष्ठ २१५; ६१. वही, पृष्ठ १७५; ६२. निरुपमा, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ३९०; ६३. वही, पृष्ठ ३९०; ६४. वही, पृष्ठ ३९५; ६५. वही, पृष्ठ ३४१; ६६. वही, पृष्ठ ३४७; ६७. वही, पृष्ठ ३९२; ६८. वही, पृष्ठ ३४९; ६९. वही, पृष्ठ ३४९; ७०. वही, पृष्ठ ३४१; ७१. वही, पृष्ठ ४१३; ७२. वही, पृष्ठ ३९०; ७३. वही, पृष्ठ ४१०; ७४. प्रभावती - निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २३४; ७५. वही, पृष्ठ ३०८; ७६. वही, पृष्ठ २३८; ७७. वही, पृष्ठ २४२; ७८. प्रभावती - निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २४८; ७९. वही, पृष्ठ २५५; ८०. वही, पृष्ठ २६६; ८१. वही, पृष्ठ २७७; ८२. वही, पृष्ठ २३३; ८३. वही, पृष्ठ २२; ८४. काले कारनामे - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २१४; ८५. वही, पृष्ठ २१४; ८६. वही, पृष्ठ २१५; ८७. वही, पृष्ठ २१६; ८८. वही, पृष्ठ २४१; ८९. वही, पृष्ठ २४१; ९०. वही, पृष्ठ २४२; ९१. वही, पृष्ठ २४८; ९२. वही, पृष्ठ २१७; ९३. वही, पृष्ठ २१७; ९४. चोरी की पकड़ - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२२; ९५. वही, पृष्ठ १९७; ९६. वही, पृष्ठ २२१; ९७. वही, पृष्ठ १२२; ९८. वही, पृष्ठ १२४; ९९. वही, पृष्ठ १२४; १००. वही, पृष्ठ १६९; १०१. वही, पृष्ठ १८८; १०२. वही, पृष्ठ १९९; १०३. वही, पृष्ठ २०४; १०४. वही, पृष्ठ १९२; १०५. वही, पृष्ठ १९८; १०६. वही, पृष्ठ २०६; १०७. चमेली - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २५४; १०८. वही, पृष्ठ २५५; १०९. वही, पृष्ठ २५६; ११०. वही, पृष्ठ २५८; १११. वही, पृष्ठ २५४; ११२. वही, पृष्ठ २५०; ११३. वही, पृष्ठ २५७; ११४. वही, पृष्ठ २५८; ११५. वही, पृष्ठ २५८; ११६. कुल्ली भाट - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २२; ११७. वही, पृष्ठ २८; ११८. वही, पृष्ठ ६३; ११९. वही, पृष्ठ ६७; १२०. वही, पृष्ठ ६९; १२१. वही, पृष्ठ ७०; १२२. वही, पृष्ठ ७२; १२३. वही, पृष्ठ ७२; १२४. बिल्लेसुर बकरिहा - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ९०; १२५. वही, पृष्ठ ९४; १२६. वही, पृष्ठ ९७; १२७. वही, पृष्ठ ९८; १२८. वही, पृष्ठ १००; १२९. विचार और विश्लेषण - डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १५९; १३०. बिल्लेसुर बकरिहा - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ८५; १३१. जिनके साथ जिया - अमृत लाल नागर, पृष्ठ ३४; १३२. भाषा-विज्ञान-प्रबन्ध-प्रतिमा-निराला द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ८६; १३३. मेरे गीत और कला- प्रबन्ध-प्रतिमा- निराला, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २०१; १३४. हिन्दी उपन्यास- शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ २५४; १३५. अलका-निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १५३; १३६. वही, पृष्ठ २००; १३७. उपन्यासकार निराला- डा० गोपाल राय, पृष्ठ ७५; १३८. रूपाभ-फरवरी १९३१, पृष्ठ २३-२४; १३९. प्रेमचन्द-कुछ विचार, भाग I, पृष्ठ ५५; १४०. साहित्यालोचन- डा० श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ १७२; १४१. हिन्दी उपन्यास: ऐतिहासिक अध्ययन- शिव नारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ ४५५; १४२. माधुरी, अक्टूबर १९२२, प्रेमचन्द के निबन्ध से; १४३. ज्योतिर्मयी - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८९; १४४. वही, पृष्ठ २९०; १४५. सरोज-स्मृति; १४६. कमला - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३०१; १४७. अलका - निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ १५०; १४८. काले-कारनामे - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २१७; १४९. चमेली - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २५४; १५०. पद्मा और लिली - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८८; १५१. चोटी की पकड़ - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १४१; १५२. चमेली - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २५८; १५३. चतुरी-चमार - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३६६; १५४. देवी, वही, पृष्ठ ३५८; १५५. वही, पृष्ठ ३६१; १५६. चतुरी चमार, वही, पृष्ठ ३६५; १५७. अलका, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ १५२; १५८. निरुपमा, निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ३५२; १५९. वही, पृष्ठ ३७२; १६०. काले कारनामे, निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २२५; १६१. चोटी की पकड़, वही, पृष्ठ १४३;

१६२. देवी, वही, पृष्ठ ३८६; १६३. निराला का साहित्य और साधना – डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ २३१; १६४. चोटी की पकड़ – निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २०४; १६५. अलका– निराला रचनावली, तृतीय खण्ड, पृष्ठ १५२; १६६. वही, पृष्ठ १५१-१५२; १६७. वही, पृष्ठ १५२; १६८. चोटी की पकड़ – निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २०४; १६९. क्या देखा - निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २७१; १७०. कमला, वही, पृष्ठ ३०२; १७१. प्रबन्ध-पद्म, पृष्ठ ४०-४१; १७२. उपन्यासकार अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी, (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), पृष्ठ ३१९; १७३. निराला : काव्य और व्यक्तित्व – प्रो० धनंजय वर्मा, पृष्ठ ५०; १७४. वही, पृष्ठ ५२; १७५. भक्त और भगवान – निराला रचनावली, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३८०; १७६. वही, पृष्ठ ३८०; १७७. निराला का गद्य – डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ ५३; १७८. अर्थ – निराला रचनावली चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३४१; १७९. निराला का गद्य – डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ ४०; १८०. निराला का साहित्य और साधना – डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ २८८; १८१. निराला की साहित्य-साधना – डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ ४७०; १८२. निराला का साहित्य और साधना – डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ २९०;

षष्ठ अध्याय

निष्कर्ष

निराला के कथा-साहित्य का अनुशीलन यह प्रमाणित करता है कि वे समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं के विरुद्ध एक नये समाज की स्थापना के आकांक्षी थे। परम्परा के जीवन्त तत्वों की स्वीकृति के साथ-साथ उसके प्रवाह को एक नयी दिशा में मोड़ने का अभिनव प्रयास निराला के कथा-साहित्य में परिलक्षित होता है। अपने युग की तमाम राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों के विभिन्न परिदृश्यों को अपने कथा-साहित्य में जीवन्त रूप में चित्रित करने के साथ-साथ उन्होंने इन क्षेत्रों में हर तरह के 'गुरुडम' को चुनौती दी है। उनके कथा-साहित्य में युगीन समस्याओं का आकलन ही नहीं है बल्कि मौलिक उद्भावनाओं द्वारा परिवर्तन का आह्वान भी है। इसलिए उन्हें बहुतों का विरोध भी सहना पड़ा किन्तु इसी विरोध ने उनके व्यक्तित्व को वह धार प्रदान की जिसके कारण युग के झंझावातों से टकराते हुए भी वे मानवतावादी मूल्यों की स्थापना में समर्थ रहे।

निराला का बहुआयामी साहित्यिक लेखन उन्हें हिन्दी का शीर्षस्थ रचनाकार प्रमाणित करता है। साहित्य की प्रत्येक विधा में लिखकर उन्होंने न केवल हिन्दी साहित्य-भंडार को समृद्ध किया बल्कि बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार के रूप में अपनी पहचान भी बनायी है।

निराला के कथा साहित्य में रचनात्मक ऊर्जा का आधार हिन्दी नवजागरण था। काव्य के साथ-साथ जो कथा-साहित्य उन्होंने समाज को दिया, उसके प्रणयन का आधार तत्कालीन समाज था। युगीन परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के बीच निराला का साहित्यिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ जिसकी दीप्ति से साहित्य की सभी विधायें प्रकाशित हैं।

अतीत की गौरवशाली एवं जीवन्त परम्पराओं से प्रेरणा लेते हुए उन्होंने अपने समय की विसंगतियों से जूझने के लिए प्रगतिशील जीवन दृष्टि विकसित की। समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अन्ध-विश्वासों के खिलाफ उन्होंने अपने साहित्य को हथियार बनाया। यही कारण है कि उनके सम्पूर्ण साहित्य में अन्याय के खिलाफ आक्रोश का स्वर अधिक मुखर है। स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए रचनाकार की व्यग्रता उनके साहित्य की खास पहचान है।

यह व्यग्रता उनकी समस्त रचनाओं में देखी जा सकती है। उनके समस्त साहित्य का विवेचन यह भी प्रमाणित करता है कि वे समाज में व्याप्त वैषम्य, अनीति एवं दुराचार को मिटाकर समाज को समुन्नत बनाना चाहते थे।

सजग समाजचेता साहित्यकार की व्याकुलता को प्रगट करने का समुचित अवसर निरा को अपने कथा-साहित्य में मिला है। उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य में किसानों, मजदूरों, ग्रामीण मध्य-वर्गीय परिवारों की समस्याओं के साथ नारी-केन्द्रित विभिन्न समस्याएँ उठायी गयी कथाकार निराला ने इन विविध वर्गों की समस्याओं का सहानुभूति के साथ वर्णन करते पीड़ित, वंचित वर्ग के प्रति अपनी आन्तरिक संवेदना का परिचय दिया है। सच कहा जाय तो समूची संवेदना हिन्दी जाति की संवेदना है। इसी से निराला का साहित्य सच्चे अर्थों में हिन्दी जा का साहित्य कहा जाता है।

उनकी यह सहानुभूति एवं संवेदना उनके कथा-साहित्य के वस्तु एवं शिल्प में भी प्रस्फुटि हुई है। यथार्थता, रोचकता, काव्यात्मकता, कल्पनाशीलता, आंचलिकता एवं नाटकीयता उन कथानक के गुण हैं। उन्होंने अपनी कई कृतियों में वस्तु-विन्यास संबंधी नए प्रयोग किए हैं। इ दृष्टि से 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसे रेखाचित्र तथा 'चतुरी-चमार', 'देवी', 'श्याम आदि कहानियों का अपना विशेष महत्व है। कथ्य की दृष्टि से निराला का सम्पूर्ण साहि सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित है। समाज में व्याप्त विषमताओं के वे मौन द्रष्टा ही नहीं, कटु भोक्ता भी थे। वर्ग एवं वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न वैषम्य का उन्हें तिक्त अनुभव था। इसीलिए उन कथा-साहित्य में शोषितों एवं दलितों के प्रति सहानुभूति खुलकर प्रकट हुई है। इसी तरह वर्ण व्यवस्था के दुष्परिणामों को भी निराला ने गहराई के साथ उद्घाटित किया है।

सामाजिक विद्रूपताओं के विरुद्ध आक्रामक तेवर का परिदर्शन उनके कथा-साहित्य किया जा सकता है। जर्जर रूढ़ियों एवं दूषित मान्यताओं के विरुद्ध आक्रोशभरी लेखकीय मु उनके कथा-साहित्य का वैशिष्ट्य है।

नारी-जीवन से जुड़ी तमाम समस्याओं का निरूपण निराला के कथा-साहित्य की प्रमु विशेषता है। वेश्या-समस्या, दहेज-प्रथा, विधवा-विवाह, बाल-विधवा आदि की विडम्बनाओ का चित्रण करते हुए भी निराला अपने नारी-पात्रों को दीन-हीन नहीं बनाते। उनके नारी-पा अपूर्व साहस, शौर्य, तेज एवं जागरूकता का परिचय देते हैं। स्त्री-सुलभ कोमलता, सहानुभूति ममता आदि गुणों के साथ-साथ उनमें पुरुषोचित गुणों का समावेश दिखाकर निराला ने अप नारी-पात्रों को महिमा-मंडित किया है।

निराला के कथा-साहित्य में उनके व्यक्तित्व का प्रतिफलन किसी-न-किसी रूप में हुआ है। उनके अनेक पात्रों में लेखक के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

निराला में अन्तर्विरोध भी था। इसलिए उनकी कुछ कहानियों में आध्यात्मिकता की भ झलक मिलती है।

निराला के आरम्भिक उपन्यासों में जहाँ छायावादी कोमलता, भावुकता एवं रूमानियत के दर्शन होते हैं वहीं उनके परवर्ती उपन्यास यथार्थ के अधिक निकट हैं। इनमें सामाजिक एव आर्थिक विषमताओं के जो अनुभवपरक चित्र कथाकार ने उकेरे हैं, वे हास्य एवं व्यंग्य की पैन धार के कारण अत्यधिक मर्मस्पर्शी हो उठे हैं। विभिन्न समस्याओं के जो समाधान निराला ने

प्रस्तुत किए हैं, उनमें एक नया युग-बोध प्रस्फुटित हुआ है। सामाजिक चेतना का अधिक भास्वर रूप यहाँ स्पष्ट दिखायी देता है।

इस तरह अनुभव की प्रामाणिक पृष्ठभूमि पर 'कटु सत्य' का ईमानदारी से अत्यन्त जीवन्त रूप में उद्घाटन निराला के कथा-साहित्य का वस्तुगत वैशिष्ट्य है। पीड़ित एवं वंचित वर्ग के प्रति गहरी संवेदना के कारण, वे तत्कालीन यथार्थ से आगे बढ़े हुए, मानवतावादी दृष्टि से संपन्न जनवादी कथाकार के रूप में अपनी पहचान बनाते हैं।

शिल्प की दृष्टि से एक नवीन एवं मौलिक शिल्प का प्रयोग निराला के कथा-साहित्य में मिलता है। 'कथा' एवं 'संस्मरण' दोनों का उनमें अद्भुत सम्मिश्रण है। संस्मरणों के संस्पर्श के कारण ही उनके कथा-साहित्य को एक विशेष भंगिमा एवं भव्यता प्राप्त हो गयी है। वे शुद्ध कथाकार की तरह कथा नहीं कहते बल्कि 'आपबीती' सुनाते चलते हैं। इस तरह कथा में रोचकता एवं कौतूहल की सृष्टि कर पाठकों को अन्त तक बाँधे रखने का कौशल निराला के कथा-साहित्य में देखा जा सकता है। 'सुकुल की बीवी', 'देवी', 'चतुरी चमार' एवं 'कुल्लीभाट' में उनका यह अभिनव प्रयोग उन्हें अपने युग के अन्य कथाकारों से सर्वथा पृथक् एवं विशिष्ट बना देता है। इस तरह उन्होंने नये आकर्षक शिल्प का निर्माण किया है। 'नवीन शिल्प सर्जक' का उनका यह रूप उनके कथा-साहित्य को एक नया आयाम देता है।

चरित्रों की अवतारणा को लेकर भी निराला ने नवीन प्रयोग किए हैं। किसी 'अतिमानव' के स्थान पर अपने आस-पास के परिवेश से अत्यन्त साधारण चरित्र का उसकी समस्त दुर्बलताओं के साथ उद्घाटन वे इस प्रकार करते हैं कि वह 'असाधारण' बन जाता है। कुल्लीभाट के रूप में निराला ने एक ऐसे ही चरित्र की सृष्टि की है। इसी तरह बिल्लेसुर बकरिहा के रूप में निराला ने हिन्दी कथा-साहित्य को एक अविस्मरणीय चरित्र प्रदान किया है। जीवन-संग्राम में तमाम कठिनाइयों से जूझते हुए, बार-बार विफलताओं का सामना करते हुए उसी के मध्य से सफलता की राह की तलाश करने वाले बिल्लेसुर की अदम्य जिजीविषा में कहीं-न-कहीं निराला का अपराजेय व्यक्तित्व ही प्रतिभासित हो उठा है। इस चरित्र के माध्यम से निराला ने 'संघर्ष ही सफलता का मूल मंत्र है' – के स्वर का उद्घोष किया है।

भाषा-शैली का अनूठा प्रयोग निराला के कथा-साहित्य के शिल्प की एक उल्लेखनीय विशेषता है। विषयानुरूप एवं पात्रानुकूल कहीं तत्समप्रधान तो कहीं सहज, सरल भाषा का प्रयोग कथाकार का अपना वैशिष्ट्य है। निराला के आरम्भिक कथा साहित्य में छायावादी अलंकृत काव्य शैली का प्रयोग है जिससे उनके गद्य का लालित्य शैली का वैशिष्ट्य बन गया है।

कथा-साहित्य में 'आंचलिकता' की जिस प्रवृत्ति का परवर्ती साहित्य में 'रेणु' एवं 'नागार्जुन' ने सफल प्रयोग किया उसका बीज निराला-साहित्य में विद्यमान है। उनके कथा-साहित्य में बैसवाड़ा अंचल की सम्पूर्ण संस्कृति एवं सामाजिक परिवेश साकार हो उठा है।

इसी तरह निराला ने रेखाचित्र-विधा का सफल प्रयोग कर उसे कथा-साहित्य की गहराई

एवं गरिमा प्रदान की है। संस्मरण एवं जीवनी के मिश्रण से उन्होंने रेखाचित्रों में अधिक विश्वसनीयता एवं रोचकता की सृष्टि की है।

मानवतावाद की प्रतिष्ठा निराला के कथा-साहित्य का प्रतिपाद्य है। वे मनुष्य का चित्रण मनुष्य के रूप में ही करते हैं। ऐसे मनुष्य के रूप में जिसमें देवत्व एवं दानवत्व दोनों का समावेश है। समाज में दलित समझे जाने वाले मनुष्यों में मानवता का अप्रतिम तेज निराला ने ही देखा था। यह वस्तुतः उनका मानवतावादी दृष्टिकोण ही है जो दलितों के प्रति सहानुभूति दिखाकर उनके उन्नयन का प्रयास करता है।

इसी तरह आदर्श नारी की परिकल्पना द्वारा निराला नारी उत्थान के साथ-साथ मातृ-शक्ति के प्रति अपनी दृढ़ आस्था प्रकट करते हैं।

अपनी कृतियों में जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता के सुदृढ़ प्राचीरों को ध्वस्त करने में संलग्न निराला भारतीय-संस्कृति के सजग प्रहरी की भाँति सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा एवं प्रतिस्थापना के प्रति सचेष्ट दिखायी देते हैं। रूढ़ियों के विरुद्ध प्रबल आस्था एवं दृढ़ जिजीविषा का जो स्वर निराला के कथा-साहित्य में गूँज रहा है वह आज भी चुनौतियों से जूझने की प्रेरणा देता है।

सन् १९३० के बाद हिन्दी साहित्य में एक व्यापक बुनियादी परिवर्तन हुआ। जिसकी दिशा यथार्थवाद की ओर थी। यह परम्परा जनवादी यथार्थवाद की थी। इसने एक ओर साम्राज्यवादी उत्पीड़न का विरोध किया है तो दूसरी ओर सामन्ती उत्पीड़न का भी। किन्तु इसमें उन मुद्दों पर विशेष बल दिया गया है जिसकी टक्कर सीधे जन साधारण से थी। जैसे किसान और जमींदार, वर्ण-व्यवस्था के भीतर पिसते अछूत, धार्मिक ठेकेदारों की दुरभिसंधि के बीच सिसकती नारी तो कहीं राजनीतिक पंडों से छली जाने वाली सामान्य जनता। निराला का समूचा कथा-साहित्य इसी बढ़ते हुए जनवादी चिन्ताधारा का दस्तावेज है जिसमें स्वतन्त्रता पूर्व किए जाने वाले संघर्षों का चित्रण है तो दूसरी ओर स्वातंत्र्योत्तर भारत में हिन्दी जाति की करुण-व्यथा अंकित है। ●

सहायक ग्रन्थ सूची

आधार-ग्रन्थों की सूची

कहानी-संग्रह

१. लिली २. सखी ३. सुकुल की बीवी ४. चतुरी चमार ५. देवी

उपन्यास

१. अप्सरा २. अलका ३. प्रभावती ४. निरुपमा ५. चमेली ६. चोटी की पकड़ ७. काले कारनामे ८. इन्दुलेखा

संस्मरण-रेखाचित्र

१. कुल्लीभाट

२. बिल्लेसुर बकरिहा (उपरोक्त सभी कृतियों का अध्ययन निराला रचनावली: संपादक श्री नन्दकिशोर नवल के तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड से किया गया है।)

काव्य-कृतियाँ

अनामिका (प्राचीन)	:	नवजादिक लाल श्रीवास्तव, कलकत्ता	१९२३
परिमल	:	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली	१९७८
गीतिका	:	भारती भंडार, इलाहाबाद	सं. २०३०
अनामिका (नवीन)	:	भारती भंडार, प्रयाग	१९६३
तुलसीदास	:	भारती भंडार, इलाहाबाद	सं. २०१४
कुकुरमुत्ता	:	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९६९
अणिमा	:	युग मन्दिर, उन्नाव	१९४३
बेला	:	निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग	१९४३
नये पत्ते	:	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९८५
अपरा	:	साहित्यकार संसद, प्रयाग	सं. २००१
अर्चना	:	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९७९
आराधना	:	भारती भंडार, इलाहाबाद	१९५४
गीत-गुंज	:	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस	सं. २०११
सान्ध्य-काकली	:	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली	१९८१

निबन्ध-संग्रह

प्रबन्ध पद्म	:	गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ प्रथमावृत्ति	सं. १९९१
प्रबन्ध-प्रतिमा	:	भारती-भण्डार, इलाहाबाद द्वितीय संस्करण	१९६३

चयन : कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७
चाबुक : कला मन्दिर, इलाहाबाद १९४९
संग्रह : निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग प्रथम संस्करण १९६३

आलोचनात्मक कृतियाँ

रवीन्द्र कविता कानन : निहाल चन्द एण्ड को. कलकत्ता सं. १९८५
पंत और ध्रुव : गंगा पुस्तकालय- कार्यालय लखनऊ प्रकाशन १९४९

जीवनी साहित्य

भक्त ध्रुव : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण १९८६
भीष्म पितामह : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण १९८८
महाराणा प्रताप : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण १९८८
भक्त प्रहलाद : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण १९८६

स्फुट गद्य साहित्य

महाभारत : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली तृतीय संस्करण १९८६
रामायण की अंतर्कथाएँ : निराला रचनावली अष्टम खण्ड
पत्र-साहित्य : निराला रचनावली अष्टम खण्ड

सहायक-ग्रन्थों की सूची (हिन्दी)

अवध प्रसाद वाजपेयी : टैगोर और निराला
युगवाणी प्रकाशन, कानपुर १९६५

इन्द्रनाथ मदान : निराला

ओंकार शरद : निराला स्मृति (ग्रन्थ) १९६८

अमृतलाल नागर : जिनके साथ जिया
राजपाल एण्ड संस, दिल्ली १९७३

ओमप्रकाश शर्मा : जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प
पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली १९७५

डा. कु. कमलकुमारी जौहरी : हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास
ग्रन्थम, कानपुर १९६५

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा : कलकत्ता
अप्रस्तुत प्रकाशन १९९०

डॉ. कृष्णदेव झारी : युगकवि निराला
अशोक प्रकाशन, दिल्ली १९७०

: शक्तिपुंज निराला
शारदा प्रकाशन, नयी दिल्ली १९८६

डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र : हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
मणिमंच, कलकत्ता १९८३

डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया : हिन्दी काव्य-भाषा की प्रवृत्तियाँ
तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली १९८३

गंगाधर मिश्र : युगाराध्य निराला
गंगाधर मिश्र, काशी १९७५

गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९६८

डॉ. गोपाल राय : उपन्यासकार निराला

गोविन्द त्रिगुणायत : शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत
भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली १९५९

डॉ. चण्डी प्रसाद शर्मा : हिन्दी उपन्यास और समाज-शास्त्रीय विवेचन
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर १९६२

जानकी वल्लभ शास्त्री : महाकवि निराला
निराला निकेतन, बिहार १९६३

जैनेन्द्र कुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय
पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली १९७६

डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव : निराला का काव्य

डॉ. डी. डी. तिवारी : हिन्दी उपन्यास : स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली १९८५

प्रो. तेजनारायण प्रसाद सिंह : निराला : जीवन और साहित्य
प्रो. रामबुझावन सिंह
राज प्रकाशन, पटना १९६४
प्रो. शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव

दूधनाथ सिंह : निराला : आत्महन्ता आस्था
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद १९७२

प्रो. धनंजय वर्मा : निराला काव्य और व्यक्तित्व
विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली १९६५

धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश
ज्ञानमण्डल, वाराणसी सं. २०१५

डॉ. नगेन्द्र : विचार और विश्लेषण
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९५५

नन्दकिशोर नवल : निराला रचनावली (प्रथम से अष्टम खण्ड तक)
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

नन्द दुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९६६

: कवि निराला
वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी १९६५

डॉ. नरपत चन्द सिंघवी : महाकवि निराला का कथा साहित्य
बाफना प्रकाशन, जयपुर १९७१-७२

डॉ. नामवर सिंह : छायावाद
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६०

डॉ. निर्मल जिन्दल : निराला का गद्य-साहित्य
आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली १९७१

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' : निराला
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९६९

डॉ. प्रेमनारायण टंडन : निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व
हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ १९६२

प्रेमप्रकाश भट्ट : निराला का गद्य-साहित्य
उपमा प्रकाशन, जयपुर

डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी : हिन्दी उपन्यास और अमृतलाल नागर
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, कोलकाता

निराला : परमानन्द श्रीवास्तव
साहित्य अकादमी, दिल्ली १९८५

डॉ. बच्चन सिंह : क्रांतिकारी कवि निराला
नन्द किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी १९६१

श्री बरुआ : महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रंथ
अखिल बंग महाकवि निराला अभिनंदन स्वागत समिति, कलकत्ता १९५३

बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा : कथाशिल्पी निराला
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९८४

भगीरथ मिश्र : निराला काव्य का अध्ययन
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९६७

महादेवी वर्मा : पथ के साथी
भारती भंडार, इलाहाबाद सं. २०१३

डॉ. मुहम्मद अयूब खाँ 'प्रेमी' : निराला के काव्य में दार्शनिकता
आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नयी दिल्ली १९८०

ये. पे. वेलिशेव : सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९८८

डॉ. राजकुमार गुप्त : निराला साहित्य : एक नया आयाम
वि. भू. प्रकाशन, साहिबाबाद १९८१

राजकुमार सैनी : साहित्य स्रष्टा निराला
अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली १९९१

डॉ. रामअवध द्विवेदी : साहित्य-रूप
भारती भंडार, इलाहाबाद १९६०

डॉ. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य-साहित्य
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी १९९२

रामचन्द्र मेहरा : निराला का परवर्ती काव्य
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर १९६३

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. २००१

डॉ. रामप्रीत उपाध्याय : निराला काव्य दर्शन एवं शिल्प
अपर्णा प्रकाशन, कलकत्ता १९९१

डॉ. रामरतन भटनागर : कवि निराला
किताब महल, इलाहाबाद १९४७
निराला : नव मूल्यांकन
स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद १९७३

रामव्यास पाण्डेय : निराला की याद
मणिमय प्रकाशन, कलकत्ता १९८०

डॉ. रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६७
निराला की साहित्य-साधना (तीनों खण्ड)
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९७२

: निराला
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली १९९१

: महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली १९८९

डॉ. रामशंकर द्विवेदी : साहित्य और सौन्दर्य बोध
भावना प्रकाशन, दिल्ली १९९०

डॉ. रमेशचन्द्र त्रिपाठी : पत्रकार निराला
मतवाला बाल विनोदग्रन्थ माला
लखनऊ १९८४

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास
साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद १९६७

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास
राजपाल एण्ड सन्स १९८८

डॉ. विनोदिनी श्रीवास्तव : निराला साहित्य में जीवन-दर्शन
सुलभ प्रकाशन, लखनऊ १९८८

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय विमर्श
हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस १९४८

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : निराला का साहित्य और साधना
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा १९६५

विश्वम्भर 'मानव' : काव्य का देवता निराला
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९६३

विष्णुकान्त शास्त्री : कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी १९६३

वीणा शर्मा : निराला की काव्य-साधना
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली १९६५

डॉ. श्यामसुन्दर घोष : सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर १९७६

डॉ. श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन
इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग सं. २००८

शशिप्रभा सिन्हा : निराला के काव्य प्रतिमान
अनुपम प्रकाशन, पटना १९८३

डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त	: उपन्यास-स्वरूप संरचना तथा शिल्प	
	अलंकार प्रकाशन, दिल्ली	१९८०
डॉ. शिवकरण सिंह	: कला सृजन प्रक्रिया और निराला	
	संजय बुक सेन्टर, वाराणसी	१९७८
डॉ. शिवकुमार शर्मा	: हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	
	अशोक प्रकाशन, दिल्ली	१९९२
शिवनारायण श्रीवास्तव	: हिन्दी उपन्यास	
	सरस्वती मन्दिर, वाराणसी	१९५९
शिवशेखर द्विवेदी	: निराला साहित्य और युग-दर्शन	
	हिन्द प्रकाशन, लखनऊ	१९७२
डॉ. सत्यपाल चुघ	: प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प-विधि	
	इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद	१९६८
डॉ. सरोजनी त्रिपाठी	: आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास	
	ग्रन्थम, कानपुर	१९७३
श्री सुमित्रानन्दन पन्त	: छायावाद पुनर्मूल्यांकन	
	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९६५
सुरेश सिन्हा	: हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास	
	अशोक प्रकाशन, दिल्ली	१९६६
सूर्यप्रसाद दीक्षित	: निराला का गद्य	
	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९६८
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	: साहित्य सहचर	
	नैवेद्य निकेतन, वाराणसी	१९६५
	: हिन्दी साहित्य की भूमिका	
	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई	१९६३
	: हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास	
	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९८४
	: विचार और वितर्क	
	साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद	१९५४
डॉ. त्रिभुवन सिंह	: हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	
	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	१९६१
ज्ञानवती दरबार	: स्वतन्त्र भारत की झलक	
	सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली	१९७३

सहायक-ग्रन्थों की सूची (अंग्रेजी)

- An Introduction to study of Literature – W. H. Hudson.
- Dictionary of World Literature – J. T. Shiplay
- Aspects of Novel – E. M. Forster
- The playwrites by Green Wood
- The Meaning of Fiction – Albert Cook.

पत्र-पत्रिकाएँ

रूपाभ, सुधा, साहित्य - सन्देश, पश्चिम बंगाल (निराला विशेषांक), आलोचना, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, जनभारती (निराला अंक), सरस्वती, विशाल भारत, नया-समाज, हंस, कल्पना, माधुरी, मतवाला।

(इनके कुछ विशिष्ट अंकों का ही उपयोग किया गया है।)

डॉ० उषा द्विवेदी

जन्म : १० अगस्त (कोलकाता में)

मूल निवासी : कन्नौज (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी)
बी.एड (कलकत्ता विश्वविद्यालय)
पी-एच.डी. (वर्द्धमान विश्वविद्यालय)

वृत्ति : भारतीय विद्या भवन (कोलकाता) में हिन्दी की वरिष्ठ अध्यापिका

कृतियाँ : निराला का कथा साहित्य : वस्तु और शिल्प (मौलिक)

- मानस अनुक्रमणिका (सह संपादन)
- कबीर अनुशीलन, श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित निराला जन्मशती स्मारिका, श्यामाप्रसाद मुखर्जी स्मारिका एवं लोकनायक जयप्रकाश नारायण स्मारिका का सह-संपादन।
- साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी
- श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय की साहित्य मंत्री

सम्मान : कलकत्ता कान्यकुब्ज समाज द्वारा ऋषि शंकर दीक्षित साहित्य सम्मान (२००० ई०)

सम्पर्क : पार्थ सारथी हाउसिंग कॉम्पलेक्स
एच/ई, १६/१, शचीन्द्र लाल सरणी
बागुईहाटी, कोलकाता-७०० ०५९
दूरभाष : २५७० ३१९४

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
कोलकाता